Department of Distance and Continuing Education
University of Delhi

दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

All U.G. Courses
सेमेस्टर-I-VI
कोर्स क्रेडिट-2
Skill Enhancement Course (SEC)

रंगमंच

(हिंदी-विभाग)

As per the UGCF-2022 and National Education Policy 2020

संपादक मंडल

प्रो. सुधीर कुमार शर्मा

प्रो. भवानी दास

डॉ. सीमा जैन

पाठ्य-सामग्री लेखक

डॉ. सीमा जैन, डॉ. इन्दुजा अवस्थी, डॉ. माधुरी सुबोध,
डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ.प्रतिभा राणा

शैक्षणिक समन्वयक

दीक्षान्त अवस्थी

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग

ISBN : 978-93-95774-58-1

प्रथम संस्करण : 2022

ई-मेल : ddceprinting@col.du.ac.in
hindi@col.du.ac.in

प्रकाशक :
दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग
मुक्त शिक्षा परिसर/मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय-110007

मुद्रण :
मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

यह अध्ययन सामग्री स्थायी समिति की दिनांक 08-05-2023 एवं शैक्षणिक परिषद की दिनांक 26-05-2023 के क्रमांक संख्या 1014 द्वारा तत्पश्चात् कार्यकारी परिषद की बैठक दिनांक 09-06-2023 को क्रमांक संख्या 14 {14-1 (14-1-11)} के द्वारा संस्तुत की गई।

- वर्तमान अध्ययन सामग्री की इकाई 1 (पाठ-2), 2 एवं 3 पूर्व सी.बी.सी.एस. सेमेस्टर सिस्टम के तहत एम.ए. हिन्दी उत्तरार्द्ध के प्रश्न पत्रों की अध्ययन सामग्री का संशोधित संस्करण है। इकाई 1 (पाठ-1), 4 और 5 एन.ई.पी. के तहत नये पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी और लिखवाई गई हैं।
- स्व-शिक्षण सामग्री (एस.एल.एम.) में वैधानिक निकाय, डीयू/हितधारकों द्वारा प्रस्तावित सुधार/संशोधन/ सुझाव अगले संस्करण में शामिल किए जाएँगे। हालाँकि, ये सुधार/संशोधन/सुझाव वेबसाइट https://sol.du.ac.in पर अपलोड कर दिए जाएँगे। कोई भी प्रतिक्रिया या सुझाव ईमेल- feedbackslm@col.du.ac.in पर भेजे जा सकते हैं।

मुद्रण : ..... (..... प्रतिलिपि)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

Skill Enhancement Course (SEC)

ऑल यू.जी. कोर्सेस, सेमेस्टर-I

रंगमंच

अध्ययन सामग्री : इकाई 1-5

इकाई-1

पाठ-1	भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र (संक्षिप्त परिचय)	डॉ. सीमा जैन	1-14
पाठ-2	हिंदी का पारंपरिक रंगमंच (संक्षिप्त परिचय)	डॉ. इन्दुजा अवस्थी	15-60

इकाई-2

पाठ-1	प्रस्तुति-प्रक्रिया : आलेख का चयन, अभिनेताओं का चयन, दृश्य परिकल्पना (ध्वनि-संगीत-नृत्य प्रकाश)	डॉ. माधुरी सुबोध	61-75
पाठ-2	प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न घटक	डॉ. माधुरी सुबोध	76-95

इकाई– 3

	अभिनय की तैयारी : वाचिक, आंगिक, आहार्य, सात्विक	डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी	96-103

इकाई-4

पाठ-1	आशु अभिनय और थिएटर गेम्स का विस्तृत परिचय	डॉ.प्रतिभा राणा	104-119
पाठ-2	संवाद वाचन,शारीरिक अभ्यास और सीन वर्क का विस्तृत परिचय	डॉ.प्रतिभा राणा	120-136

इकाई-5	मंच-प्रबंधन: सेट, रंग-सामग्री, प्रचार-प्रसार, ब्रोशर-निर्माण	डॉ.प्रतिभा राणा	137-155

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पाठ-1

भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र (संक्षिप्त परिचय)

डॉ. सीमा जैन
मुक्त शिक्षा विद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय
सम्पादिका–डॉ. सीमा जैन

रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 भरतमुनि का नाट्यशास्त्र
1.3 भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र का स्वरूप
1.3.1 बोध प्रश्न
1.4 नाट्यशास्त्र के अध्यायों का संक्षिप्त परिचय
1.4.1 बोध प्रश्न
1.5 भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र का महत्त्व
1.5.1 बोध प्रश्न
1.6 सारांश
1.7 अभ्यास प्रश्न
1.8 संदर्भ-ग्रन्थ

DDCE, COL, SOL, University of Delhi

1.0 अधिगम का उद्देश्य

यह पाठ भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' पर आधारित है। इस पाठ के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित करने में सक्षम होंगे:

- भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र की विषयवस्तु से परिचित हो सकेंगे।
- भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र के स्वरूप को जान सकेंगे।
- भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र के अध्यायों से परिचित हो सकेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- नाट्यशास्त्र के महत्त्व को प्रतिपादित कर सकेंगे।
- भारतीय नाट्य परंपरा में नाट्यशास्त्र की उपादेयता को जान सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

भारत में नाट्यशास्त्रीय परंपरा अति प्राचीन है। समय-समय पर नाट्यचार्यों द्वारा नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों की स्थापना होती रही है। भरतमुनि रचित 'नाट्यशास्त्र', धनंजय रचित 'दशरूपक', रामचंद्र गुणचंद्र रचित 'नाट्यदर्पण', शारदातनय प्रणीत 'भाव प्रकाशन' आदि नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों से विदित होता है कि भरत से पूर्व और पश्चात् में भी नाट्यशास्त्र के आचार्य हुए, जिनकी रचनाओं (कुछ उपलब्ध हैं, कुछ उपलब्ध नहीं हैं) के माध्यम से नाट्यशास्त्र की समृद्ध परंपरा और उसकी नई-नई व्याख्या दृष्टिगत होती है। किंतु भरतमुनि रचित 'नाट्यशास्त्र' ही एक ऐसा प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ है, जिसमें नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों का क्रमबद्ध निरूपण अति विस्तार एवं सूक्ष्मता से किया गया है। नाट्यशास्त्र के क्षेत्र में इस ग्रंथ का वहीं महत्त्वपूर्ण स्थान है जो कि व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' का। भरतमुनि के पश्चात् सभी आचार्य भरत-प्रतिपादित नाट्यशास्त्र शास्त्रीय सिद्धांतों पर ही विचार विमर्श करते रहे हैं और यही ग्रंथ उनकी उपजीव्य रहा।

1.2 भरतमुनि का नाट्यशास्त्र

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र की रचना नटों को प्रशिक्षण देने करने के लिए की थी। उनके व्याख्याकार आचार्य अभिनवगुप्त का मानना है कि नाट्य का प्रायोगिक शास्त्र सर्वप्रथम भरतमुनि ने ब्रह्मा से सीखा, फिर उन्होंने यह शास्त्र अपने शिष्यों को सिखाया। भविष्य में नटों को लाभान्वित करने की दृष्टि से उन्होंने इस शास्त्र को ग्रंथ के रूप में निबद्ध भी किया। कालिदास, भवभूति तथा राजशेखर आदि नाटककारों ने भरतमुनि को एक महान नाट्यप्रयोक्ता के रूप में स्मरण किया है। उनका नाट्यशास्त्र केवल एक पुस्तक ही नहीं, बल्कि सदियों तक बनी रहने वाली एक जीवंत परंपरा है।

भरतमुनि ने रंगमंच को एक सतत् परिवर्तनशील गद्यात्मक माध्यम माना है। नाट्य का आधार लोक है और लोक स्वयं निरन्तर परिवर्तनशील है, तो नाट्य भी स्थिर कैसे हो सकता है? नाट्यशास्त्र को लोक नाट्य के तीन प्रमाणों में से एक कहा गया है। भरत कहते हैं कि इस लोक को शास्त्रों की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता, क्योंकि यह लोक अपनी विविधता में अपार है, इसलिए प्रयोक्ता को चाहिए कि जिन बातों का निर्णय शास्त्र के द्वारा नहीं हो सकता, उनके लिए लोक का आश्रय ले। वस्तुत: समूचा शास्त्र भी लोक पर आश्रित है। लोक के न रहने पर सम्पूर्ण शिल्प कलाओं और मनुष्य के सारे कर्तव्यों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। लोक के साथ नाट्य के लिए अन्य दो प्रमाण जो भरतमुनि ने बताए हैं, वे वेद तथा अध्यात्म हैं। अध्यात्म से आशय प्रयोक्ता या अभिनेता की अपनी चेतना से है।

भरतमुनि ने नाट्य के लिए वेद को भी एक प्रमाण माना है और नाट्य को उन्होंने चार वेदों के अतिरिक्त पाँचवा वेद कहा है। कालिदास नाट्य को एक चाक्षुस यज्ञ कहते हैं। इस परंपरा में नाट्य वेद है और उसका अनुष्ठान एक यज्ञ के समान है। भरतमुनि की परंपरा में रस ही नाट्य का प्राण है, रस के बिना नाटक में कुछ घटित नहीं हो सकता। रस की सृष्टि

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

तथा उसके आस्वाद दोनों के लिए हृदय की शुद्धि एवं पवित्रता आवश्यक है। रस एक जटिल तथा मिश्र अनुभव है। भरत की दृष्टि से यह नाट्यसंग्रह के ग्यारह या तेरह तत्त्वों का निचोड़ है। ये तत्त्व हैं - रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर, आतोद्य, गान तथा रंग या रंगमंच। आचार्य अभिनव गुप्त ने इन तत्त्वों के सामंजस्य के माध्यम से नाट्यानुभव की सम्भावना स्वीकार की है। नाट्य जीवन का अनुकरण है - यह भरतमुनि और उनकी परंपरा के आचार्य बार-बार कहते आए हैं। परन्तु जीवन के सतही अनुकरण से नाट्यानुभव सम्भव नहीं है। अभिनेता द्वारा इस सतही यथार्थ को नाट्य में अतिक्रान्त करना होता है। भरतमुनि नाट्यधर्मी के विवेचन में इसी अतिक्रान्त यथार्थ की अपार सौन्दर्यमूलक संभावनाओं का वर्णन करते हैं।

1.3 भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र का स्वरूप

भारत में नाटक की उत्पत्ति और उसके अभिनय आदि के विषय में भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को सबसे प्राचीन ग्रंथ माना गया है। इसमें नाटक का प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। "भारतीय नाटकों के परिप्रेक्ष्य में 'नाट्यशास्त्र' तथा भरतमुनि ये दो ऐसे नाम हैं जो कदाचित् गीता तथा व्यास की भाँति जनमानस में अक्षुण्ण रूप से विराजमान हैं ।" (*हिंदी नाट्यशास्त्र* - सुधा रस्तोगी, आमुख से) नाट्य संबंधित सभी विषयों का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र 'नाट्यशास्त्र' है। यह ग्रंथ नाट्य के स्वरूप को समझने का उपाय है, यह केवल नाट्यकला का ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय कलाओं का विश्वकोश माना जाता है। यह ग्रंथ ज्ञान, विज्ञान, शिल्प, कला, विधा, योग और कर्म का भी बोध कराता है। नाट्यशास्त्र का भारतीय साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। नाट्य की विभिन्न विधाओं पर जितना विवेचन इस ग्रंथ में मिलता है उतना किसी अन्य ग्रंथ में नहीं मिलता।

परंपरागत प्रसिद्धि के अनुसार 'नाट्यशास्त्र' की रचना भरतमुनि ने की थी। इतिहास में दशरथ - पुत्र भरत, दुष्यंत पुत्र भरत, मान्धाता के प्रपोत्र भरत एवं जड़ भरत का उल्लेख मिलता है। किंतु इनमें से किसी को भी 'नाट्यशास्त्र' का रचियता नहीं माना जा सकता। 'ऋग्वेद' में कई स्थलों पर 'भरत' शब्द का प्रयोग एक जाति के रूप में होता रहा है। किंतु 'नाट्यशास्त्र' के संदर्भ में भरत नाम किसी व्यक्ति का ही सूचक प्रतीत होता है। संपूर्ण 'नाट्यशास्त्र' भरत नामक एक व्यक्ति की ही कृति है - इस धारणा को निर्विरोध मान्यता नहीं मिली है। भरत की एकता और अनेकता को लेकर दो धारणाएँ स्पष्ट तौर पर मिलती हैं। एकव्यक्तिवादी पक्ष की पुष्टि में सबसे प्रबल प्रमाण है कि अभिनवगुप्त, जो कि 'अभिनवभारती' नामक टीका के यशस्वी प्रणेता हैं। इनकी स्थापना है कि नाट्यशास्त्र भरत-प्रणीत है। तभी तो अभिनवगुप्त को तत्कालीन एक वर्ग में प्रचलित इस धारणा का खंडन करने की आवश्यकता हुई कि 'नाट्यशास्त्र' का प्रथम प्रणयन सदाशिव, फिर ब्रह्मा और अंत में भरत मुनि ने किया। उनके अनुसार वस्तुतः सदाशिव, ब्रह्मा और भरत ने तीन स्वतंत्र ग्रंथों का निर्माण किया है। वर्तमान 'नाट्यशास्त्र' तो मुख्यतः ब्रह्मा के मत को उपजीव्य मानकर अन्य मतों के निराकरणपूर्वक भरतपूर्व की सारी परंपरा का आकलन करता है, "एतेन सदाशिवब्रह्मभरतमतत्रयविवेचन ब्रह्ममतसारताप्रतिपादनाय मतत्रयीसारासारविवेचनं तद्ग्रंथखंडप्रेक्षेपेण विहितमिदं शास्त्रम् ।" (*नाट्यशास्त्र* - प्रथम गायकवाड संस्करण, भाग -1) भावप्रकाश के अनुसार "नाट्यशास्त्र की द्वादशसाहस्त्रीं संहिता की रचना आदि भरत ने की थी - तथा भरतवृद्धेन कथितं गद्यमीदृशम्" इसी प्रकार काव्यमीमांसा में राजशेखर ने रूपकाधिकरण के कृतित्त्व का श्रेय भरत को दिया है। दूसरी ओर, भरत के अनेकत्व के पक्ष में 'नाट्यशास्त्र' के वे अंश सहायक सिद्ध होते हैं जहाँ भरत का प्रयोग अभिनेता, सूत्रधार, नट, विदूषक, आभरणकृत् आदि

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

नाट्य प्रयोक्ताओं के लिए हुआ है। वस्तुतः जिस बृहत् रूप में नाट्यशास्त्र आज प्राप्त है उससे वह एक व्यक्ति की कृति माने जाने की संभावना में संदेह सहज हो जाता है।

भरतमुनि के लगभग समकालीन या थोड़ा बहुत आगे पीछे भी अनेक नाट्यशास्त्रकार हुए हैं, जिनका प्रासंगिक नामोल्लेख अनुचित न होगा। "'नाट्यशास्त्र' की परंपरा का अवलोकन करते हुए इस संदर्भ में यह संकेत करना परमावश्यक है कि भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' नामक ग्रंथ ही इस दिशा में पहला प्रयास नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है नाट्यशास्त्र की रचनाशैली। जिस प्रकार पाणिनीय 'अष्टाध्यायी' में पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का उल्लेख मिलता है उसी भांति 'नाट्यशास्त्र' के भी अनुवंश्य श्लोक एवं आर्याएँ आदि भी पूर्ववर्ती आचार्यों की ओर संकेत करती हैं। 'नाट्यशास्त्र' में शब्दलक्षण के प्रसंग में पूर्वाचार्य, गन्धर्व के प्रसंग में स्वास्ति, छंद निरूपण के संदर्भ में गुह, ध्रुवाओं की परिचर्चा में नारद, अङ्गहार एवं करणों की व्याख्या के अवसर पर तण्डु तथा नंदी एवं मानवीय गुणों के प्रसंग में बृहस्पति इत्यादि आचार्य भरत से पूर्व नाट्यशास्त्रकारों के रूप में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त पाणिनी ने शिलालिन् एवं कृशाश्व प्रणीत नटसूत्रों का उल्लेख किया है जो आज अप्राप्य होने पर भी भरत मुनि से पूर्व नाट्यशास्त्रीय परंपरा की अक्षुण्ण के द्योतक हैं ।" (*हिंदी नाट्यशास्त्र* - सुधा रस्तोगी, आमुख से) इस प्रकार भारतीय नाट्यशास्त्र के संबंध में एकमात्र प्राप्य एवं नितांत संपूर्ण ग्रंथ भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' ही मिलता है। 'अभिनवभारती' की अध्यागत पुष्पिकाओं में इसका स्मरण 'भारतीय नाट्यशास्त्र' के रूप में ही किया गया है। प्रतिपाद्य विषयों की व्यापकता और तद्गत विवेचन की सांगोपांगता को देखते हुए यह ग्रंथ इतना विलक्षण तथा अद्भुत है कि अध्येता के मन को बरबस इसके प्रणेता के प्रति श्रद्धावनत कर देता है। नाट्य के विषय में भरत का कथन है –

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
सौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।।" (*नाट्यशास्त्र* - 1.117)

(अर्थात कोई ज्ञान, कोई शिल्प, कोई विद्या, कोई कला, कोई योग, कोई कर्म ऐसा नहीं है, जो नाट्य में दिखाई न देता हो।) यह संपूर्ण उक्ति स्वयं 'नाट्यशास्त्र' के प्रति पूरी तरह सटीक बैठती है। संसार का कोई ऐसा विषय नहीं है जिसकी चर्चा नाट्यशास्त्र नामक विश्वकोश में न की गई हो।

1.3.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए-
   - (क) "न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला" किसकी पंक्ति है?
   - (ख) भरतमुनि ने नाटक को किसका अनुकरण माना है?
   - (ग) 'अभिनवभारती' किसकी रचना है?
   - (घ) भरतमुनि ने नाट्य का प्राण किसे माना है?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   - (क) भरतमुनि के लगभग समकालीन या थोड़ा बहुत आगे पीछे भी अनेक नाट्यशास्त्रकार हुए हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(ख) भारत में नाटक की उत्पत्ति और उसके अभिनय आदि के विषय में भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को सबसे नवीन ग्रंथ माना गया है।

(ग) भरतमुनि की दृष्टि से रंगमंच एक सतत् परिवर्तनशील गद्यात्मक माध्यम है।

(घ) नाट्यशास्त्र का भारतीय साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -

(क) ..... में नाटक का प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। (नाट्यशास्त्र/अभिनयशास्त्र)

(ख) नाट्यशास्त्र को पाँचवा..... भी कहा है। (वेद/पुराण)

(ग) .....सतही यथार्थ को अतिक्रांत करता है। (अभिनेता/विदूषक)

1.4 नाट्यशास्त्र के अध्यायों का संक्षिप्त परिचय

प्रायः षट्साहस्री संहिता' के नाम से प्रसिद्ध इस ग्रंथ में अधिकतर 36 अध्याय एवं 6000 श्लोक मानने की परंपरा चली आ रही है। नाट्यशास्त्र के 36 अध्यायों का संक्षिप्त रूप इस प्रकार है –

प्रथम अध्याय में भरतमुनि के आत्रेय आदि ऋषियों द्वारा नाट्यवेद के विषयों में जिज्ञासापूर्वक प्रश्न किए गए कि नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति कैसे हुई ? किसके लिए हुई ? इसके कौन-कौन से अंग हैं ? उसकी प्राप्ति के उपाए कौन से हैं तथा उसका प्रयोग कैसे हो सकता है ? भरतमुनि ने इसके उत्तर में कहा कि नाट्यवेद ऋग्वेद का पाठ्य अंश, साम से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रसों को लेकर प्रणयन किया गया है। इसे इस स्वरूप में निर्मित कर मुनि ने इसे अपने पुत्रों को सिखाया। इसी अध्याय में नाट्य को देवों और दैत्यों दोनों के लिए मंगलकारी बताया, उन्होंने नाट्य को देवों और दैत्यों को शुभ और अशुभ कर्मों को दर्शाने वाला बताया। भरतमुनि ने नाट्य को धर्म, यश, आयु को बढ़ाने वाला बताया। इसी में उन्होंने नाट्यमंडप में पूजा का विधान बताया, यह अध्याय 131 श्लोकों के साथ समाप्त होता है।

द्वितीय अध्याय में भरतमुनि ने नाट्यप्रदर्शन के लिए आवश्यक होने के कारण प्रेक्षागृह का वर्णन करते हुए उसके तीन प्रकारों को बतलाया तथा उनके शिल्प, आकार तथा साधनों का विस्तार से विवेचन किया है।

तृतीय अध्याय में नाट्यमंडप में संपादित की जाने वाली आवश्यक धार्मिक क्रियाओं का निरूपण करते हुए विभिन्न देवताओं की पूजा तथा उनसे प्राप्त होने वाले फलों का निरूपण किया है।

चतुर्थ अध्याय में भरतमुनि द्वारा अमृतमंथन नाट्यप्रयोग के देवताओं के सम्मुख प्रस्तुत करने तथा त्रिपुरदाह को महेश्वर के सम्मुख करने तथा महेश्वर के आदेश से तंडु द्वारा भरत को अन्घार, करण तथा रोचकों का ज्ञान करवाने का वर्णन है। इसी अध्याय में विस्तार से तांडवनृत्य की उत्पत्ति तथा उसके शिल्प का (अंगहारों, करणों, रेचकों आदि) सांगोपांग विवेचन है। जिसके अभिनय में नृत्तहस्तों तथा गीतों से सौंदर्य वृद्धि होती है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पंचम अध्याय में नाट्यप्रयोग के आरंभ में प्रस्तुत किए जाने वाले पूर्व रंगविधान, नान्दी, प्रस्तावना तथा ध्रुवाओं का सांगोपांग विवेचन है। पंचम अध्याय का नाम पूर्वरंग-विधान है। इसमें नाट्य-प्रदर्शन से पूर्व किए जाने वाले मंगलात्मक और मनोरंजनात्मक नांदी आदि पूर्वरंग के विविध अंगों का वर्णन हुआ है। इस अध्याय में वर्णित विषय नाट्यरचना तथा प्रयोग दोनों दृष्टियों से उपयोगी है।

छठा अध्याय रसाध्याय है। इस अध्याय में भरतमुनि रस की चर्चा करते हैं। वह नाटक में श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत नामक आठ रस बताते हैं। वे प्रत्येक रस के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं। उस रस से संबंधित उसके छोट से छोटे अंग का विवेचन करते हुए बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से यह बताते हैं कि रस मानसिक आनंद देने वाली वस्तु है। साथ-साथ इस अध्याय में रसों से भावों का संबंध भी स्पष्ट किया गया है और रस तथा भावों के परस्पर संबंध से रसानुभूति की प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हैं।

सातवाँ अध्याय भावाध्याय है। इसमें भाव, विभाव, स्थाई तथा संचारी या व्यभिचारीभावों का विस्तृत विवेचन आठ प्रकार के सात्विक भावों का (रसो की अपेक्षा से) विवरण दिया गया है। सातवें अध्याय में भावों का विस्तार से विवेचन किया गया है, भावों के पाँच प्रकारों का विवेचन किया गया है। आठ स्थाई भावों में रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा तथा विस्मय नामक भावों के हृदय में उदय होने के कारणों का विवेचन किया गया है। तैंतीस व्यभिचारी भावों में निर्वेद, ग्लानि से लेकर त्रास और वितर्क तक के भावों का विवेचन किया गया है। आठ सात्विक भावों में पसीना आना, जड़ हो जाना, कांपने लगना, आँसू आना, मुख का रंग बदल जाना, आदि का विवेचन किया गया है। इन भावों के प्रयोग करने की विधि पर प्रकाश डाला गया है तथा विभिन्न रसों में प्रयोग होने वाले भावों का विवेचन किया गया है।

आठवें अध्याय से अभिनय आरंभ हो जाता है। इसमें अभिनय के आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक भेद बतलाकर आंगिक अभिनय के अंतर्गत उपांगाभिनय आदि का सांगोपांग वर्णन किया गया है। नाट्यशास्त्र के आठवें अध्याय का नाम 'उपांग-विधान' है। इसके अंतर्गत अभिनय के चार प्रकार बताने के उपरांत, आंगिक अभिनय के अंतर्गत सिर तथा उससे संबंधित नेत्र, भ्रू, नासिका, कपोल तथा ग्रीवा आदि उपांगों द्वारा किए जाने वाले अभिनय का विस्तृत वर्णन है, जो नाट्य-प्रयोगों की दृष्टि से परमोपयोगी है।

नवे अध्याय में आंगिक अभिनय के क्रम की ओर आगे बढ़ते हुए हस्त, कुक्षी, कटि, जानु तथा पाद जैसे शरीर अंगों का अभिनय विस्तार से निरुपित करते हुए 24 असंयुत हस्तमुद्राओं, 13 संयुत हस्तमुद्राओं, 27 प्रकार के नृत्त हस्तों का वर्णन करते हुए 64 हस्त प्रकारों को बतलाया गया है। अंग संचालन तथा हस्त मुद्राओं का प्रयोग रस, भाव तथा अभिनय के अनुरूप होता है और नृत्य में हस्तमुद्राओं की परमोपयोगिता होती है अतः इसका भी विवेचन किया गया है।

दसवें अध्याय में वक्ष, कटि तथा शरीर के अन्य भागों के परिचालनजन्य के पाँच प्रकारों का विवरण देकर उनके विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले अभिनय प्रयोग बतलाए गए हैं। दशम अध्याय का नाम शरीराभिनय अध्याय है। इसमें वक्षस्थल, पार्श्व, कटि, जंघा तथा पैरों द्वारा किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के अभिनयों का वर्णन मिलता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ग्यारहवें अध्याय में चारी का निरूपण करते हुए 16 प्रकारों की भौमी तथा 16 प्रकार की आकाशिकी चारियों के लक्षण तथा प्रयोगों को बतलाया गया है तथा खंड-करण तथा मंडलों की नाट्योपयोगिता का वर्णन किया गया है।

बारहवें अध्याय में मंडलों का लक्षण, संख्या तथा प्रयोग आदि का विषद निरूपण किया गया है।

तेरहवें अध्याम में गति प्रचार का निरूपण है। इसमें रसादि के अवसरों एवं अवस्थाओं के अनुकूल पात्रों की गति के विवरण बतलाए गए हैं। इसमें नाट्यप्रयोग के आरंभ में प्रस्तुत होने वाले ध्रुवाओं के गान के (आरंभ में) समय होने वाले पात्रों (को प्रवेश करते समय) की गति से लेकर देव, राजा, मध्यवर्ग के स्त्रीपुरुष, निम्न वर्ग के लोगों की गति में लगने वाले समय. रौद्र, वीभत्स, वीर आदि रसों को प्रस्तुत करते समय की भंगिमाएँ तथा शीतार्त्त, संन्यासी, मदमत्त तथा उन्मत्त पात्रों के परिचालन के प्रकार तथ गतियों के अभिनय करने का विवरण दिया गया है।

चौदहवें अध्याय में रंगमंच पर विद्यमान गृह, उपवन, वन, जल, स्थल आदि प्रदेश को संकेतिक करने के निश्चय, समय के अंगानुसारी विभाजन तथा एक वर्ष या एक मास में घटित घटनाओं के लिए नए अंक की योजना; देश, वेशभूषा, आधार आदि पर निर्भर चार प्रकार की प्रवृत्तियों का निरूपण, सुकुमार तथा आविद्ध नामक दो प्रकार के नाट्यप्रयोगों का वर्णन तथा अंत में लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी नामक दो नाट्य विधाओं का निरूपण किया गया है।

पन्द्रहवें अध्याय में वाचिकाभिनय आरंभ होता है। इसमें आरंभ के अक्षरों पर आधारित वाणी का नाट्य के वाचिक अभिनय में उपयोग बतलाते हुए अक्षरों के स्वर-व्यंजनात्मा विभेद बतलाकर उनके स्थान, प्रयत्न आदि का विवरण दिया गया है। फिर शब्दों की संज्ञा, क्रिया, उपसर्ग, संधियां आदि विभेद बतलाकर नाटक में की जानेवाली भाषाओं का शब्द - भेद द्वारा विवेचन किया गया है। इसके उपरान्त नाट्य के संवादमय वाचिक-अभिनय में प्रयुक्त किए जाने वाले एक से लेकर छब्बीस अक्षरों तक के छंदों का (प्रत्येक के भेदोपभेद एवं) उदाहरण देते हुए निरूपण किया गया है। अंत में गुरु, लघु तथा यति मात्रा आदि छन्द शास्त्र के परिभाषिक शब्दों की व्याख्या की गई है।

सोलहवें अध्याय में भी इसी क्रम में आगे बढ़कर वाचिकाभिनय में उपयोगी वृत्तों का सोदाहरण निरूपण है। अंत में सम तथा विषम वृत्त बतलाकर आर्या के प्रभेदों का विवरण दिया जाता है।

सत्रहवें अध्याय में अभिनय के अंतर्गत काव्य के छत्तीस लक्षणों का विवरण है। इसके उपरांत उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक नामक काव्य के अलंकार का निरूपण करते हुए गुण तथा दोषों का भी निरूपण दिया गया है।

अठारहवें अध्याय में नाटकोपयोगी भाषाओं का विवरण देते हुए संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश या देशी शब्द रूपों के उच्चारण भेद द्वारा होने वाले परिवर्तनों का विवरण देकर भाषा एवं विभाषाओं का वर्णन दिया गया है। इनके बोलने के नियम, विराम तथा काकु का प्रयोग तथा देशभेद से प्राकृतादि भाषाओं के ओकारबहुला आदि भेद होना दिखलाया गया है।

उन्नीसवें अध्याय में उच्च, मध्य तथा निम्न वर्ग के पात्रों के संबोधन करने की विविध प्रणालियों का निरूपण है। इसके अतिरिक्त इन वर्गों के पात्रों के नामकरण के उपाय बतलाते हुए गद्य-पाठ्य के गुण; स्वर, व्यंजनों के उच्चारण

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

स्थान, स्वरों के उदात्त आदि प्रकार, काकु के विभेद तथा स्वरों के उच्च, मंद, दीप्त, भद्र एवं नीच, द्रुत तथा विलम्बित जैसे अलंकारों का विवरण दिया गया है।

"उन्नीसवें अध्याय का नाम काकुस्वर-व्यंजक अध्याय है। इसमें काकु, स्वर, नामाभिधान तथा पाठ्य के गुण-दोषादि का सूक्ष्म वर्णन हुआ है। यह अध्याय भी नाट्य-प्रयोग की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार वाचिक अभिनय से संबंधित अध्यायों में अठारहवाँ तथा उन्नीसवाँ अध्याय नाट्य की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। शेष पन्द्रहवां तथा सोलहवाँ नाट्यशास्त्र की अपेक्षा छंद शास्त्र से, तथा सत्रहवाँ अध्याय काव्यशास्त्र से अधिक संबंधित है।"

बीसवें अध्याय में रूपकों के विभेद बतलाते हुए नाट्यशास्त्र के मुख्य विषय का आरंभ किया गया है। इसमें दस-रूपकों के लक्षण बतलाते हुए उनके वैशिष्ट्य को प्रतिपादित किया गया है। इनके अंगभूत अंक, प्रवेशक, विष्कम्भक, चूलिका आदि का निरूपण करते हुए रूपकों के अन्य संघटक अंगों की चर्चा की गई है।

इक्कीसवें अध्याय में नाटक की कथावस्तु के आधिकारिक तथा प्रासंगिक भेदों का निरूपण, पंच संधियों, पाँच अवस्थाएँ, पाँच अर्थप्रकृतियों तथा सन्धयन्तर का विवरण देकर संधियों के सभी अंगों के लक्षण बतलाए गए हैं। अर्थोपक्षेपकों के द्वारा कथावस्तु के सूच्य-रूप को निरुपित करते हुए उनके पाँच प्रकारों का लक्षण सहित निरूपण किया गया है तथा अंत में सभी विधा, शिल्प तथा कला आदि के नाटकोपयोगी होने की बात को दोहराया गया है।

बाइसवें अध्याय में नाटकोपयोगी वृत्तियों का निरूपण किया गया है। ये वृत्तियाँ हैं - भारती, सात्वती, कौशिकी तथा आरभटी। वृत्तियों की उत्पत्ति के प्रसंग में विष्णु भगवान के द्वारा मधुकैटभ दैत्यों से युद्ध करने तथा उसमें चारों वृत्तियों के प्रयोग की पौराणिक कथा को लेकर चारों वेदों से चारों वृत्तियों के उत्पन्न होने का विवरण देकर इन वृत्तियों के भेद-प्रभेद तथा लक्षण बतलाकर विभिन्न रसों में योजना का विवरण दिया गया है।

तेइसवें अध्याय में आहार्याभिनय का वर्णन है। आहार्याभिनय नेपथ्य या वेशभूषा पर अवलम्बित होता है, अतः इसमें आभूषण के स्वरूप के साथ वेशभूषा के प्रदर्शन के विविध उपायों का विवरण दिया गया है। नेपथ्य के चार प्रकार बतलाकर अलंकारों के विवरण देते हुए विभिन्न देशों के निवासी स्त्री-पुरुषों के द्वारा व्यवहार में लाए जाने वाले आपादमस्तक धारण करने योग्य अलंकारों एवं उपकरणों यथा तिलक, अंजन, दंत एवं ओष्ठराग आदि उपकरणों की सजावट के विवरण दिए गए हैं। अंगरचना के प्रकरण में विविध पात्रों के जातीय रूप (जैसे राजा, श्रेष्ठि, शक, यवन, शुद्र आदि) को प्रकट करने के लिए उनके शरीर के अनुरूप रंग में रंगना तथा तदनुसार मूँछ, दाढ़ी आदि की निर्माण विधि बतलाई गई है। सजीव नेपथ्य का वर्णन तथा उसके अंतर्गत नाट्यमंच पर प्रस्तुत होने वाले विविध पशु, पक्षी, सर्प आदि को प्रस्तुत करने की विधियों का वर्णन किया गया है।

चौबीसवें अध्याय में सामान्य-अभिनय का निरूपण है। इसमें पात्रों की उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकृति का वर्णन है। इसी प्रकार स्त्रियों के अयत्नज अलंकारों के अंतर्गत हाव-भाव का स्वरूप बतलाकर इनमें स्वभावज अलंकारों को बतलाया गया है। इसके बाद वाक्याभिनय का निरूपण करते हुए वाचिक अभिनय के आलाप, प्रलाप आदि विभेदों को बतलाया गया है। इसी प्रकार दर्शन, स्पर्शन आदि क्रियाओं के अभिनय की विधि का वर्णन कर उचित तथा अनुचित घटनाओं के मंच पर प्रदर्शित करने के नियम बतलाए गए हैं। विभिन्न स्त्री जातियों के स्वभावादि के आश्रय के विभेद

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

बतलाकर अभिलाषा, स्मृति आदि दस दशाओं का वर्णन किया गया है तथा कामावस्था में दूतीप्रेषण आदि दस दशाओं का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रणय, क्रोध तथा ईष्या की दशा में होने वाले उचित संबोधन आदि का यहाँ रोचक विवरण दिया गया है।

पच्चीसवें अध्याय में वैशिकपुरुष का लक्षण बतलाकर उसके सहज गुणों तथा संपादित गुणों का विस्तार से निरूपण किया गया है। इसके मित्र तथा दूती आदि का भी सांगोपांग विवरण देकर स्त्रियों के यौवन की चार अवस्थाओं, प्रेमियों के प्रकारों तथा स्त्री को वश में करने के उपायों का विधिवत् निरूपण किया गया है।

छब्बीसवें अध्याय में चित्राभिनय है। इसमें सामने अभिनय के अंतर्गत जिन आंगिक आदि अभिनयों का वर्णन छूट गया था ऐसे विशिष्ट अभिनयों का विवरण दिया गया है। इसके अंतर्गत आकाश, रात्री, सांयकाल, अंधकार आदि का प्रदर्शन करने के लिए अभिनयविधि के विवरण देते हुए हर्ष, शोक आदि भाव प्रकट करने की विधियाँ विशिष्टरूप से निर्दिष्ट की गई हैं। आकाशभाषित जैसे सूच्य कथावस्तु के प्रकारों का तात्पर्य प्रकट करते हुए वृद्ध तथा बालकों के संभाषण की विधि, आसन्नमृत्यु पात्र के मंच पर प्रस्तुत करने तथा अन्य अन्युक्त अभिनयों के सम्पन्न करने की विधि निरुपित की गई है।

सत्ताइसवाँ अध्याय सिद्धिव्यंजक अध्याय है। इसमें नाट्य प्रदर्शन में होने वाली देवी तथा मानुषी सिध्दी सांगोपांग निरूपण करते हुए उनमें होने वाले विघ्नों का विवरण दिया गया है। इसी प्रसंग में नाटक - प्रदर्शन के निर्णायक या परीक्षकों की विभिन्न श्रेणियों तथा उनकी योग्यता का विस्तार से निरूपण है।

अट्ठाइसवें अध्याय से लेकर चौतीसवें अध्याय तक संगीतशास्त्र का विषय प्रतिपादित किया गया है। इस क्रम में अट्ठाइसवें अध्याय में चार प्रकारों के वाद्यों का विस्तार से विवरण दिया गया है। स्वरों के सात प्रकार बतलाते हुए उनके वादी आदि चार विभेद निदर्शित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त स्वर ग्राम, मूर्च्छना, श्रुतियों तथा जातियों का विषद विवरण प्रस्तुत किया गया है।

उन्तीसवें अध्याय में जातियों के रसाश्रित प्रयोग का विवरण है। वर्ण तथा अलंकारों का स्थाई आदि वर्णों पर आश्रित स्वरूप बतलाया गया है तथा वीणाओं के स्वरूप आदि पर चर्चा की गई है।

तीसवें अध्याय में बाँसुरी के स्वरूप का विवेचन तथा उसकी वादनविधि बतलाई गई है।

इकतीसवें अध्याय में ताल और लय का सांगोपांग वर्णन करते हुए अवनद्धवाद्यों का निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त गीत के समय-नियमन हेतु ताल विधान को विस्तार से निरुपित करते हुए कुछ गौण नाट्य प्रयोगों का लक्षणपूर्ण विवरण दिया गया है।

बत्तीसवें अध्याय को 'ध्रुवाध्याय' कहा गया है। इसमें पात्रों के प्रदेश आदि अवस्थाओं में गाई जाने वाली ध्रुवाओं का विवरण है। ध्रुवाओं का अधिकांश प्राकृत भाषा में तथा संस्कृत भाषा में होने से मुख्यतः ध्रुवाओं की भाषा को प्राकृत (शौरसेनी) रखने का विवरण दिया गया है। इन ध्रुवाओं के सोदाहरण लक्षणों का प्रतिपादन तथा गायक, वादक तथा

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

बाँसुरीवादक के गुण तथा उनकी योग्यता का निरूपण भी दिया गया है। इसके उपरान्त संगीत के आचार्य तथा शिष्य की योग्यता के विवरण एवं स्वभावतः स्त्री के द्वारा गायन और पुरुषों के द्वारा वादन करने का निर्देश दिया गया है।

तैंतीसवाँ अध्याय 'वाद्याध्याय' है, जिसमें मृदंग आदि अवनद्धवाद्यों का विवेचन है। इसी में स्वाति तथा नारद के द्वारा अवनद्धवाद्य के प्रवर्तन का आख्यानात्मक विवरण दिया गया है तथा किस अवसर पर किस प्रकार वाद्यों का वादन किया जाए इसका शिक्षण भी है। वाद्यों के अंतर्गत मृदंग, पणव, दर्दर आदि वाद्यों के निर्माण तथा वादन आदि का विवरण है तथा वाद्यों के अधिदेवताओं का भी वर्णन किया गया है।

चौतीसवें अध्याय में पुरुष एवं स्त्रियों की त्रिविध प्रकृति का निरूपण करने के साथ ही चार प्रकार के नायकों का सलक्षण वर्णन दिया गया है। नायक परिवार के अंतर्गत स्त्रियों की विभिन्न श्रेणियों में महादेवी, देवी, नर्तकी, परिचारिका आदि पात्रों का भी स्वरूप बतलाया गया है। नृप, सेनापति, पुरोहित, मंत्रीगण, सचिव, प्राड्विवाक तथा कुमार का सलक्षण निरूपण है।

पैंतीसवाँ अध्याय 'भूमिका-पात्र-विकल्पध्याय' है। इसमें नाट्यमंडली के सदस्यों का विभाजन करते समय उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं को दर्शाया गया है। सुकुमार तथा आविद्ध नामक दो नाट्य प्रयोगों का विवरण देकर सूत्रधार, पारिपार्श्विक, अभिनेता, वित्, शकार, विदूषक, चेट जैसे पुरुष पात्रों तथा नायिका, गणिका आदि स्त्रिपात्रों के स्वरूप का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

छत्तीसवाँ अध्याय अंतिम अध्याय है। इस अध्याय में मुनियों ने भरतमुनि से पृथ्वी पर नाट्य के अवतरित होने के विषय में पुनः जिज्ञासा की? मुनि ने इसके उत्तर में दो आख्यान प्रस्तुत किए। प्रथम में भरतपुत्रों के द्वारा मुनिजनों के उपहासकारी नाट्य से रुष्ट होकर ऋषियों से शप्त हो जाने की तथा दूसरे में इसी कारण राजा नहुष की प्रार्थना पर स्वर्गस्थ नाट्य की भूतल पर अवतारणा होने की कथा है। इसी अध्याय में भरत ने उन ऋषियों के नाम दिए हैं, जिन्होंने भरत से 'नाट्यशास्त्र' सुना था। इनमें वाल्मीकि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, अंगिरा, पुलस्त्य, गौतम, कश्यप, उशना, दुर्वासा आदि के नाम दिए गए हैं।

1.4.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए-
   - (क) भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में कुल कितने अध्याय हैं ?
   - (ख) नाट्यशास्त्र के दूसरे अध्याय में क्या है?
   - (ग) भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को किन-किन ऋषियों ने सुना था?
   - (घ) नाट्यशास्त्र के छब्बीसवें अध्याय में क्या है?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   - (क) तेइसवें अध्याय में आहार्याभिनय का वर्णन है। (सही/गलत)
   - (ख) भरतमुनि ने नाट्य को धर्म, यश, आयु को घटाने वाला बताया है। (सही/गलत)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(ग) चौबीसवें अध्याय में पात्रों की उत्तम, मध्यम तथा अधम प्रकृति का वर्णन है। (सही/गलत)

(घ) दसवाँ अध्याय 'भूमिका-पात्र-विकल्पध्याय' है। (सही/गलत)

3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए –

(क) अट्ठाइसवें अध्याय से लेकर चौतीसवें अध्याय तक.....का विषय प्रतिपादित किया गया है। (संगीतशास्त्र/धर्मशास्त्र)

(ख) .....अध्याय भी नाट्य-प्रयोग की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। (चौथा/उन्नीसवाँ)

(ग) रूपकों की संख्या.....बताई गई है। (दस/बीस)

(घ) .....अध्याय में पुरुष एवं स्त्रियों की त्रिविध प्रकृति का निरूपण करने के साथ ही चार प्रकार के नायकों का सलक्षण वर्णन दिया गया है। (चौतीसवें/बीसवें)

1.5 भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र का महत्त्व

आज के नाट्य प्रयोक्ता, जो पारस्परिक रूप से नाट्य प्रयोग न करके नए प्रयोगों एवं मौलिक विधाओं पर बल देना चाहते हैं, उनके लिए भरत कृत नाट्यशास्त्र के जो अध्याय विशेष रूप से दृष्टव्य हैं, वे इस प्रकार हैं - प्रेक्षागृह के निर्माण एवं व्यवस्था से संबंधित दूसरा अध्याय, नाटक के लक्ष्य रसानुभूति और रस की व्याख्या करने वाला छठा अध्याय, भावाध्याय नामक सातवाँ अध्याय, स्वर के उतार चढ़ाव से अभिनय में प्रभाव डालने वाला उन्नीसवाँ अध्याय, रूपकों के भेद बताने वाला बीसवां अध्याय तथा व्यक्तियों को उनके अनुरूप भूमिका प्रदान करने वाला पैतीसवाँ अध्याय। छत्तीस अध्यायों में आबद्ध नाट्यशास्त्र के प्रतिपाद्य विषय का वर्गीकरण करने पर जो मुख्य तत्त्व प्राप्त होते हैं वे इस प्रकार हैं -

- भरत की दृष्टि में नाट्य-परंपरा का आदि स्रोत वही है जो भारतीय संस्कृति का मूल है, अर्थात वेद। उनके अनुसार चारों वेदों से एक एक अंग लेकर नाट्योत्पत्ति हुई है।

  "जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।

  यजुर्वेदादादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ।।" (*नाट्यशास्त्र*, 1.17)

  उस नाट्य को प्रस्तुत करने के लिए एक उपयुक्त एवं सरुचिपूर्ण नाट्य मंडप के निर्माण की विधि बताई गई है तथा वास्तविक नाट्य प्रयोग के पूर्व की जाने वाली क्रियाओं को पूर्वरंग कहा गया है।

- नाट्य प्रयोग का प्रमुख उद्देश्य है उद्विग्न, श्रांत या दुःखी मन को शांति पहुँचाना -

  दुःखार्तानां श्रमर्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।

  विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद्भविष्यति ।। (*नाट्यशास्त्र*, 1.114)

  यद्यपि इस स्थल पर विश्रांति पद का शाब्दिक अर्थ भरत प्रतिपादित 'रस' नहीं है, किंतु आगे भारतीय काव्यशास्त्र में रस के लिए संविद्विश्रांतिमय स्वरूप का विकास हुआ उसका बीज इस श्लोक में विद्यमान है। इस दृष्टि से आज का नाटककार भी भरत की आत्मा से दूर नहीं है क्योंकि आज भी कला का सर्वोच्च आह्लादकता,

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मन एवं प्राण को मिलने वाली एक अनोखी स्फूर्ति तथा समस्त बाह्य उपकरणों को हटाकर आत्मा को प्राप्त होने वाली निवृत्ति है।

- नाट्य के उद्देश्य तक पहुँचाने के लिए उसकी प्रयोग विधि के सम्यक् ज्ञान की आवश्यकता है। एतदर्थ एक ओर तो भरत ने चतुर्विध अभिनय का सांगोपांग विवेचन किया है तो दूसरी ओर प्रयोग के विषय नाट्य के रूपकादि दसों भेदों तथा उनके उपभेदों व अंगों आदि का पूर्ण विश्लेषण किया है। इसी के साथ नाट्य से अभिन्न छंद शास्त्र तथा संगीतशास्त्र की भी विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार नाट्य सिद्धांतों का शास्त्रीय विश्लेषण करने के साथ-साथ नाट्य को प्रस्तुत करने के क्रियात्मक पक्ष का भी नाट्यशास्त्र में अत्यंत विस्तृत विवेचन हुआ है। भरत की दृष्टि नाट्यप्रयोक्ता की रही है। अतः परवर्ती काल में रस एवं रूपक के दसों भेदों को लेकर चाहे कितनी ही काव्यशास्त्रीय परंपराएँ चली हों परंतु भरत के नाट्यशास्त्र में संसार के अनुकीर्तन रूप नाट्य के सम्यक् प्रयोग द्वारा आनन्द को प्रस्फुटित करने पर ही बल दिया गया है - "त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्य भावनुकीर्तनम्।" (*ना.शा.* 1.107)

- नाट्यशास्त्र में नाट्य कला एवं तत्संबंधी अन्य विधाओं का जैसा विस्तृत विवेचन मिलता है वैसा संसार की किसी अन्य भाषा में अप्राप्य है। प्रतिपाद्य विषयों की संपूर्णता एवं विविधता, स्पष्टता एवं उपोगिता की दृष्टि से यह ग्रन्थ अपने आप में अद्वितीय है।

- इसकी सीमाओं का प्रसार चतुर्दिक है। वास्तुकला की तरह नाट्यमंडप के स्वरूप, भाषाविज्ञान तथा शब्दशास्त्र की भाँति स्वरों के स्थान तथा शब्द-प्रभेद, काव्यशास्त्र की तरह रस, गुण, अलंकार, छंदशास्त्र की तरह छंद एवं वृत्त, ललित नृतत्त्वविज्ञान की तरह लोकधर्मी परंपरा और लोकानुजीवी भाषा, वेशभूषा तथा अलंकरण, संगीतशास्त्र की तरह गान एवं वाद्य, नृत्यशास्त्र की तरह नृत्त एवं नृत्य, सौंदर्यशास्त्र की तरह नाट्यानुभूति, समाजशास्त्री की तरह मानवीय प्रकृति, पुराशास्त्र की तरह से सांस्कृतिक परंपराओं, ठोस भूतशास्त्र की तरह या रासायनिक विधियों, साथ ही नाट्य के उपांगों और उपादेय अवांतर आनुषंगों और आनुषंगिकों का इतना गहरा, सूक्ष्म, व्यापक और अद्यावधि प्रासंगिक विवेचन हुआ है कि उसका समकालीन उपमान ढूँढना असंभव है। "भरत की शाश्वत साधना का परिनिष्ठित परिणाम है नाट्यशास्त्र। बिना नाट्यशास्त्र के भारतीय नाट्यकला की कल्पना ही नहीं की जा सकती, पर वह न केवल नाट्यकला ही अपितु काव्य, संगीत एवं नृत्य आदि विभिन्न ललितकलाओं की भी विश्वकोष है। प्राचीन भारतीय नाट्यकला की कल्पना ने प्रागेतिहासिक काल में ही आर्यों एवं आर्येतर सभ्यताओं के संगम का मार्ग प्रशस्त किया था, इसकी पुष्टि तो नाट्यशास्त्र से ही होती है। यही कारण है कि भरत ने समस्त मानव की एकता के मांगलिक अनुष्ठान का महान समारंभ सर्वलोकानुरंजनकारी नाट्यकला के माध्यम से किया था। ...भरतमुनि ने आज सदियों पूर्व भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और जातीय एकता की मंगलमयी कल्पना को नाट्यकला के माध्यम से प्रकृत रूप दिया।" (*भरत और भारतीय नाट्यकला* - डॉ. सुरेंद्रनाथ दीक्षित, आमुख से)

- नाट्यशास्त्र के संदर्भ में यह बात विशेष रूप से याद रखने वाली है कि भरत की दृष्टि प्रयोगपरक है। वस्तुतः नाट्यशास्त्र उन पाँचों प्रश्नों का उत्तर है जो ऋषियों ने भरत से किए थे। वे प्रश्न हैं - नाट्यशास्त्र की रचना क्यों एवं

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

किसके लिए की गई, इसके कितने विभाग हैं, इसके कितने अंग हैं, इन अंगों को जानने के प्रमाण क्या हैं, नाटक के उपदिष्ट अंगों का प्रदर्शन करते हुए नाट्य का प्रयोग किस भाँति करना चाहिए? "स कटमुत्पन्न: केन प्रयोजनप्रकरणोत्पन्न:, तत्प्रयोजनस्य वेदेभ्य एव सिद्धेः।.....कस्याधि कारिण: कृते,.....कत्यंग:..... किम्प्रमाणश्चेति.....अस्येति नाट्यस्य कीदृक् प्रयोगः ।" इन प्रश्नों का उत्तर जिन नियमों का प्रणयन करते हैं उनका मूल प्रयोजन है प्रयोक्ता का मार्गदर्शन करना। दूसरे शब्दों में नाट्य वस्तु का कैसे मंचावतरण किया जाए इस दिशा में प्रयोगकर्ता का उपकार करना - "तावन्नानेन किंचिदुपदिश्यते तं प्रत्युपकाराद्क्रते ।"

इन नियमों में भरत बड़े आधुनिक हैं। आधुनिकता का अर्थ है गतिशीलता, देश और काल का आग्रह, धर्म और सीमाओं के साथ सामंजस्य कर सकना। अतः भरत ने अपने नियमों को कहीं भी अंतिम मानने पर जोर नहीं दिया है - वह केवल दिशा संधान करते हैं। भरत के नियम अंतिम न होने पर भी इतने व्यापक हैं कि परवर्ती सारे नाट्यशास्त्र के बहुआयामी विकास और विस्तार का बीज भरत में खोजा जा सकता है। "नाट्यशास्त्र भरतमुनि की एकमात्र महान कृति है। भारतीय कलाओं के इस विशाल कोष की रचना से पूर्व भी भारतीय जन जीवन में कला की विभिन्न विधियाँ थीं, पर अविकसित और विश्रृंखल रूप में ।...भरत ने पहले पहल नाट्यकला को शास्त्र का व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप दिया। नाट्य का उद्भव, नाट्य की रचना, नाट्य मंडप, नाट्य का अभिनयन आदि विभिन्न विषयों का इतना परिनिष्ठित और व्यापक विवेचन न तो पहले हुआ और न बाद में ।"(*भरत और भारतीय नाट्यकला* - डॉ. सुरेंद्रनाथ दीक्षित, पृष्ठ - 7-8)

भरत के संबंध में जो अन्य बात याद रखने की वह है नाट्यकला के प्रति उनका समर्पित व्यक्तित्व। उनके लिए नाट्यकला मात्र एक ललित कला ही नहीं है अपितु वह एक अखंड, संपूर्ण कला है जिसका उपजीव्य संपूर्ण और अखंड जीवन। इसीलिए सारी ललित कलाएँ - काव्य, संगीत और वास्तु-विधाएँ और उप-विधाएँ नाट्यकला में अंतर्भूत हो जाते हैं। सच पूछा जाए तो भरत के लिए नाट्यकला एक जीवनानुगुण्यमयी कला है जो केवल हमारे मन को संतोष ही नहीं प्रदान करती अपितु हमारी चेतना का संस्कार भी करती है।

1.5.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए -
   - (क) नाट्यकला से क्या आशय है?
   - (ख) आधुनिक का क्या अर्थ है?
   - (ग) भरतमुनि की दृष्टि में नाट्य परंपरा का आदि स्रोत क्या है?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   - (क) नाट्य को उद्देश्य तक पहुँचाने के लिए उसकी प्रयोग विधि के सम्यक् ज्ञान की आवश्यकता है। (सही/गलत)
   - (ख) भरत की दृष्टि नाट्यप्रयोक्ता की रही है। (सही/गलत)
   - (ग) भरतमुनि के लिए नाट्यकला मात्र एक ललित कला ही नहीं है अपितु वह एक अखंड, संपूर्ण कला है जिसका उपजीव्य संपूर्ण और अखंड जीवन है। (सही/गलत)
   - (घ) नाट्यशास्त्र अभिनव गुप्त की एक महान कृति है । (सही/गलत)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -

(क) नाट्य प्रयोग का प्रमुख उद्देश्य उद्विग्न, श्रांत या दुःखी मन को.....पहुँचाना है। (शांति/निराशा)

(ख) नाट्य प्रयोग के पूर्व की जाने वाली क्रियाओं को.....कहा गया है। (मंगलाचरण/पूर्वरंग)

(ग) प्रेक्षागृह के निर्माण एवं व्यवस्था से संबंधित नाट्यशास्त्र का .....अध्याय है। (दूसरा/चौथा)

1.6 सारांश

नाट्यशास्त्र के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भरत कृत नाट्यशास्त्र अपने विस्तीर्ण क्षेत्र के कारण अपने उत्तरकाल में निर्मित सभी नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों से विशिष्ट बना रहा। इसका कारण है नाट्य से संबंधित सभी विधाओं का लक्षण निरूपण करते हुए इसका विश्वकोश के रूप में मान्य होना। इसमें रूपकों में प्रयुक्त होने वाले अभिनय के (वाचिक) छंदों से लेकर सात्विक, आंगिक तथा आहार्य अभिनय, रूपकों के संघठक तत्त्वों आदि का सांगोपांग विवरण तथा उनमें प्रयुक्त होने वाले गीत तथा संगीत के उपकरण, वाद्य आदि के विषय में सूक्ष्मतम विवरण दिया गया है। इस प्रकार कला के सूक्ष्म एवं व्यापक विवेचन वाला विश्व में एकमात्र ग्रंथ नाट्यशास्त्र ही है।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र के अध्यायों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. भारतीय नाट्य परंपरा में 'नाट्यशास्त्र' के महत्त्व का विवेचन कीजिए।
4. 'नाट्यशास्त्र' को पंचम वेद क्यों कहा जाता है? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।

1.8 संदर्भ-ग्रंथ

1. *हिंदी नाट्यशास्त्र* - सुधा रस्तोगी
2. *आचार्य भरत* - डॉ. शिवशरण शर्मा
3. *भरत और उनका नाट्यशास्त्र* - डॉ. ब्रजवल्लभ मिश्र
4. *हिंदी नाट्यशास्त्र* - बाबू लाल शुक्ल शास्त्री
5. *भरत और भारतीय नाट्यकला* - डॉ. सुरेंद्रनाथ दीक्षित

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पाठ-2

हिंदी का पारंपरिक रंगमंच (संक्षिप्त परिचय)

डॉ० इन्दुजा अवस्थी
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
सम्पादिका–प्रो. भवानी दास

रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 पारंपरिक रंगमंच का उद्भव एवं विकास
2.2.1 परंपरा
2.2.2 वैष्णव भक्ति आंदोलन
2.2.3 भाषा नाटक
2.2.4 रास की परंपरा
2.2.5 बोध प्रश्न
2.3 पारंपरिक रंगमंच की सामान्य प्रवृत्तियाँ
2.3.1 बोध प्रश्न
2.4 प्रमुख पारंपरिक नाट्य रूप
2.4.1 रामलीला
2.4.2 रासलीला
2.4.3 अंकिया नाट
2.4.4 सांग (स्वांग)
2.4.5 नौटंकी
2.4.6 बिदेसिया
2.4.7 ख्याल

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2.4.8 माच

2.4.9 बोध प्रश्न

2.5 सारांश

2.6 अभ्यास प्रश्न

2.7 संदर्भ-ग्रंथ

2.0 अधिगम का उद्देश्य

यह पाठ पारंपरिक रंगमंच तथा पारंपरिक नाट्य रूप पर केंद्रित है। इस पाठ के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित करने में सक्षम होंगे:

- पारंपरिक रंगमंच की परंपरा को समझ सकेंगे।
- पारंपरिक रंगमंच के महत्त्व तथा उसकी प्रासंगिकता से परिचित हो सकेंगे।
- पारंपरिक रंगमंच की सामान्य प्रवृत्तियाँ जान सकेंगे।
- पारंपरिक रंगमंच की विभिन्न शैलियों को विस्तार से जान सकेंगे।
- विभिन्न क्षेत्रों के पारंपरिक नाट्य रूपों से परिचित हो सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

पारंपरिक रंगमंच युग-युग का अपना इतिहास संजोए हुए मानव जाति के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रहा है। परंपरागत ज्ञान और अनुभवों, अनगिनत मानवीय कल्पनाओं और स्मृतियों के ताने-बाने से इसकी सृष्टि हुई है। यह पारंपरिक विविधता में एकता की उक्ति को सार्थक बनाने वाली है। अनेक राज्यों, प्रांतों और अंचलों में विभक्त भारत देश में कई पारंपरिक शैलियाँ प्रचलित हैं। इन पारंपरिक शैलियों में प्रत्येक अंचल के प्रभाव से युक्त किसी विशेषता का होना स्वाभाविक है। इनमें कहीं पारंपरिक शैलियों का रूप नृत्य प्रधान है तो कहीं गीत-संगीत प्रधान, कहीं धार्मिक सरोकार है तो कहीं लौकिक सामाजिक संस्पर्श। किंतु इस विविधता में भी इन पारंपरिक रंगमंच में समानता का गुण स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। सामान्यतः ज्यादातर लोकनाट्य परंपरा अलिखित है, इसलिए विभिन्न पारंपरिक शैलियों के उद्भव और विकास की जानकारी उपलब्ध नहीं है। प्रचलित कथाओं और विभिन्न मतों के आधार पर ही पारंपरिक रंगमंच की सृष्टि के संबंध में अनुमान लगाया जा सकता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2.2 पारंपरिक रंगमंच का उद्भव एवं विकास

लोक, परंपरा अथवा पारंपरिक रंगमंच की संज्ञा उन नाट्य रूपों को दी जाती है जो जनसमुदाय के आनंद-उल्लास की सामूहिक अभिव्यक्ति होते हैं तथा समाज में प्रचलित रूढ़ियों, धार्मिक अनुष्ठानों और लोक-कथाओं से जुड़े हैं। इसके साथ पारम्परिक रंगमंच में एक तरह की अनायासता और अनगढ़पन होता है जिसके कारण उसे नियमित नाटकों की धारा से अलग और शायद हीन भी माना जाता है, परन्तु भारतीय नाट्यरूपों में एक तो महाकाव्यों, पुराणों अथवा गाथा काव्यों से जुड़े होने के कारण साहित्यिकता का गुण है। दूसरे प्रदर्शन और संरचना के नियमों और अनुशासनों का निश्चित पालन किया जाता है, (वास्तव में भरत के नाट्य शास्त्र में बताये गये अनेक नियम व्यवहारों तथा विशेषताओं की पहचान हमारे लोक रंगमंच में ही मिलती है) इसी से भारतीय लोकनाटकीय विधाओं को पारंपरिक अथवा परम्पराशील रंगमंच कहना ही अधिक उपयुक्त है। परम्पराशील रंगमंच नाम देने पर इसके अधिक परंपरा अथवा रूढ़िग्रस्त होने का एहसास होता है, जबकि हमारे लोक रंगमंच में परंपरा तो है परन्तु एक निश्चित खुलापन भी है, इसी से लंबे समय से चले आने वाले इन नाट्यरूपों को पारंपरिक रंगमंच का नाम देना अधिक उपयुक्त है। भारतीय नाट्य की हजारों वर्ष पुरानी परंपरा की प्रारंभिक कड़ियाँ स्पष्ट नहीं हैं। संस्कृत के निश्चित नियमानुशासित नाटकों को प्राथमिक कहना संगत नहीं लगता। नाट्यशास्त्र में जितने विस्तार के साथ नाट्य प्रस्तुति के विधानों और प्रयोगात्मक अनुष्ठानों की चर्चा की गई है उसके आधार पर यह कहना संगत लगता है कि उसके पहले नाट्य प्रस्तुतियाँ होती थीं, इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों की प्रस्तुतीकरण के संबंध में जो भी संकेत मिले हैं उनमें आज के पारम्परिक रंगमंच के कई-तत्त्व स्पष्ट हैं। अतः यह मान लेना शायद उचित हो कि संस्कृत नाट्य परंपरा के पहले भी लोक-प्रचलित कोई संपन्न नाट्य परंपरा थी जो एक ओर संस्कारित होकर संस्कृत के महान् नाटकों के रूप में प्रतिफलित हुई और दूसरी ओर अनेक रूपों और शैलियों में भारत के विभिन्न प्रदेशों के पारंपरिक रंगमंच के रूप में प्रवाहित होती रही।

2.2.1 परंपरा

वैदिक साहित्य में स्वतंत्र विधा के रूप में नाटक का अस्तित्व नहीं मिलता परंतु ऋग्वेद में लगभग एक दर्जन संवाद सूत्र हैं, जिनमें कथानक एवं नाटकीय-कार्यव्यापार की कुछ झलक मिलने के कारण विद्वानों ने नाटक का पूर्व रूप माना है। अधिक प्रसिद्ध एवं नाटकीयता से परिपूर्ण संवाद सूत्र है: पुरूरवा उर्वशी संवाद, यम-यमी संवाद, विश्वामित्र नदी, नेमा भार्गव और इंद्र तथा अगस्त्य, लोपा-मुद्रा संवाद। रामायण और महाभारत दोनों में ही नाट्य प्रदर्शनों का उल्लेख मिलता है और विवरण के आधार पर इन्हें पारंपरिक रंगमंच की प्रस्तुतियाँ माना जा सकता है। पतंजलि के महाभाष्य में कंस-वध एवं बलिवध नामक दो प्रदर्शनों का नाम आया है। बताया गया है कि शौभनिक कंस का वध अथवा बलि को बाँधने का अभिनय करते हैं और ग्रंथिक कथा-गायन करते हैं। स्पष्ट है कि प्रस्तुति की यह शैली पारंपरिक रंगमंच की है। जैनों के राउपसेनिय

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सुत्र (राजप्रश्निक सूत्र) में ''तीर्थकर चरित'' नामक नाट्य-विधि का उल्लेख मिलता है जिसमें महावीर के देवलोक से अवतार, और उनके सांसारिक जीवन की घटनाओं को नृत्य संगीत के साथ प्रस्तुत किया गया था। आज के रामलीला और रासलीला जैसे धार्मिक नाट्यरूपों के मूल तत्त्व-अवतार के चरित का संगीत के साथ प्रस्तुतीकरण के कारण इसे हमारे पारम्परिक रंगमंच की पूर्वपीठिका कहना उचित होगा।

क्लासिकीय रंगमंच में रूपक एवं उपरूपक इन दो प्रकार की प्रस्तुतियों का उल्लेख है, इनमें से उपरूपक और कई रूपक भेदों में भी पारंपरिक रंगमंच की विशेषताएँ मिलती हैं। उपरूपकों के विवरण में बताया गया है कि कथानक पौराणिक होते थे, संगीत और नृत्य की प्रधानता होती थी, और लोकभाषा का प्रयोग किया जाता था(संस्कृत का नहीं)। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि इन उपरूपकों में अधिकांश की एकाध पुस्तक भी नहीं मिल पाती, संभवतः ये लोकनाट्य रूप में जीते हों। साहित्य दर्पण में अठारह उपरूपकों का विवरण है उनमें से नाट्य रासक. रासक, हल्लीसक आदि को रास, चर्चरी फागु आदि पारंपरिक नाट्यों का पूर्वरूप मानना संगत लगता है।

2.2.2 वैष्णव भक्ति आंदोलन

पौराणिक और सामाजिक कथानकों को लेकर नकल, स्वांग आदि निरंतर लोक के बीच प्रचलित रहे। वैष्णव भक्ति का प्रार्दुभाव होने पर उसका प्रभाव संगीत, वस्तुकला, मूर्तिकला एवं साहित्य सभी पर पड़ा। वैष्णव भक्ति धारा में ईश्वर के अवतार राम और कृष्ण की लीलाओं के गान एवं उनका नाटकीय प्रस्तुतीकरण भक्ति के प्रधान भूमिका के रूप में स्वीकृत हो गया। अतः रामलीला एवं रासलीला के प्रादुर्भाव एवं विकास में भक्ति आंदोलन का निश्चित योगदान है।

2.2.3 भाषा नाटक

चौदहवीं शताब्दी तक संस्कृत नाटकों का रूप परिवर्तित होने लगा था, प्रस्तुतियों में गीत और नृत्य का प्रयोग बढ़ गया था। उस समय देश के विभिन्न भागों में ऐसे नाटक लिखे जाने लगे जिनमें संस्कृति संवादों के साथ भाषा गीतों का समावेश है। मिथिला में कीर्तनियाँ नाटकों की रचना हुई और असम में शंकर देव ने अंकिया लिखे। इन नाटकों के कथानक पौराणिक होते हैं और संगीत नृत्य का अत्यधिक प्रयोग होता है। ये नाट्य प्रस्तुतियाँ हमारे पारंपरिक रंगमंच का अंग बनीं।

2.2.4 रास की परंपरा

रास नृत्य का उल्लेख उपरूपकों के प्रकरण में रासक और हल्लीसक के रूप में किया गया है, शारदातनय ने चर्चरी का भी उल्लेख किया है। पंद्रहवीं शताब्दी तक ब्रजमंडल देश के विभिन्न भागों में अपने वाले वैष्णव भक्तों का केंद्र हो गया था। कृष्ण की लीलाओं का गान और रासनृत्य की संकल्पना तो थी ही, उसके साथ चरिताभिनय की संकल्पना भी जुड़ गई और अभिनय, संवाद, नृत्य एवं भाषा-गीतों से संपन्न रंग-पद्धति अथवा रासलीला आरम्भ हो गयी। रामायण के अभिनय का उल्लेख हरिवंश पुराण में मिलता है जहाँ प्रद्युम्न ने नट बनकर बांणसुर के दरबार में रामायण का अभिनय प्रस्तुत किया था, रासलीला के प्रभाव स्वरूप

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

रामलीला नाम ग्रहण करके और तुलसी के रामचरित मानस का आधार लेकर रामलीला समूचे हिंदी प्रदेश का प्रधान पारंपरिक नाट्य बन गई।

16वीं शताब्दी से लेकर अब तक पारम्परिक रंगमंच के विविध रूप विभिन्न प्रदेशों में व्यापक रूप से प्रस्तुत होने लगे। सांग, नौटंकी, जात्रा, मांच, ख्याल, ये सभी जन सामान्य के बीच अत्यधिक लोकप्रिय होते गये और आज तक लगभग उसी रूप में प्रस्तुत होते हैं। 20वीं शताब्दी के आरंभ से ही पाश्चात्य प्रभाव के कारण नागर रंगमंच का विकास हुआ और उसका स्वरूप और प्रस्तुति पाश्चात्य पद्धति पर ही होने लगी। तभी कुछ समय के लिए नागर रंगमंच और पारंपरिक रंगमंच के बीच अलगाव उत्पन्न हो गया। इधर हमारे नये नाट्यकार एवं निर्देशक फिर पारंपरिक रंगमच की लोक में गहरी व्याप्त लोकप्रियता और हमारी अपनी जड़ों की पहचान तथा उनमें फिर से एक नये रूप में पारंपरिक रंगमंच की ओर आकर्षित हो रहे हैं, सरकार की ओर से भी पारंपरिक नाट्य प्रस्तुतियों को बढ़ावा और सहायता मिल रही है और हमारा पारंपरिक रंगमंच जो विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग शैलियों और बोलियों में बराबर समूचे देश लोक-संस्कृति का कला-शृंगार बना रहा नागर संस्कृति में भी समाहत हो रहा है।

2.2.5 बोध प्रश्न

1. 'नाट्यशास्त्र' किसकी रचना है?
2. 'कीर्तनियाँ' किस विशेष क्षेत्र से संबंधित है?
3. श्रीमंत शंकरदेव द्वारा लिखे नाटकों को क्या कहा जाता है?

2.3 पारंपरिक रंगमंच की सामान्य प्रवृत्तियाँ

पारंपरिक नाट्य-परंपरा प्रधानतया मौखिक रही है और इसलिए उसके आलेख सुरक्षित नहीं रह सके परंतु फिर भी अभिव्यक्ति की विविधता, संपन्नता और परिणाम की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। अधिकतर यह माना जाता है कि पारंपरिक नाटक एक रूपहीन कृति होती है और उसकी रचना के कोई नियम और व्यवहार नहीं होते परंतु भारतीय पारंपरिक रंगमंच में ऐसी बात नहीं है। युगों से चले आने वाले हमारे पारंपरिक नाट्यरूपों में सुनिश्चित नियम और रूढ़ियाँ हैं, और अलग-अलग प्रदेशों तथा शैलियों के नाट्यरूपों में कुछ प्रवृत्तियाँ समान हैं।

कथानक और विषयवस्तु—पारंपरिक रंगमंच में तीन प्रकार की कथावस्तु मिलती है। पौराणिक कथाओं या पात्रों से संबद्ध, दूसरे सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप यथार्थ जीवन को प्रदर्शित करने वाली कथा में, तीसरे प्रेम और शौर्य के आख्यान। प्रेमाख्यानों की परंपरा सांग और संगीत में विशेषकर विकसित हुई।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

धार्मिक नाटकों में पौराणिक कथानकों का प्रयोग किया जाता है। रामचरित, कृष्णकथा, सत्य हरिश्चंद्र और प्रह्लाद-चरित के कथानक असम से केरल तक हर नाट्यरूप में अभिनीत होते हैं, लोक कथानकों पर आधारित नाट्यरूपों में भी पौराणिक कथानकों से संबंधित नाटक अवश्य खेले जाते हैं, जैसे मांच पद्धति में रामलीला मांच, नौटंकी में रामायण अथवा सत्यहरिश्चन्द्र जैसे नाटक। एक और रोचक रूढ़ि यह भी है कि जहाँ लौकिक नाट्य-परंपरा के नाटकों में सामाजिक जीवन के कुछ परिचित व्यापारों का उल्लेख अथवा सामाजिक कुरीतियों पर स्पष्ट व्यंग्य प्रमुख स्थान रखता है, वहाँ धार्मिक नाटकों में भी बीच-बीच में लाये जाने वाले छोटे ''प्रसंगों'' अथवा कथा के बीच में ही स्थानीय अधिकारी अथवा किसी प्रवाद पर छींटा-कशी कर दी जाती है। तमिलनाडु के नाट्यरूप तेरूकुत्तु में कथानक पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हैं परंतु विदूषक की टिप्पणियाँ सामाजिक और सामयिक हो सकती हैं, वह दर्शकों के सहृदय न होने के लिए फटकार भी सकता है। इसी प्रकार महाराष्ट्र के पूर्णतया लोक-परक नाट्य तमाशा में कथा कोई भी हो, स्थानीय घटनाओं का उल्लेख कर दिया जाता है। कभी-कभी तो गम्भीर प्रसंगों के बीच किसी स्थानीय राजनीतिक नेता या व्यापारी के बारे में ऐसी तीखी व्यंग्यात्मक चुटकी ली जाती है कि समूचे दर्शक समाज में ठहाके गूंज उठते हैं। गुजरात के भवाई में कंजूस व्यापारी या रूढ़िवादी सामाजिक मुखियाओं की खिल्ली उड़ाई जाती है। वस्तुतः भारतीय जन की विनोद प्रवृत्ति, ठोस बुद्धि और तीखी प्रतिक्रिया इन प्रसंगों में दिखलाई देती है। इनसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारत का तथाकथित ''अनपढ़'' मनुष्य भी बदलती हुई परिस्थिति और सामाजिक समस्याओं से भली-भाँति परिचित है। पारिवारिक रंगमंच जहाँ मनोरंजन करता है, धार्मिक मनोभावों की अभिव्यक्ति करता है वहीं उपदेश भी दे सकता है और सामाजिक यथार्थ पर निरंकुश टिप्पणियाँ भी।

संवाद और भाषा-शैली—पारंपरिक नाट्यरूपों में संवादों का स्वरूप और उनका नाटकीय प्रयोजन पात्रों का परिचय देने अथवा दृश्यवर्णन करने का भी होता है (संस्कृत नाटकों में भी यह रूढ़ि देखने को मिलती है, जैसे मृच्छकटिक नाटक में विदूषक द्वारा वसंत सेना के घर का वर्णन)। बहुत-से पात्र रंगमंच के बाहर घटी घटनाओं का परिचय देते हैं। संवाद पद्य और गद्य दोनों में ही होते हैं और लोक-गीतों की धुनों में भी। संवाद की दृष्टि से एक अन्य विशेषता यह है कि नाटक की अनेक कथा-स्थितियों में पात्र अकेला मंच पर छोड़ दिया जाता है और लंबे स्वगत कथन प्रस्तुत करता है। पारंपरिक नाट्य में संवादों की शुद्धता और सही-सही दुहराने पर बहुत जोर नहीं दिया जाता है, कभी तो संवाद लिखे होते ही नहीं, अभिनेता स्वतः घटना के अनुसार संवादों की रचना कर लेता है अथवा लिखित संवादों में परिवर्तन कर लेता है। पारंपरिक नाट्यरूप क्षेत्रीय भाषाओं में प्रस्तुत किये जाते हैं, परंतु भाषा में ग्राम्यता नहीं होती, वरन् काव्यमयता का सहज गुण होता है जो संगीत के साथ मिलकर और प्रभावशाली बन जाता है।

नाट्यालेख—सभी क्षेत्रों और जनपदों की पारंपरिक नाट्यशैली में अभिनय-परक दृश्य गान और एकालापी कथनों की प्रचुरता रहती है। इन नाट्य-रूपों का पाठ्य अंश बिलकुल सुनिश्चित और स्थिर नहीं

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

होता, लिखित पाठ्य का प्रयोग करने पर भी उनको बदलते जाना एक स्वाभाविक-सी बात है। पात्र सदा लिखित पाठ्य से बंधे नहीं रहते, बोलते समय उन्हें जो भी बात सूझती है, उसका उल्लेख कर देते हैं। दर्शकों की रुचि और रुझान देखते हुए भी नाटकों के रूप छोड़े-बड़े कर दिये जाते हैं।

संगीत और नृत्य का प्रयोग—पारंपरिक रंगमंच में गायन भाव प्रकट करने का मुख्य साधन है। गद्य संवादों का प्रयोग होता तो है, परंतु गद्य संवाद एवं गीतों की प्रधानता होती है, किसी-किसी में अलंकरण के लिए तालबद्ध गति विधान एवं कभी-कभी तो विशिष्ट शास्त्रीय शैलियों के नृत्यों का प्रयोग भी होता है।

संगीत लगभग सभी पारंपरिक नाट्यरूपों का एक प्रमुख अंग है। अधिकतर संगीत रागानुबद्ध होता है। (उत्तर-भारतीय नाट्यरूपों में हिंदुस्तानी पद्धति और दक्षिण भारतीय रूपों में कर्नाटक संगीत का प्रयोग किया जाता है), परंतु पारंपरिक रंगमंच का प्राण होती है लोक-धुनें। ढोलक, झांझ, मंजीरे, करताल, चिकारा, नरसिंहा, बांसुरी और अब हारमोनियम और सारंगी नाटक में आरंभ से लेकर अंत तक बराबर बजते हैं और उत्सव का वातावरण बना देते हैं। नौटंकी का नक्कारा, मांच का ढोलक और भवाई का भूंगल बजते ही दूर-दूर से दर्शक-वृंद नाट्यस्थली की ओर खिंचे चले आते हैं।

कुछ नाट्यरूपों में संगीत के साथ-साथ नृत्य का भी प्रयोग होता है। रासलीला के नृत्य-टुकड़े उत्तर भारत की शास्त्रीय कथक नृत्य-शैली का पूर्वरूप माने जाते हैं। आंध्रप्रदेश के भामाकलापम् में कुचिपुड़ि नृत्य-शैली का प्रयोग किया जाता है और यक्षगान तथा तेरकुत्तु में तीव्र गतियों और तीखी भंगिमाओं वाली लोक-आधारित नृत्य-शैलियाँ प्रयुक्त होती हैं।

गायक वृंद— लगभग सभी नाट्यरूपों में एक गायन-मंडली होती है। पात्रों के संवाद गायन के अतिरिक्त ये सूत्रधार के साथ कथागायन में भी योग देते हैं। इसके अतिरिक्त सामूहिक गान भी सामाजिकों द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। गायक कभी-कभी छोटी-मोटी भूमिका भी करते हैं, जैसे रासलीला में सामाजियों में से कोई उठकर दुपट्टा ओढ़कर यशोदा की भूमिका के दो-एक संवाद बोल देता है और फिर गायकों में आकर शामिल हो जाता है। यक्षगान का भागवत भी कभी-कभी अपने संगीतात्मक कथागायन में मंच पर एक ओर बैठे हुए नटों को सम्मिलित कर देता है और कभी-कभी वे ही नट कोई भूमिका करने लगते हैं।

पात्र और चरित्र-चित्रण—पारंपरिक नाट्य की एक विशेषता उसी बहुप्रयोजनमयी पात्र-कल्पना है। इन नाटकों में एक ही पात्र कई तरह के रूप लेता है। कभी नाटकीय कथा का वर्णन करते हुए उसका गायक और आख्याता बन जाता है, कभी रंगकर्मी के रूप में दृश्य-सज्जा की सामग्री रंगमंच पर लाता-ले जाता है, कभी किसी विशेष भूमिका वाला पात्र बन जाता है और कभी दर्शकों के प्रतिनिधि के रूप में अनेक कथा-स्थितियों पर टिप्पणी करते हुए प्रदर्शन और दर्शकों के पारंपरिक संबंध को गहरा बनाता है।

पारंपरिक नाट्य का अभिनेता परंपरागत अभिनय नियमों एवं आशुसंवाद सृष्टि तक अनेक स्तरों पर अभिनय करता है। प्रत्येक रस की सृष्टि में कुशल होता है, प्रत्येक प्रकार के पात्र को जी लेता है। अधिकांशतः उसे संगीत भी आता है और नृत्य की ओर अभिनय में अपने शरीर का स्वच्छंद प्रयोग तो

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उसकी विशेषता है। अधिकांशतः स्त्री पात्रों का अभिनय पुरुष पात्र ही करते हैं। पारंपरिक रंगमंच का अभिनेता मौलिक अभिनय प्रतिभा से दर्शकों का मन मोह लेता है।

अधिकतर पारंपरिक नाट्य-रूपों से अभिनय शैलीबद्ध होता है और गतियाँ नृत्यमूलक। अभिनय की यह शैली विशेषकर गेय नाटकों में मिलती है। इसके अतिरिक्त गद्य संवाद बोलने के बाद जब वादकगण उसे वाद्यों पर दुहराते हैं तो उनको नृत्य करने का अवसर मिल जाता है। बोलने का ढंग भी लययुक्त अथवा विशेष स्वराघातयुक्त होता है।

मंच विधान–पारंपरिक रंगमंच की प्रस्तुति अधिकतर खुले मंचों पर हाती है। कभी-कभी मंदिरों के साथ लगे हुए स्थानों में अथवा मेलों, तमाशों में शामियानों में मंच बना लिये जाते हैं। कभी तो सड़क पर या ग्रामों में पंचायत घर में नाट्य प्रस्तुति होती है। कुछ नाट्य रूप जैसे अंकिया नाट या रामलीला के मंचों की अपनी विशिष्टता होती है। मंच पर दृश्य-सज्जा की सामग्री कम-से-कम होती है। कुछ छोटे-छोटे उपकरण मात्र होते हैं जिन्हें उठाने रखने का काम पात्र स्वयं कर लेते हैं। अभिनय क्षेत्र को नाटकीय कथा के अनुसार किसी प्रकार की विशिष्टता नहीं दी जाती। दृश्य-सज्जाहीन वही मंच कभी महल बन जाता है, कभी उपवन तो कभी नदी का किनारा और उसमें रखा हुआ एकाकी स्टूल (यदि हुआ तो) कभी सिंहासन बनता है, कभी निकुंजों का आसन और कभी सरितातट की सीढ़ी, जिस पर काल्पनिक कपड़े रखकर नायिका स्नान करने ''उतर'' जाती है।

मंच कभी एक ऊँचा चबूतरा होता है- जैसे नौटंकी अथवा ख्याल में, कभी समधरातल का रंग-स्थल, जैसे तेरुकुत्तु या भवाई में, और कभी ऊँचे धरातल का रंगमंच, जैसे माच में। इन सभी नाट्य-रूपों में रामलीला का रंगस्थल अपनी विशेषता रखता है, क्योंकि वह बहुस्थलीय रंगमंच है। पारंपरिक रंगमंच में सबसे अधिक रूपों में प्रयुक्त होने वाली रंगमंच प्रणाली प्लेटफार्म स्टेज का चबूतरा मंच ही है, जिसमें सामने या तीन ओर दर्शक बैठते हैं। कभी-कभी केवल सजावट के विचार से कुछ नाटकों में एक पिछला परदा टाँग दिया जाता है। नाटकीय कथा की अवधि का बोध कराने के लिए यवनिका का विधान नहीं होता, पात्रों का प्रवेश और प्रस्थान, दृश्य-परिवर्तन आदि सभी कुछ दर्शकों के सामने उनके देखते-ही-देखते होता है। परंतु कुछ नाट्यरूपों में एक विशेष प्रकार से एक अग्रपटी का प्रयोग किया जाता है। कोई भी दो व्यक्ति एक चादर पकड़कर अभिनय क्षेत्र के सामने खड़े हो जाते हैं और पात्रों के प्रवेश अथवा प्रस्थान का औपचारिक विधान कर देते हैं। रासलीला में राधाकृष्ण के संयुक्त रूप की झाँकी प्रस्तुत करते समय नाटक के अंत में इसी अग्रपटी का प्रयोग होता है। पर्दे के पीछे राधाकृष्ण संयुक्त मुद्रा में और उनके दुपट्टों को पकड़कर सखियों, नृत्य-मुद्रा में खड़े हो जाते हैं तथा व्यक्ति हट जाते हैं, दर्शक भी खड़े हो जाते हैं और आरती प्रारंभ होती है। यक्षगान और कूडिअट्टम में इस अग्रपटी का प्रयोग बड़ी नाटकीय स्थितियों में किया जाता है। कोई भी राक्षस या भयानक पात्र परदे पर आता है तो इसके पीछे से। वह एकदम सामने नहीं आता, पहले पटी के

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

बाहर अपना एक हाथ निकालता है, फिर पाँव, फिर थोड़ा-सा सिर-किरीट और अन्त में पूरा दर्शकों के सामने आता है।

वेशभूषा और मुख-सज्जा–विभिन्न पारंपरिक नाट्य-रूपों में इस संबंध में बड़ी विविधता पायी जाती है, परंतु एक बात उनमें समान है। सभी की वेशभूषा में भड़कीलापन होता है, कीमखाव और मखमल, गोटा और कलाबत्तू (अब चमकीला नाइलान) से बने झिलमिलाते वस्त्रों के तेज चटकीले रंग, चमकदार भारी मुकुट, केयूर और भुजबन्ध, लंबे-चौड़े हार, मेखलाएँ, कमरबंध और भाँति-भाँति के मुखौटों का प्रयोग होता है। वेशभूषा यथार्थपरक नहीं होती। रामलीला और रासलीला नाटकों के राम और कृष्ण तथा नौटंकी के महाराज, भवाई के मुगल सरदासर-सब एक ही तरह के मुगल-कालीन चोगे पहनते हैं। कभी-कभी पात्रों के चरित्र के हिसाब से वेशभूषा का रंग निर्धारित होता है (जैसे रामलीला में राक्षसों की काली पोशाकें)।

मुख-सज्जा में भी भड़कीलेपन का विशेष आग्रह रहता है। मुर्दासिंगी, कोयला, काजल और गेरू तथा चमकदार-अबरक, कहीं-कहीं तो रंग-बिरंगी पन्नी-इन सभी का प्रयोग कर लिया जाता है। अधिकतर नाट्य-रूपों में पुरुष स्त्रियों का अभिनय करते हैं। पुरुषों को स्त्री-सज्जा देने में विशेष सावधानी नहीं बरती जाती, कभी-कभी तो घूँघट में मूँछ छिपाकर शेष प्रसाधन स्त्रियों की तरह कर लिया जाता है और समूचे प्रदर्शन में वे पात्र अपना घूँघट ही नहीं उठाते, जैसे भवाई या रासलीला यशोदा आदि के अभिनय में।

देश भर के लगभग सभी पारंपरिक नाट्य रूपों में मुखौटों का प्रयोग होता है। अधिकतर मनुष्येत्तर पात्रों-देवता अथवा राक्षस मुखौटे लगाते हैं। मुखौटों का निर्माण उसी अंचल में होता है, जहाँ का वह नाट्य रूप होता है, मुखौटे बड़े ही कलात्मक, रंग-विविधिता लिए हुए और आकर्षक होते हैं।

संस्कृत रंगमंच के कुछ पात्र और रूढ़ियाँ-पारंपरिक नाट्यरूपों में कुछ पात्र और रूढ़ियाँ संस्कृत. से लिये गये हैं। सभी नाट्यरूपों में चाहे धार्मिक हों अथवा लोकपरक, पूर्वरंग अवश्य नियोजित होता है। अधिकतर इसमें गा-बजाकर गणपति की वंदना की जाती है। यह विधि हम दशावतार, यक्षगान, तमाशा, तेरुकुत्तु आदि रूपों में पाते हैं। पूर्वरग में स्तुति, वाद्यवादन एवं कभी-कभी परिहास के अतिरिक्त चौथा अंग होता है मंच की तैयारी। प्रस्तावना के रूप में नाटक की कथावस्तु एवं पात्र परिचय दिया जाता है। पारंपरिक नाट्य के पूर्वराग का उद्देश्य वही है जैसा नाट्य शास्त्र में कहा गया है कि पूर्वरंग विघ्नों की शांति के लिए, देवता की स्तुति एवं दर्शकों के मन में नाट्य प्रस्तुति के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना होता है।

सूत्रधार और विदूषक ऐसे पात्र हैं, जो किसी-न-किसी रूप में हर नाट्यरूप में पाये जाते हैं। नौटंकी का रंग, यक्षगान का भागवत, भवाई का रंगलोक, रामलीला के व्यास-ये सब सूत्रधार के ही विभिन्न रूप हैं। अंतर यह है कि संस्कृत नाटक में सूत्रधार प्रस्तावना के पश्चात् चला जाता था, परंतु पारंपरिक नाट्य-प्रदर्शनों में वह आदि से अंत तक रहता है, पात्रों से बातचीत करता है, बीच-बीच में कथा के टूटे सूत्र जोड़ता है और कभी-कभी गाता है। विदूषक तो किसी लोकनाटकीय परंपरा से ही संस्कृत नाटक में लिया गया होगा, क्योंकि संस्कृत नाटक के गंभीर वातावरण में उसके हल्की छेड़-छाड़ युक्त संवादों से ऐसा ही लगता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

लगभग सभी नाट्यरूपों में विदूषक किसी-न-किसी रूप में रहता है। रासलीला का मनसुख, तेरुकुत्तु का कोमली और कूडिअट्टम का विदूषक एक ही परंपरा की देन हैं। प्राचीन रामलीला के गम्भीर वातावरण में हास्य-प्रसंगों की उद्भावना नहीं की जाती थी, परंतु आधुनिक मंचीय रामलीला में भी विदूषक का समावेश हो गया है।

2.3.1 बोध प्रश्न

1. पारंपरिक रंगमंच की दो विशेषताएँ बताएँ।
2. धार्मिक नाटकों में किस प्रकार के कथानक का प्रयोग किया जाता था।

2.4 प्रमुख पारंपरिक नाट्य रूप

पारंपरिक रंगमंच के स्रोत और शैलियाँ-इन सामान्य प्रवृत्तियों के अतिरिक्त हमारे पारंपरिक नाट्यरूपों में बड़ी क्षेत्रीय विविधता है। यह तो पारंपरिक नाट्य की विशेषता होती है कि उसका जन्म और विकास परंपरागत संस्कृति के मध्य होता है और बराबर उसी के परिवेश में रहता हुआ उससे पोषित होता है और संस्कृत के नये-नये तत्त्वों को ग्रहण करता रहता है। इसी से विशाल देश में जनपदीय संस्कृत और लोक-व्यवहारों तथा प्राकृतिक परिदृश्य में जितनी विविधता है, उतनी ही विविधता हमारे पारंपरिक रंगमंच में भी है।

प्रमुखतः हमारे पारंपरिक नाट्यरूप **दो प्रमुख धाराओं** में विकसित हुए। एक, लौकिक प्रेमाख्यान-मूलक नाट्य, जैसे **नौटंकी, स्वांग, तमाशा, ख्याल, बिदेशिया** और **जात्रा** आदि दूसरे, मंदिरों अथवा धार्मिक संप्रदायों पर आश्रित धार्मिक-पौराणिक नाट्य जैसे **तेरुकुत्तु, अंकियानाट, रासलीला** और **रामलीला**।

2.4.1 रामलीला

उत्तर भारत का सबसे प्राचीन और लोकप्रिय नाट्यरूप रामलीला है। इसकी कई शताब्दियों की परंपरा है और नाटकीय तत्त्वों और व्यवहारों की दृष्टि से यह नाट्यरूप अत्यंत समृद्ध है। रामलीला की कई क्षेत्रीय शैलियाँ हैं। सितंबर-अक्टूबर के महीने में 15 दिन से लेकर एक महीने तक रामलीला का प्रदर्शन नगर-नगर और ग्राम-ग्राम होता है। उत्तर भारत का शायद कोई ऐसा ग्राम या नगरवासी होगा जिसने रामलीला देखी न हो या कम से कम उसके सम्बंध में सुना न हो। यह समूचे समुदाय की कलात्मक, धार्मिक और रूढ़िपरक अभिव्यक्ति है, जिसका प्रचार और लोकप्रियता सभ्यता के नवीन प्रसार के साथ भी कम नहीं हुई है। उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में रामलीला का प्रचलन सबसे अधिक है।

रामलीला का अर्थ है विष्णु के अवतार राम के जीवन की विभिन्न घटनाओं का नाटकीकरण। रामलीला में भगवान राम के जन्म से लेकर रावण वध के पश्चात् अयोध्या में राज्याभिषेक तक की सभी प्रमुख घटनाओं को नाटकीय रूप प्रदान किया जाता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

रामलीला प्रमुखतः तुलसीदास कृत रामचरितमानस पर आधारित है। लीला प्रदर्शन में मानस का पाठ निरंतर चलता रहता है। कहीं-कहीं पर जैसे पश्चिम उत्तर प्रदेश में राधेश्याम रामायण से भी कुछ अंश पाठ के लिये जाते हैं, परंतु सभी रामलीलाओं में प्रमुख आधार रामचरितमानस को ही बनाया जाता है।

रामलीला के प्रदर्शन में अभिनेताओं को राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न और सीता का 'स्वरूप' कहा जाता है। दर्शक मण्डली उन्हें सचमुच ईश्वर का रूप ही मानती है और सभी लोग उनके सम्मुख सिर झुकाते हैं। उनके बोले हुए संवाद को बड़े श्रद्धा-भाव से सुनते हैं। रामलीला देखना दर्शकों के लिए उनकी भक्ति-भावना और पूजा की अभिव्यक्ति है। राम के गंभीर व्यक्तित्व और उनके मर्यादा पुरुषोत्तम होने की परंपरा बाल्मीकि से ही चली आ रही थी। परंतु तुलसीदास ने राम और सीता तथा अन्य पात्रों को जो, गरिमा और महत्ता प्रदान की है, रामलीला के छोटे-से-छोटे प्रदर्शनों में भी राम चरित्र की वह गरिमा व्याप्त रहती है। अभिनेता और दर्शक सभी उनकी रक्षा करते हैं और रामलीला में कभी दर्शकों की ओर से कोई भद्दी टिप्पणी या मजाक नहीं होता, न अभिनय में तनिक भी भद्दापन आने पाता है। रामलीला प्रदर्शन का वातावरण पूजा-भावना की भाँति शुद्ध और पवित्र रहता है।

भारतीय नाट्य परंपरा में रामकथा के प्रस्तुतीकरण की इस शैली के संकेत बहुत प्राचीन समय से मिलने लगते हैं। रामकथा के महाकाव्य आधारित प्रस्तुतीकरण का सबसे प्रथम उल्लेख महाभारत के खिल पर्व हरिवंश पुराण में मिलता है।

''रामायण महाकाव्यं उद्देश्य नाटकीकृतम्" अर्थात् (नट ने) रामायण महाकाव्य पर आधारित नाट्य प्रदर्शन किया। बारहवीं शताब्दी की कृति 'संदेश रासक' में रामायण अहिणवियइ (रामायण अभिनय करते हैं) उल्लेख मिलता है। नानक की असादीवार में रामायण नृत्य नाटक के संकेत दिये गये हैं। सोलहवीं शताब्दी के दो नाटक भाषा हनुमन्नाटक एवं रामायण महानाटक प्राप्त हैं, जो कथावाचन, संवाद एवं गीत से युक्त रामलीला उल्लेख से प्रतीत होते हैं। तुलसीदास के जीवन के संबंध में कृष्णदत्त मिश्र कृत जौतभ चंरिका की एक पंक्ति तुलसी द्वारा रामलीला प्रदर्शन आरंभ करने के प्रसंग में कही गयी है—

चिंतत भरतभारती निरनय।

मनहगदेखत हनुमत् अभिनय।।

इससे लगता है कि उस समय हनुमत् अभिनय के नाम से जिन रामायण प्रस्तुतियों का प्रचलन था उनकी लोकप्रियता को देखते हुए तुलसी ने रामचरित मानस को रामलीला के रूप में पारंपरिक रंगमंच पर प्रस्तुत करने की दृष्टि को निश्चित नाटकीय योजना दी। आज हिंदी प्रांतों में रामलीला जिन रूपों में प्रचलित है उसके प्रवर्तक तुलसीदास हैं।

रामलीला का नामकरण—अवतारी चरित की अनुकृति को लीला का नाम पहले से दिया जा रहा था। सूर के समय में कृष्ण और राधा-गोपियों के चरिताभिनय को रासलीला का नाम मिल चुका था तो तुलसी ने

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भी रामलीला नाम देना उचित समझा। विभिन्न नगरों में इसके प्रदर्शन की विभिन्न शैलियाँ हैं। बनारस, चित्रकूट, मथुरा और अल्मोड़ा की रामलीला विशेष प्रसिद्ध हैं।

रामलीला प्रदर्शन कई शैलियों में होता है उसमें प्रमुख हैं-बहुस्थलीय रंग-भूमिका शैली-इसमें अभिनय स्थल विभिन्न स्थानों पर होते हैं और उन स्थानों तक स्वरूप और अन्य पात्र जुलूस में जाते हैं। इस शैली की रामलीला अब रामनगर और बनारस में होती है। अयोध्या, जनकपुरी, चित्रकूट, दंडकारण्य और लंका आदि स्थल पूर्व निश्चित होते हैं। बनारस के पास रामनगर में रामलीला के सभी घटनास्थल स्थायी रूप से बने हुए हैं और इन सभी स्थलों को ''चित्रकूट'', ''लंका'' आदि नाम हमेशा के लिये पड़ गये हैं। अभिनेता तथा दर्शक-समाज प्रति रात्रि उसी स्थल पर एकत्र होते हैं जहाँ की लीला होने वाली है। रंगस्थल नामानुरूप यथार्थवादी ढंग से बने रहते हैं और प्रति वर्ष वहीं पर उस विशिष्ट दृश्य का अभिनय होता है। पात्रों के अभिनय के लिए ऊँचे-ऊँचे मचान बनाये जाते हैं, जिस पर खड़े होकर पात्र अपने संवाद बोलते हैं। अनेक कथा प्रसंगों के लिए कई मचानों का प्रयोग एक साथ किया जाता है। उदाहरण के लिए धनुष यज्ञ प्रसंग में परशुराम एक मंच पर प्रकट होते हैं और सामने दूसरे बड़े मंच पर विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण होते हैं। दोनों अलग-अलग मचानों से उनमें संवाद चलता है। बहुमंचीय प्रदर्शनों के अतिरिक्त आवश्यकतानुसार जुलूस भी निकाले जाते हैं। राम की बारात बड़ी सजधज और बाजे-गाजे के साथ ''अयोध्या" से "जनकपुरी" की ओर प्रस्थान करती है। इसी प्रकार भरत मिलाप का जुलूस भी बहुत बड़ा होता है और समूचा दर्शक समाज भी पात्रों के साथ लीला में सम्मिलित हो जाता है। रामवनवास के समय दर्शक भी राम के साथ-साथ चलते और अयोध्यावासियों के रूप में आँसू बहाते हैं। नाट्य-प्रदर्शन के साथ दर्शकों की एकात्मता का इससे विशाल नाट्य आयोजन शायद ही दुनिया में और कहीं हो।

कुछ नगरों में (जैसे इलाहाबाद) केवल झाँकी-शैली की रामलीला होती है। राम-कथा के विविध प्रसंग झाँकी या चौकियों के रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं और इन चौकियों का जुलूस निकाला जाता है। एक चौकी पर ''रामायणी'' (गायक-दल) पाठ करते रहते हैं, और पात्र अवसर के अनुरूप मुद्राएँ प्रदर्शित करते हैं, और अंग-संचालन करते हैं। कभी-कभी कुछ संवाद भी बोलते हैं। ये चौकियाँ थोड़ी-थोड़ी देर पर विशेष स्थानों, चौराहो, मंदिरों आदि पर रोक दी जाती हैं, वहाँ आरती और चढ़ावा आदि होता है। इस प्रदर्शन शैली में कोई निश्चित क्षेत्र रंगस्थली का कार्य नहीं करता, नाटकीय दृश्य चौकियों पर सजे हुए एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाये जाते हैं और साथ ही दर्शक समाज भी चलता रहता है। कुछ दर्शक वृंद एक ही स्थल पर रुक रह कर रामलीला की सवारी के निकलने की प्रतीक्षा करते हैं।

रामलीला के कुछ विशिष्ट दृश्य सभी प्रकार की प्रदर्शन शैलियों में इसी जुलूस शैली में ही प्रस्तुत किये जाते हैं, जैसे "भरत मिलाप" का दृश्य। "भरत मिलाप'' विशेष आयोजन और समारोह के साथ संपन्न किया जाता है। नगर के एक मार्ग से राम की सवारी चलती है और दूसरे भाग से भरत की। नगर की जनता इन दोनों पक्षों के साथ हो जाती है और सारे मार्ग में बराबर रामकथा का गायन और जय-जयकार होता रहता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

एक अन्य शैली है प्लेटफार्म रंगमंच की शैली। अधिकांश नगरों में प्रदर्शन की यही शैली अपनायी जाती है। रामलीला के दिनों में किसी भी मैदान में तख्ते डाल कर चबूतरा-सा बना लिया जाता है, इसमें परदों आदि की व्यवस्था नहीं होती, एक और रामायणी अथवा कथा गायक बैठकर रामायण का पाठ करते रहते हैं और दूसरी ओर से पात्र आकर अभिनय करते हैं, पात्र उन्हीं गायनांशों को गद्य में बोलते हैं, कभी-कभी पात्र भी चौपाइयों का गान करते हैं। इस शैली का एक दूसरा रूप है जिसमें पात्र रंगमंच पर झाँकियों के रूप में सज कर खड़े हो जाते हैं, रामायणी कथा का गायन करते हैं और पात्र थोड़ा मूकाभिनय कर देते हैं।

अब पारसी रंगमंच की शैली में भी रामलीला का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें परदों तथा दृश्य-सज्जा का पूरा विधान अपनाया जाता है। दस से पंद्रह दिन तक रंगमंच नाटकों के रूप में समूची रामकथा का प्रदर्शन कर दिया जाता है।

रामलीला प्रदर्शनों का प्रमुख रामचरितमानस है। समाजी या रामायणी उसी की चौपाइयों में कथा-प्रसंगों और संवादों का गान करते रहते हैं और पात्र भी वही चौपाइयाँ बोलते हैं और उनका गद्यानुवाद भी कर देते हैं। चौकियों और सिंहासनों में प्रस्तुत की जाने वाली लीला में संवादों का प्रयोग बहुत कम होता है। रामनगर की रामलीला में रामायणी कथा गायन करते हैं, पात्र भी उन्हीं संवाद चौपाइयों को बोलकर गद्य में उनका अनुवाद संवाद रूप में बोलते हैं। संवादों को दर्शकों की भारी भीड़ तक पहुँच पाने के लिए रुक-रुककर बोला जाता है, नाटकीय उतार-चढ़ाव कम होता है। कथागायन भी विशिष्ट शैलियों में होता है। गद्य में खड़ी बोली का प्रयोग होता है। परंतु रामलीला प्रदर्शनों की प्रमुख शक्ति है, तुलसीकृत मानस का गहरा कवित्व जो समस्त प्रसंगों को मनोरम और मार्मिक बना देता है।

रावण वध की लीला सभी स्थानों पर एक जैसी ही होती है, रावण, कुंभकर्ण और मेघनाद के कागज के पुतले एक मैदान में खड़े किये जाते हैं और राम-रावण युद्ध का अभिनय करके उन पुतलों में आग लगा दी जाती है। पुतले और उनमें भरी हुई आतिशबाजियाँ और पटाखे जलने लगते हैं और दूर-दूर तक रावण वध-असत् पर सत् की विजय की घोषणा हो जाती है। यह लीला दशहरे के दिन होती है और रामलीला प्रदर्शन की प्रमुख घटना है।

रामलीला में राम, सीता और लक्ष्मण, भरत, शत्रुध्न का अभिनय करने वाले पात्र 10 से 14 वर्ष तक के ब्राह्मण लड़के होते हैं। शेष पात्रों का अभिनय कोई भी उच्च जाति वाला कर सकता है। अन्य पात्रों के लिए कोई आयु सीमा भी नहीं है। कई नगरों में वही व्यक्ति बीस-तीस वर्षों से रावण या हनुमान का अभिनय करते चले जाते हैं। राम और लक्ष्मण आदि का अभिनय करने वाले लड़कों को तीसरे वर्ष बदला जाता है। नये लड़कों को रामायणी रामलीला प्रदर्शन के एक महीने पहले से गायन की शिक्षा देते हैं। अधिकतर उन्हें पूरा पार्ट याद नहीं होता और अभिनय के बीच समाजी चिल्ला-चिल्लाकर पार्ट याद दिलाते हैं और कभी-कभी तो उनकी ओर से बोल भी देते हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पात्रों की मुख सज्जा में काफी समय लगता है। राम और सीता आदि के मुख पर चंदन का लेप करके भवों आर ऊपर कपालों तक चमकदार बिंदिया चिपकाई जाती है। मस्तक पर तिलक और बिंदी लगा दी जाती है, दुष्ट पात्रों को काले रंग से रंग दिया जाता है। राक्षसों एवं वानरों के लिए मुखौटा होता है। राम, सीता और लक्ष्मण आदि स्वरूपों की मुख सज्जा करना सामान्य व्यक्ति अपने लिए गौरव की बात समझते हैं। वेशभूषा में यथार्थवादिता नहीं, भड़कीलेपन पर अधिक जोर दिया जाता है। रामनगर की रामलीला में कीमती बनारसी चमकदार वस्त्र पहनाये जाते हैं। अधिकतर पीतांबर और कुर्ता या कोट और कमरबंद राम, लक्ष्मण आदि कोसाड़ी चोली और दुपट्टा सीता को और रावण को बड़ा भारी चोगा पहनाया जाता है। हनुमान केवल छोटी धोती पहनते हैं। सभी पात्रों को आभूषण भी पहनाये जाते हैं। राम का किरीट बड़ा भव्य होता है। सीता के मुकुट को चंद्रिका कहते हैं। राम, सीता, और लक्ष्मण सबकी नाक में बुलाक पहनाई जाती है। सीता को नथ भी। कान में बड़े-बड़े आभूषण, भारी-भारी हार, कमर में मेखला, हाथों-बाहों में कंगन और भुजबंध आदि आभूषण होते हैं। ऋषियों की भूमिका करने वाले पात्र आभूषण नहीं पहनते हैं।

पात्र के संवाद निवेदन की अनेकों और पद्धतियों के साथ रामलीला नाटकों में रामायणी द्वारा कथा गायन की भी अनेक शैलियाँ हैं। वाद्यों में हारमोनियम, ढोल और मजीरे का ही प्रयोग होता है।

उत्तर भारत में रामलीला का यह विशाल समारोह जनमानस की नाटकीय अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है और इसका विस्तार नगर-नगर गाँव-गाँव यहाँ तक घर-घर में है।

2.4.2 रासलीला

रासलीला उत्तर प्रदेश का प्रमुख धार्मिक लोकनाट्य रूप है। रासलीला में कृष्ण के ब्रजवासी जीवन के अनेकानेक रूपों का नाटकीय प्रदर्शन होता है। राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाएँ इसका प्रमुख विषय होते हैं। मथुरा और वृंदावन के मंदिरों के प्रांगण में प्रति रात यह नाट्य प्रदर्शन होते हैं, लीला शाम से आरंभ होकर रात देर तक चलती है और भक्तगण उसी भाव से रासलीला देखने जाते हैं जिस भाव से मंदिर में भगवान के दर्शन करने। लीला प्रांगण में कोई जूते नहीं पहन सकता, धूम्रपान नहीं करता और कुछ खाता-पीता नहीं। बालक कृष्ण के नटखटपन पर दर्शकगण स्नेहपूर्वक मुस्करा उठते हैं, किशोर कृष्ण और राधा की शृंगारिक लीलाओं पर रोमांचित होते हैं और विरह प्रसंगों पर रो-रो पड़ते हैं। दर्शक समाज के लिए वे अभिनेता वास्तव में कृष्ण राधा का ही "स्वरूप" होते हैं-उन्हें स्वरूप कहा भी जाता है और उनके अभिनय को देखना दर्शकों के लिए मानो कृष्ण-राधा का दर्शन पाना ही होता है, इसी से हर रात उन्हीं परिचित लीलाओं को देखने भीड़ आ जुटती है और जिस तरह वे लोग इन नाट्य प्रदर्शनों से प्रभावित होते और रस लेते हैं, जिस प्रकार राधेश्याम और कृष्ण राधा की जय-जयकार से लीलास्थली गूँज उठती है उससे आधुनिक यथार्थपरक नाट्य प्रदर्शकों को ईर्ष्या हो सकती है। वास्तव में लोकनाटकों की प्रमुख शक्ति उनका दर्शक समाज ही होता है। यह दर्शकवृंद पीढ़ी-दर-पीढ़ी उन नाट्य रूपों की कथाओं, रूढ़ियों और व्यवहारों से इस प्रकार परिचित होता है

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

कि नाट्य का संपूर्ण रस ग्रहण करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं होती भले ही प्रदर्शन में अभिनय संबंधी त्रुटियाँ हों अथवा रंग-सज्जा के विभिन्न उपकरण न हों।

रासलीला की उत्पत्ति—नाट्यशास्त्र में उपरूपकों की गणना में रासक, नाट्य रासक एवं हल्लीसक का उल्लेख है। भागवत पुराण में कृष्ण के गोपियों के साथ रासनृत्य करने का सुंदर वर्णन किया गया है। आज भी सौराष्ट्र और मणिपुर में रास नाम के लोकनृत्य प्रचलित हैं। वैष्णव भक्ति के प्रचार के साथ ही कृष्ण का अवतारी रूप पूजा का आधार बना और उन्हें रसेश्वर कहा गया, 14वीं शताब्दी के बाद से वैष्णव भक्तों और आचार्यों ने रास नृत्य के साथ कृष्ण के किशोर जीवन का नाट्याभिनय जोड़कर उसे रासलीला का नाम दिया। नाभादास ने भक्तमाल में बल्लभाचार्य के संबंध में लिखा है :

नृत्यगानं गुण निपुन रास में रस सरसावत।
निजलीला ललितादि वलित दंपतिहि रिझावत।।

15वीं 16वीं शताब्दी में बृजभूमि में रास की यह परंपरा सूरदास, नन्ददास, वृजवासीदास आदि भक्तों के सहयोग से काव्य एवं संगीत के सौंदर्य से परिपूरित हुई और उसमें इनके काव्य से पद ग्रहण करके दानलीला, मानसलीला, माखनचोरी आदि कृष्ण के किशोर और बाल जीवन की लीलाएँ अभिनीत होने लगीं।

मथुरा वृंदावन में रासलीला की विभिन्न मंडलियाँ हैं, जो रासलीला का प्रदर्शन करती हैं। ये मंडलियाँ घूम-घूमकर दूर-दूर तक गाँवों और शहरों में भी प्रदर्शन के लिए जाती हैं। मंदिरों में विभिन्न पर्वों पर इन मंडलियों को बुलाया जाता है। कभी-कभी भक्त लोग अपने घरों पर किसी उत्सव या त्योहार पर इन मंडलियों को बुलाकर लीला कराते हैं।

मंडली में समाजी-बाजे वाले-स्वामी-प्रमुख गाने वाले और कृष्ण, राधा और गोप-गोपियों का अभिनय करने वाले होते हैं। अभिनय के लिए 7-8 साल से लेकर 13-14 वर्ष तक सुंदर ब्राह्मण लड़के रखे जाते हैं। लड़कियाँ मंडली में नहीं होती। उनमें से जो सबसे सुंदर होते हैं उन्हें कृष्ण और राधा बनाया जाता है। इन पात्रों को स्वरूप कहते हैं और वेशभूषा धारण करने के बाद "स्वरूपों" में ईश्वर का वास माना जाता है। यहाँ तक कि उन्हें पाँव-पाँव चलने नहीं दिया जाता। मण्डली के बड़े सदस्य गोसाई या समाजी उन्हें गोद में उठाकर मंच तक लाते हैं।

रासलीला या तो मंदिरों के प्रांगण में होती है या फिर प्रदर्शन के लिए खुली जगह का प्रयोग किया जाता है। कृष्ण-राधा के बैठने के लिए झाँकी का स्थान ऊँचा होता है। शेष अभिनय सम धरातल पर ही होता है। लीला का प्रारंभ कृष्ण-राधा की आरती से होता है। उसके लिए ऊँचे चबूतरे पर सिंहासन-सा बनाकर कृष्ण और राधा को बिठाते हैं। छः गोपिकाएँ उनके आस-पास खड़ी होती हैं। आगे साड़ी का परदा-सा बनाकर दो व्यक्ति खड़े हो जाते हैं, और राधा-कृष्ण के पास-पास बैठ जाने के बाद परदा हटा दिया जाता है। स्वामी और समाजी गायन-वादन प्रारंभ कर देते हैं। कृष्णभक्त कवियों के भक्तिपूर्ण पदों का गायन रासलीला में किया जाता है। झाँकी के पश्चात लीला प्रारंभ होती है जिसमें सबसे पहले रास-नृत्य होता

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

है। कृष्ण, राधा और गोपिकाएँ मिल कर नृत्य करते हैं। साथ में बीच-बीच में पदों का गायन भी होता रहता है। नृत्य की मुद्राएँ और पद-चालन कत्थक नृत्य के समान होता है। नृत्य चक्करों में बड़ी तीव्रता से धुंघरुओं की तेज आवाज गूँजती है और गति वाद्य से वातावरण परिपूरित हो जाता है। नृत्य के पश्चात् वास्तविक लीला प्रारंभ होती है। लीला के विभिन्न विषय ये होते हैं। पारंपरिक मान लीला, दान लीला, उद्भव लीला, अंगूठी चोरी एवं मनिहारिन लीला आदि। लीलाओं में कृष्ण का नटखटपन, गोपिकाओं की चुहल, राधा का रूप गर्व और राधा-कृष्ण का परस्पर गहरा प्रेम प्रकट होते हैं। कभी राधा-कृष्ण से रूठ जाती है और कृष्ण उनके लिए विकल होते हैं, कभी राधा के न मानने पर कृष्ण अंतर्ध्यान होते हैं, और राधा तीव्र विरह वेदना का अनुभव करती है। गोपिकाएँ उन्हें कठिनाई से समझाती हैं। अंगूठी चोरी लीला में कृष्ण राधा की अंगूठी चुराकर बिल्कुल भोले और निर्दोष बनकर कहते रहते हैं–अंगूठी मेरे पास तो नहीं है। गोपिकाएँ उनके कमर पट्ट से खोई अंगूठी निकाल लेती हैं और कृष्ण अपराधी मुद्रा में खड़े हो जाते हैं। मनिहारी लीला में अभिनय का स्तर साधारणत: ऊँचा रहता है, अधिकतर मंडलियों में गायन भी बहुत अच्छा होता है। लीलाओं के अभिनय में गद्य संवाद होते हैं। ब्रजभाषा की माधुरी समूचे नाट्य व्यापार को बहुत आकर्षक बना देती है। संवादों के बीच-बीच में गायन और नृत्य भी चलता रहता है। अन्त में पुन: झाँकी बनाकर आरती की जाती है और चढ़ावा होता है। परस्पर मानलीला का एक उद्धरण इस प्रकार है :

स्यामा को सारसी सम्हारत आप,
लली पहरे नंदलाल को जामा।
शीश धरी पिया की पगिया,
पिय के सिर पे सिर सोहे ललामा।
या विधि ते नक्षते शिख लौं,
बलदेव शृंगार सजि अभिरामा।
स्यामा की मूरित रयाम बने,
घनस्याम की मूरति वै गई स्यामा।

गोरे लाल : देखा मैं ही स्याम सुंदर हूँ। हे प्यारी जी अब रास मंडल पर पधार कर मान करो।

सखी : हे हेलो मेरी सहेली. मेरा लाल प्यारे की भावती, आज एक अनुपम कौतुक आय के देखो। अरी हेली वृंदा विपिन सुहावने में भी जमुना जी के तीर पै रसिक राम शिरमौर ने आज पलट के वस्त्र धारण किये हैं। गोरे लाल हैं प्यारे अब मान करके बैठो।

श्याम प्रिया प्यारी जी, मौपे मान तो नहीं हो। गोरे लाल हे प्यारे मान में कहा लगे हैं जब मैं आप माऊँ देखूँ तब आप मों माऊँ देखियों मत और जब मैं आप माऊँ हंसू तब आप मों माऊँ हँसियों मति।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रकाश की कोई विशेष योजना नहीं होती बिजली की रोशनी या गैस की रोशनी का प्रयोग किया जाता है जो अभिनय स्थल के ऊपर या दोनों ओर रहता है। पात्रों की वेशभूषा पारंपरिक होती है और मुकुट, मुरली तथा चमकदार आभूषण भी धारण करते हैं। राधा और गोपियाँ, सुंदर बनारसी साड़ियाँ या दुपट्टे और लंहगे (अब नाइलोन का प्रयोग भी होने लगा है), आभूषण खूब चमकदार होते हैं। मुख-सज्जा की विशेष बात, स्वरूपों के भवों के ऊपर से गालों तक चंदन की और चमकदार छोटी-छोटी बिंदियाँ। ओठ और कपोल भी रंगे होते हैं। मुख सज्जा ओर वेष सज्जा का कार्य समाजी करते हैं।

रासलीला की अभिनय शैली कुछ अतिरंजनात्मक होती है, दर्शकों के लिये स्वरूप वास्तव में कृष्ण और राधा ही होते हैं और स्वरूप स्वयं भी अपने को कृष्ण राधा ही समझते हैं। इसलिए अभिनय को यथार्थपरक बनाने और उसके लिए विशेष चेष्टा का भाव उनमें नहीं होता लेकिन, यही विश्वास उनमें एक सहजता उत्पन्न कर देता। है जो यथार्थपरक नाटक आदि दर्शक वृंदों को भी आकर्षक लगती है।

रासलीला का संगीत, पक्ष बहुत ही पुष्ट है, गीतों और पदों का तो उनके पास भंडार ही है। अष्टछाप के कृष्णभक्त कवियों से लेकर भारतेंदु हरिश्चन्द रचित ब्रज-भाषा के उत्कृष्ट पदों का गायन वे लोग करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रतिभाशाली स्वामी स्वयं भी उसी शैली से पद रच लेते हैं।

रासनृत्य कत्थक नृत्य का आदि रूप कहा जाता है, टुकड़े और चक्कर इसके प्रमुख अंग हैं। टुकड़ों में अभिनय की प्रधानता रहती है और चक्करों में तीव्र गतियों की। रासलीला में अभिनय करने वाले सभी पात्र गीत-नृत्य में निपुण होते हैं।

रासलीला के प्रमुख आकर्षक तत्त्व हैं स्वामी का सुमधुर स्वर, कृष्ण लीला के पदों का आकर्षक गायन और पदों की उत्कृष्टता। इन तत्त्वों को अक्षुण्ण रखकर रासलीला इसी प्रकार युगों तक समूची ब्रजभूमि की सांस्कृतिक और दार्शनिक अभिव्यक्ति करती रहेगी और ब्रजभूमि के बाहर भी उसकी लोकप्रियता बनी रहेगी।

2.4.3 अंकिया नाट

मध्ययुग में वैष्णव मत विशेषकर कृष्णभक्ति के विकास एवं विस्तार के कारण असम के वैष्णव संत शंकर देव ने अपने शिष्यों सहित ब्रजमंडल की यात्रा की। वहाँ रासलीला की प्रस्तुतियों को देखकर वे अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने अपने प्रदेश में लौटकर एक अंक के (तभी उन्हें अंकियों कहा) नाट लिखे जिनमें से अधिकांश में कृष्ण की लीलाओं का चित्रण था।

शंकर देव द्वारा लिखित प्रसिद्ध नाट हैं—कालियदमन यात्रापत्नी प्रसाद, केलि गोपाल, रुक्मिणीहरण, पारिजातहरण और रामविजय। कालियदमन यात्रा सबसे पहले सन् 1518 ई० में लिखा गया। अंकिया नाटों की भाषा बंगला प्रभावित ब्रजबुलि है। संवाद प्राय: गद्य में हैं और गेयपद बीच-बीच में होते हैं। ब्रजबुलि बड़ी सुमधुर भाषा है, यह भाषा हिंदी बंगला और मैथिली के प्रारंभ की भाषा है. मध्ययुग में अवध, मिथिला, नेपाल तथा आसाम में काव्य और धार्मिक आधार की भाषा बन चुकी थी, उसकी इस व्यापकता

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

को देखकर ही शंकर देव ने अंकिया नाट असमिया में न लिखकर ब्रजबुलि में लिखे। उदाहरण के लिए कालियदमन यात्रा में सूत्रधार द्वारा कृष्ण के नृत्य का वर्णन- काला कानु नाचे चरन चलाइ।

करत कौतुक नृत्य केशव अरुण चरण चलाइ।।

देव मुनि सिरी सिरिख बरखे हरिखे हरिगुण गायरे।।

गद्य संवाद का उदाहरण-सूत्र ऐसन परकारे कालिक दमिये,

हरदहंते दूर करिकदु श्री कृष्ण कौतुके कालिंदितीरे।

देखि आनंदे गोपिसब जय कृष्ण बेलि बढ़ल।

मुख पंकजक जैसे नयन भ्रमरे पान करैछे

अंकिया नाटों में एक ही अंक होता है। वे आकार में लघु होते हैं और दो या तीन घंटे में अभिनीत हो सकते हैं। गीत रागबद्ध होते हैं। अंकिया नाटों के निर्माण में संस्कृत नाट्य का प्रभाव है प्रारंभ नांदी पाठ से होता है और फिर सूत्रधार नाट्य का परिचय देता है।

इस लोकनाट्य में नृत्य, उसके विविध अंगहारों एवं मुद्राओं तथा गतिसंचार द्वारा भावाभिव्यक्ति की जाती है। पृष्ठभूमि में गायन-वादन चलता रहता है। बीच-बीच में गद्य संवाद भी बोले जाते हैं। पूर्वरंग के उपरांत सूत्रधार नांदी गीत की धुन के साथ नृत्य करता है और एक विशिष्ट मुद्रा में, बाईं हथेली पर दाहिने हाथ की कोहनी रख कर बाहु-भाग से कुछ संकेत करते हुए, पात्र, प्रवेश की घोषणा करता है। घोषणा के उपरांत वह वृंदावादकों के पास खड़ा होता है। पात्र प्रवेश नृत्य करते हैं और उनके जिन-जिन गुणों का गायकों द्वारा गान किया जाता है, प्रत्येक पात्र उन-उन गुणों के अनुसार मुद्राओं एवं अंगविक्षेपों द्वारा भाव प्रदर्शन करता है।

पात्र स्वयं भी गाते हुए नृत्य द्वारा अपने आंतरिक भावों का उद्घाटन करते हैं। रुक्मिणीहरण नाट में कृष्ण पीतांबर, कुरती, मुकुट तथा वक्ष पर "तंगाली" (वेश कीमत वक्षसज्जा) पहन कर आते हैं। उनके हाथ में सुदर्शन चक्र रहता है। राजा भीष्मक धोती पायजामे के साथ लंबा जामा, मुकुट और तंगाली धारण करते हैं। भाट या दूत लाल पगड़ी और पीली धोती पहन कर भिक्षा-पात्र तथा छाता अथवा छत्र हाथ में लिये हुए मंच पर आता है। प्रहरी के हाथ में गदा रहती है। दान्ध रुक्म के हाथ में खड्ग उसकी शक्ति और शौर्य का द्योतक है। कृष्ण स्वयंवर में अपने रथ में बैठ कर आते हैं और उसी में रुक्मिणी को अपहृत कर द्वारा ले जाते हैं। यह रथ ''पुस्त'' (रथ, पर्वत आदि की प्रतिकृति) द्वारा पूरे आकार का बनाया जाता है, जिसमें घोड़े भी जुते रहते हैं। रथ की गति वाद्यों की तीव्र टापों से व्यक्त की जाती है।

एक स्थान से दूसरे तक जाने के लिये पात्र भरतनाट्शास्त्र की रूढ़ि के अनुसार मंच पर कई बार चारों ओर घूमता है, जिससे गंतव्य स्थान की दूरी का बोध होता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भरतवाक्य की भाँति ही सूत्रधार: नाटक के अन्त में "मुक्ति मंगल'' का गान करता है, जिसके द्वारा सभी के लिये शांति और सुख की कामना की जाती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अंकिया नाटक में स्थानीय लोक-रीतियों के अतिरिक्त नाट्यशास्त्र की रूढ़ियों का भी अनुसरण किया जाता है। कुल मिलाकर इसे रागरंग, नृत्यगीत, प्रेम और युद्ध, दु:ख और हास्य की एक सुंदर प्रस्तुति कहा जा सकता है, जो अपने पौराणिक आख्यान के अभिनय के द्वारा प्रेम और भक्ति की धारा प्रवाहित करती है।

शंकर देव ने "रुक्मिणी हरण" के अतिरिक्त कई नाटक लिखे-कालीय दमन, केलिगोपाल, पत्नीप्रसाद, पारिजातहरण तथा रामविजय अथवा सीतास्वयंवर।

इनमें से प्रथम चार कृष्णचरित से संबंधित हैं। केलिगोपाल की कथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में वर्णित कृष्ण-गोपी-रास पर तथा पत्नीप्रसाद की कथा विवाहिता ब्राह्मण स्त्रियों के अतिशय कृष्णप्रेम और तज्जन्य प्रभुदर्शन पर आधारित है।

शंकरदेव के उपरांत उनके शिष्य माधवदेव ने कृष्ण के बालचरित को लेकर नाटक लिखे, जिनमें अर्जुनोजन (ओखली से बाँधे जाने पर कृष्ण द्वारा यमलार्जुन का मोक्ष), योजनाव्यवहार (भोजन के समय बहाना बनाकर गायों तथा ग्वालबालों का अपहरण), भूमि लैटोवा (यशोदा की गोद से मचल कर कृष्ण का भूमि में लोटना), रास झूमर (राधर-कृष्ण-रास) आदि प्रमुख हैं।

माधवदेव के बाद गोपालदेव ने आचार्यत्व ग्रहण किया। उन्होंने कृष्ण जन्म तथा नंद के यहाँ उनके पहुँचाये जाने की कथा को लेकर ''जन्मयात्रा" नामक नाटक लिखा।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य भक्त नाटककारों ने भी अंकिया नाटक लिखे। ऐसा लगता है कि आसाम में मैथिली नाटकों की यह परंपरा बहुत दूर तक न चल सकी, फिर भी सोलहवीं-सत्रहवीं सदियों में इन नाटकों ने कृष्ण भक्ति के प्रचार में अद्भुत योग दिया। आज भी आसाम की घाटी के ग्रामीण अचलों में ये नाटक उसी श्रद्धा और भक्ति-भाव के साथ खेले जाते हैं और अब वे वहाँ की ग्राम-संस्कृति के अंग बन गये हैं। नाटक की भाषा से अनभिज्ञ सामाजिकों के लिये वे पात्रों के अंगविक्षेप मुद्रा एवं हाव-भाव, गति संचार आदि के कारण आज भी संप्रेषणीय हैं। नाटकों को इस भाषा को "आर्ष-भाषा" कहा गया है। किंतु यह आर्ष-भाषा मैथिली के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा नहीं है, जो मध्ययुग में आसाम में भी बहुप्रचलित थी।

2.4.4 सांग (स्वांग)

सांग हरियाणा की सांस्कृतिक धरोहर है। इनमें पद्य एवं संगीत का महत्त्व है, लोकधुनों का बहुत ही सुंदर प्रयोग इनमें होता है, सांग की भाषा हरियाणी होती है। सांग मंडली का प्रत्येक सदस्य प्रत्येक पात्र का अभिनय कर सकता है। सबको सभी नाटकों के पार्ट याद रहते हैं और आवश्यकतानुसार प्रस्तुत कर देते हैं। सांग के लिए साज-सज्जा वाले रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती। खुले मैदान में तख्त डाल कर प्रस्तुति कर दी जाती है। छोटे-से मंच पर सब अभिनेता बैठे रहते हैं। जिसकी बारी आती है वह उठकर पार्ट बोल देता

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

है। प्रवेश, प्रस्थान, संवाद, नृत्य गान सब उसी पर होते हैं। प्रस्तुति की यह अनौपचारिकता सांग को दर्शकों के अत्यंत निकट ले जाती है और उसकी लोकप्रियता का कारण बनती है।

सांग हरियाणा का प्रमुख लोकनाट्य है। सांग, नकल, नाच, तमाशा अथवा नौटंगी का पूर्व रूप या पर्याय है। यह स्वांग का तद्भव रूप है। इसका अर्थ है ''भेष भरना, "रूप भरना'' या ''नकल करना''।

हरियाणा में "सांग भरना'' एक मुहावरा भी है जिसका अर्थ होता है रूप भरना या रूप बनाना। वास्तव में ''स्वांग'' वह रूप बनाना कहलाता है जब प्रयत्न करने पर भी रूप से तथा तथ्य आरोप न हो सके और पत्र में विकृति आ जाए। सांग के जो रूप हमारे सामने दृष्टिगोचर हैं वह हूबहू स्वांग जैसा ही लगता है। इसके लिए सांगती शब्द भी व्यवहृत होता है।

हरियाणा का जनोल्लास सांग के द्वारा प्रस्फुटित होता है। लंबा कंथा-गीत इस सांग का प्राण है और वह एक नाटकीय रूप में होकर चलता है। वस्तुतः सांग हरियाणा का ग्रामीण कौमी नाटक है जिसमें प्रेम और यौवन आँख-मिचौनी खेलते नजर आते हैं। सांगी का गीत प्रेम यौवन से ऊपर नहीं उठता, मानो उसके गाने योग्य केवल यही सूत्र शेष रह गया। चौबोला, त्रिबोल, दोहा तोड़ और रागनी का एक-एक शब्द शृंगार और वीररस के ताने-बाने से बना होता है और श्रोताओं पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाता है। हरियाणा के लोकमानस को रस की जो परितृप्ति दीपचंद, सरूपचंद, मांगेराम लखमचंद, रामकिशन व्यास, चंदलाल बादी और धनपत आदि के सांगों से प्राप्त होती है, वह इस प्रदेश के शिक्षित-अशिक्षित से छिपी नहीं है। सांगियों द्वारा प्रस्तुत धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं प्रेममूलक इन कथाओं में स्थानीय जनता रामायण से भी अधिक रस लेती है। वास्तव में ये रससिद्ध सांगी अपने छोटे साजबाज और अल्प उपकरणों के द्वारा इसके ऐसे उत्स बहाते हैं कि श्रोतागण मंत्र मुग्ध से हो जाते हैं। ऐसा साधारणीकरण साहित्यिक नाटकों में कम ही स्थानों पर देखने को मिलता है। सांगी का अ र र र र का खींचा स्वर जादू का असर करता है।

सांग अभिनयात्मक रूपक का वह प्रकार है जिसमें पद्य की प्रधानता होती है। इसमें कथोपकथन पद्यमय होता है। केवल पद्यों के मध्य बीच-बीच में गद्य की शैली लगाई जाती है। इन गद्य खंडों को वार्ता के नाम से अभिहित किया जाता है। कथा एक विशेष मोड़ देने तथा उसकी रोचकता बनाये रखने के साथ-साथ चरित्रनायक के उन गुणों को, जो गीत की पकड़ से बाहर पड़ गये होते हैं, श्रोताओं तक पहुँचने में ये वार्ताएँ बड़ा महत्त्व रखती हैं।

गीत प्रवाह में बहती श्रोतामंडली वार्ता-तंतुओं को पकड़ कर कथा-पट पर आ जाती है। यह एक अवलेह है जो कथा श्रवण की बुभुक्षा जाग्रत कर देती है। सांग में गीत, और रागिनी हृदय की बात कहती हैं और गद्यवार्ताएँ इतिवृत्ति की कड़ियों में जोड़ती चलती हैं।

''ढोलामारू'' हरियाणा की एक प्रसिद्ध लोककथा है जो सांग में सफलतापूर्वक प्रस्तुत होती है। अधिकतर इसी प्रकार के लोकाख्यान सांग में प्रस्तुत होते हैं। इसके अतिरिक्त नल-दमयंती, राजामयसरी, गोपीचंद आदि पौराणिक कथानक भी लिये जाते हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

ढोलामारू–संगीतकार इस वृत्त को रागिनियों में कहता है। कथा बढ़ती चलती है। ढोला से कोई सूचना न प्राप्त कर मरवर्ण नरवरगढ़ के बंजारे के हाथ अपनी साड़ी पर संदेशा लिख भेजती है। बनजारा साड़ी को ढोला के यहाँ पहुँचा देता है। इस कथा को "सांगीत ढोला मारू'' में इस प्रकार कहा गया है–

जवाब रेवा का– पास रहो हीरामन सूवा जो चाहे मेवा खावो।
कमी नहीं है किसी बात की लीजो तुम जी में चावो।
सोने चोच मढाऊ तेरी मन में मत ना घबराओ।
मैना पास रहेगी तेरे और कहीं मत ना जाओ।

जवाब कवि का– तोते को समझाय के दिया पीजरे डाल।
यों झगड़ा होता रहा आगे सुणों हवाल।।

भाइयों, पिंगलगढ में बंजारा बाग में आराम के लिए ठहर गया था तो मरवण को मालूम हुआ कि बंजारा नरवरगढ़ का है और नरवरगढ़ ही जायगा तो भाइयो, मरवण अपनी साड़ी पै सब हाल लिख के देती है और बंजारा नरवरगढ़ में आके ढौलकंवर को देता है। जरा गौर से सुणो।

हरियाणा सांग की कई एक विशेषताएँ रही हैं इनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं–

हरियाणा सांग यहाँ की सामाजिक धरोहर है। इनमें व्यक्ति विशेष की कल्पनाओं, मान्यताओं एवं भावनाओं की अनुकृति नहीं मिलती।

इनमें पद्य की प्रधानता पाई जाती है। सच पूछो तो हरियाणवी सांग इसी पद्य, प्रसाद से ही जीवित है। जब तक इनमें रागिनी की सरसता एवं उपादेयता बनी रहेगी तब तक ये जन–मनोरंजन के सशक्त माध्यम सिद्ध होते रहेंगे।

ये खुले में प्रदर्शित होते हैं। तख्तों का ऊँचा मंच बनाकर उसके चारों ओर बाँसों का घेरा बना लिया जाता है।

इनमें यवनिका आदि का कोई विधान नहीं होता। प्रवेश व प्रस्थान सब रंगमंच पर दर्शकों के समक्ष खुले में होते हैं। दर्शक लोग मंच के तीन ओर बैठते हैं।

इनमें कोई अंक आदि नहीं होते। समस्त–कथानक क्रम–पूर्वक चलता है, गीत, नृत्य और वार्ता यथावसर होते हैं।

2.4.5 नौटंकी (i)

नौटंकी गेय नाटक है और इसका प्रदर्शन उत्तर प्रदेश, पंजाब और राजस्थान में है। इस शैली के प्राचीन नाटकों को संगीत कहा जाता था, अब भी नौटंकी का सांगीत नाम स्वीकृत है। नौटंकी नाम पड़ने का कारण

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

''शहजादी नौटंकी'', नाम के एक सांगीत को बतलाया जाता है जो इतना लोकप्रिय हुआ कि इस नाट्यरूप को ही नौटंकी नाम दे दिया।

इसकी कथा इस प्रकार है—

पंजाब की अत्यंत रूपवती और कोमलांगी शाहजादी का नाम नौटंकी था। एक बार भाभी के ताना मारने पर कि बड़े रोब वाले हो तो नौटंकी शाहजादी को क्यों नहीं ब्याह लाते? एक युवक जनाना वेश धारण कर किसी उपाय से नौटंकी के पास पहुँच गया। अधिक मित्रता हो जाने पर दोनों महल में प्रेमी-प्रेमिका की भाँति रहने लगे। बादशाह को पता चलने पर युवक को फाँसी का हुक्म दिया, नौटंकी भी साथ प्राण त्यागने को तैयार हुई, तब बेटी के मोह में युवक को क्षमा दान दे दिया और उसके साथ नौटंकी की शादी करा दी। इस नाम के संबंध में कुछ कारण बतलाये जाते हैं। नौटंकी की व्युत्पत्ति नाटक शब्द से मानी जाती है। नाटक से नाटकी और उससे नौटंकी। कुछ लोग, इसका टिकट नौटंके का होता था इसलिए इसका नौटंकी नाम पड़ना बतलाते हैं। यह भी कहा जाता है कि इनके साथ नौ प्रकार के नक्कार बजाये जाते थे, परंतु अधिक यही जान पड़ता है कि ''नौटंकी शहजादी'' नाम के सर्वाधिक लोकप्रिय संगीत के कारण ही इसका नौटंकी नाम प्रचलित हो गया है। हाल के वर्षों में इसका संगीत नाम फिर से अपनाया जाने लगा है।

अनुमान है कि नौटंकी का विकास गाथा गायन की शैली से हुआ। गाथा गायक अपनी कथाओं में बीच-बीच में नाटकीय अभिव्यक्ति करते थे धीरे-धीरे नाटकीय अभिव्यक्ति के लिए पात्रों का प्रयोग किया जाने लगा इस प्रकार नाट्यरूप का जन्म हुआ। नौटंकी की परिकल्पना कथागायन के रूप में ही की जाती है। कथा गायक-रंगा-कथा का गायन करता रहता है और विशेष नाटकीय या भावात्मक प्रसंगों को गेय संवादों में पात्रों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

उत्तर प्रदेश और राजस्थान ये दो नौटंकी के प्रमुख प्रदेश रहे हैं इन दोनों स्थानों की नौटंकियाँ अपने मूल रूप में तो एक ही जैसे रचना और व्यवहारों को अपनाती हैं परंतु स्थानीय संगीत और नृत्य शैलियों के अंतर से कुछ भिन्नता आ गई है। इन शैलियों में कानपुर और हाथरस की शैलियाँ प्रमुख हैं। हाथरस शैली के प्रवर्तक नत्थाराम गौड़ तथा कानपुरी शैली के प्रवर्तक श्री कृष्ण पहलवान कहे जाते हैं। हाथरस की नौटंकी का संगीत सुगम है एवं मंच सज्जा भी सादी है। कानपुरी नौटंकी के छंदों की विविधता विशेष प्रकार बहरतवील छंद का सुंदर प्रयोग एवं पारसी रंगमंच का प्रभाव अधिक है परंतु लोक के बीच इसका नौटंकी नाम ही अधिक लोकप्रिय और जाना हुआ है।

कानपुरी नौटंकी के प्रवर्तक श्रीकृष्ण पहलवान पर प्रसिद्ध देश भक्त गणेशशंकर विद्यार्थी का बहुत प्रभाव था उसके कारण उन्होंने, जलियाँ वाला बाग, टीपू सुल्तान, शहीद भगत सिंह आदि नौटंकियाँ प्रस्तुत की जो जन-सामान्य के बीच राष्ट्रीय की भावनाओं की प्रेरक सिद्ध हुई।

कथास्रोत—इसमें लोकप्रचलित आख्यानों को अपनाया गया है। जन-सामान्य के बीच तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दियों से ही प्रेमाख्यानों की लंबी परंपरा चली आ रही है। इन प्रेमाख्यानों पर फारसी के कथानकों और

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

रूढ़ियों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इन कथाओं में प्रेम और विरह का अतिरंजित चित्रण किया गया है और अनेकानेक विघ्नबाधाओं और अभिव्योक्तिपूर्ण जटिलताओं से होकर नायक-नायिका का विरह-मिलन दिखलाया जाता है। इस प्रकार की कथाओं पर आधारित नौटंकियों में नौटंकी शहजादी, सियाहपोश, सब्जपरी, गुलफाम, त्रिया चरित्र, सुलताना डाकू, शाही लकड़हारा आदि हैं।

नौटंकी के कथानकों का दूसरा प्रमुख स्रोत है ऐतिहासिक कथानक, इनमें अमर सिंह राठौर, पन्ना दाई, पृथ्वीराज चौहान, रानी दुर्गावती आदि हैं। इनमें इतिहास को सतही तौर पर ही लिया गया है और ऐतिहासिक नाम लेते हुए भी कथानकों को बहुत कुछ लोक-प्रचलित कथानकों के अनुरूप ही ढाल लिया गया है।

नौटंकी यद्यपि लोकपरक नाट्यरूप है फिर भी उसमें बहुत से धार्मिक ओर पौराणिक कथा-प्रसंगों को भी ग्रहण किया गया। सत्यवादी हरिश्चंद्र, राम बनवास, मोरध्वज, नल दमयंती और श्रवण कुमार इन धार्मिक कथानकों में भी प्रस्तुतीकरण में कहीं-कहीं सस्ते मनोरंजन को अधिक महत्त्व दे दिया गया है। सत्यवादी हरिश्चंद्र जैसे गंभीर नाटक में रानी तारामती का कूल्हे मटकाते हुए नृत्य करते गिर-गिर पड़ना गरिमा को खंडित करता है।

कथा का प्रस्तुतीकरण गाथा गायन की शैली में किया जाता है। नाटक के प्रारंभ में मंगलाचरण होता है और उनके पश्चात् गायक आकर कथा के किसी नाटकीय प्रसंग का गायन करता है, उसी बीच पात्र आकर अपने संवादों का गान करने लगते हैं। संपूर्ण कथा रंग के गायन और पात्रों के संवादों द्वारा चलती रहती है। लोक प्रचलित कथानकों के प्रस्तुतीकरण में कथानक रूढ़ियों में प्रयोग किया जाता है। कथा का ढाँचा लगभग सदा ही लचीला और अनौपचारिक होता है।

नौटंकी की भाषा में उर्दू या हिंदी होती है। भाषा में उर्दू या हिंदी की प्रधानता कथानक पर निर्भर करती है— धार्मिक कथानकों में हिंदी के शब्दों की प्रचुरता रहती है, परंतु अधिकतर नौटंकियों में प्रमुखतः उर्दू का प्रयोग किया जाता है। कहीं-कहीं तो अरबी, फारसी के शब्दों की बहुलता के कारण शैली बोझिल और कृत्रिम प्रतीत होने लगती है।

नौटंकी गेय नाटक है अतः संवाद गाकर बोले जाते हैं। संवादों को कई छंदों में बाँधा जाता है। जिसमें बहरतवील, चौबोला, दोहा, लावनी, शैर, ठुमरी, दादरा, कब्बाली, ख्याल, गजल आदि में संवाद रखे जाते हैं। गायन शैली और नगाड़े के लिए सबसे उपयुक्त छंद बहरतवील होता है और यही सबसे अधिक लोकप्रिय भी है।

नौटंकी में थिएटर धुन में लिखे गये संवाद भी बहुत प्रभावशाली होते हैं। इस प्रकार की संवाद रचना की प्रेरणा पारसी रंगमंच से ली गई है। सियाहपोश नौटंकी में कोतवाल कहता है :

क्यों दाग लगता है मियाँ खान्दान में।
और अपनी शान में।।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मतलब के दोस्त यार हैं सब इस जहान में।।

हो किस गुमान में।।

इसमें पद्य संवादों के साथ गद्य संवाद भी रहते हैं।

नौटंकी रंगमंच सादा खुला प्लेटफार्म स्टेज या चबूतरा मंच होता है। यह चारों तरफ से खुला रहता है ऊपर कभी-कभी एक चंदौवा तान दिया जाता है। आठ-दस तख्त मिलाकर वह मंच तैयार कर लिया जाता है। यह रंगमंच खेतों, मैदानों, शहर के चौराहों या अहातों में अस्थायी रूप से बना लिया जाता है।

इसमें परदे आदि की कोई व्यवस्था नहीं होती। तीन ओर दर्शक बैठते हैं, शेष सारा मंच अभिनय क्षेत्र होता है। मंच के पीछे शृंगार कक्ष बनाया जाता है। वहीं से पात्र रंगमंच पर आते हैं और अपना काम करके वापस चले जाते हैं अथवा मंच पर ही पीछे की ओर सामाजियों के साथ बैठ जाते हैं उस समय उन्हें उपस्थित नहीं माना जाता और वे आराम से पान चबाते हुए मानो दर्शकों के रूप में बैठे रहते हैं।

इस प्रकार के खुले रंगमंच के चारों ओर दर्शकों के बैठने से समूचे एवं मंच प्रदर्शन में एक अनौपचारिकता और सहजता आ जाती है। दर्शक पात्र के नितांत आत्मीय हो जाते हैं और वह नाटकीय कथा मानो उनकी कथा बन जाती है।

रंगमंच पर दृश्यसज्जा का कोई विधान नहीं होता। नितांत आवश्यक उपयोग की वस्तुएँ पात्र अपने साथ मंच पर लाते और वापस ले जाते हैं। दर्शक रंगकर्मी के कह देने से उसी स्थान को कभी राजमहल मान लेते हैं कभी उपवन और कभी नदी का किनारा।

अभिनय शैली—रंगमंच की यह अनौपचारिकता अभिनेता को स्वतंत्रता प्रदान करती है। रंगमंच पर पात्रों का प्रवेश और प्रस्थान मंच पर उनकी गतियों और संवाद निवेदन कुछ बहुत सरल और उन्मुक्त होता है। रंगकर्मी घटना स्थल और व्यापार का संक्षिप्त परिचय देता है और उस समय व्यापार में नियोजित पात्र मंच पर आ जाते हैं।

मंच पर अभिनेताओं की गतियों में भी उन्मुक्ता का आभास होता है। वह सारे मंच पर घूम-घूम कर अभिनय करता है। संवाद बोलते-बोलते तीन ओर बैठे दर्शकों के अभिमुख होता है और अधिकतर खड़े-खड़े या घूमते हुए संवाद बोलता है। अभिनेता अपने संवाद की एक-एक पंक्ति को दो-दो तीन-तीन बार दोहराता है। दर्शकों को इससे रस प्राप्त होता है और कथा प्रवाह में बाधा नहीं जान पड़ती।

संवाद बोल चुकने के पश्चात् अभिनेता वादक द्वारा नगाड़े पर अपने गाए हुए चरण और पक्तियों की लय दोहराने पर नृत्यवत् गतियाँ और अंग-संचालन प्रस्तुत करता है। स्त्री पात्र तो नृत्य करते ही हैं, सभी पात्रों की गतियों में संगीत और लय प्रधानता के कारण नृत्यवत्ता होती है। मुद्रा अतिरंजित होती है। अभिनय यथार्थपरक न होकर रूढिबद्ध होता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

नौटंकी या सांगीत में स्त्री पात्रों का अभिनय स्त्रियाँ ही करती हैं। स्त्रियों को नौटंकी-गायन और अभिनय के क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति मिली।

कानपुर-नौटंकी की गुलाब बाई और हाथरस की कृष्णा प्रसिद्ध हुई। गुलाब बाई को नौटंकी गायन के लिए केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ।

पिछली शताब्दी के समय में जब इन नाट्यरूप का प्रचलन हआ तो मशालों का प्रयोग किया जाता था। फिर गैस की रोशनी का उपयोग होने लगा। अब भी ग्रामीण प्रदर्शनों में गैस का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रकाश बहुत ही तेज होता है और समूचे अभिनय क्षेत्र को एक स्थान प्रकाशित कर देता है और अभिनेता को बड़ा क्षेत्र प्रदान करता है। नगरों के प्रदर्शनों में अब बिजली का प्रयोग होता है। प्रकाश योजना पूरे प्रदर्शन में सामान्य और एक-सी रहती है। आधुनिक नाट्य-प्रदर्शनों के समान उसको घटाया-बढ़ाया या पारसी रंगमंच के समान किसी चमत्कारी रूप में उसका प्रयोग नहीं किया जाता।

पारसी रंगमंच के सम्पर्क और प्रतिद्वंद्वताओं के कारण तथा बाद में फिल्मों के प्रभाव से नौटंकी का रूप परिवर्तन हुआ। अपनी लोकप्रियता और सहज शक्ति के कारण वह बची तो रह गई परंतु उसकी विशिष्टता कम हो गई। नौटंकी की नयी शैली में आधुनिक शहरी रंगमंचों पर पर्यों के साथ प्रदर्शन होने लगा, उसमें गेय संवादों के स्थान पर गद्य संवाद रखे जाने लगे, अभिनय यथार्थपरक हो गया। परंतु ये सारी बातें नौटंकी की प्रकृति के विरुद्ध होने के कारण इससे उनका रस फीका पड़ जाता है।

इधर फिर से प्राचीन शैली की नौटंकी-प्रदर्शनों की ओर ध्यान दिया जा रहा है और धीरे-धीरे शहरों में नौटंकी के फिल्म प्रभावित भोंडे प्रदर्शन समाप्त होते जा रहे हैं।

नौटंकी (ii)

नौटंकी उत्तर प्रदेश का संगीत प्रधान लोकनाट्य रूप है। हिंदी लोकनाट्य के अध्येता के लिए ऑपेरा शैली का नौटंकी रंगमंच अत्यंत रोचक रंगमंच है। नाट्य प्रणाली की दृष्टि से इसे मध्य युगीनता और आधुनिकता के बीच रखा जा सकता है।

मानक हिंदी कोश (1964) में नौटंकी की परिभाषा इस प्रकार दी है—सामान्य जनों के बीच प्रस्तुत किया जाने वाला एक प्रकार का लोकनाट्य है जिसका कथानक शृंगारिक अथवा युद्धपरक होता है और जिसके संवाद गेय होते हैं। इसमें संगीत की प्रधानता होती है और इसके छंदों का गायन नक्कारे अथवा ढोलक के साथ किया जाता है। इस परिभाषा में नौटंकी की दोनों विशेषताओं लोकपरकता और संगीत प्रधानता का उल्लेख किया गया है।

उद्भव-नौटंकी का विकास उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में हुआ। उसी समय औद्योगिक का भी विकास हो रहा था नौटंकी का प्रमुख केंद्र उत्तर प्रदेश का प्रसिद्ध औद्योगिक नगर कानपुर बना। पश्चिम उत्तर प्रदेश में हाथरस में इसकी दूसरी अत्यंत आकर्षक शैली का प्रादुर्भाव हुआ।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

नौटंकी के नाम को लेकर काफी सोच विचार हुआ है। यह भी कहा गया कि नौटंकी नाट्य शब्द से बना लिया गया है परंतु नौटंकी शब्द तो नाट्य साहित्य में मिलता ही नहीं अतः यह मत उचित नहीं है। श्री अमृतलाल नागर ने कहा है कि नौटंकी प्रस्तुति का प्रवेश टिकट नौ टके का होता था इसी से उसे नौटंकी कहते हैं। कुछ लोगों का मत यह भी था कि उसके साथ नौ प्रकार के वाद्य नौटंका बजाए जाते हैं इसलिए नौटंकी नाम पड़ा। कुछ औरों ने कहा कि विशिष्ट संगीत और नक्कारे की धुन के कारण नवटंकार के कारण इसे नौटंकी कहा गया। परंतु यह कोई भी मत मान्य नहीं हो सके और अंततः उसके इस नाम की कहानी इस प्रकार मान ली गई है।

मुल्तान की सुंदरी राजकुमारी नौटंकी प्रतिदिन नौटंका भर आहार ग्रहण करती थी और इसी से उसका नाम नौटंकी पड़ा। एक दिन एक युवक को उसकी भाभी ने ताना मारा कि घर लौटकर इतना हुक्म चलाते हो तो अपने लिए नौटंकी शहजादी ब्याह कर क्यों नहीं ले आते? युवक को यह बात चुभ गई और मुल्तान पहुँच कर स्त्री वेष धारण कर नौटंकी शहजादी की मालिन की सहायता से नौटंकी के कक्ष में पहुँच गया, नौटंकी के सामने पुरुष रूप में आते ही उन दोनों का परस्पर प्रेम हो गया और सवेरे जब नौटंकी को तौला गया तो उसका बजन बढ़ा हुआ था उसके पिता को संदेह हुआ और नौटंकी की प्रार्थना पर उस युवक के साथ शाहजादी नौटंकी का विवाह कर दिया गया। यही कथानक इस नाट्य रूप में सबसे पहले लिखा और खेला गया "कहानी शाहजादी नौटंकी की" और यह प्रस्तुति इतनी लोकप्रिय हुई कि इस प्रकार के नाट्य रूप का नाम ही नौटंकी पड़ गया, बनारस में 1882 में खुशीराम का लिखा हुआ सांगीत रानी नौटंकी का मिलता है। वास्तव में इस लोक प्रस्तुति का नाम तो सांगीत था। आज भी यह नाम स्वीकृत है-ऑपेरा होने के कारण या नौटंकी कहानी के अतिशय लोकप्रिय होने के कारण इस नाट्य रूप को ही नौटंकी कहा जाने लगा। अब भी इसका लिखित रूप सांगीत कहा जाता है और प्रस्तुति को नौटंकी कहते हैं।

नौटंकी का प्रमुख क्षेत्र उत्तर प्रदेश-मध्य और पश्चिम दोनों हैं परंतु लोकप्रियता के कारण उसकी प्रस्तुतियाँ राजस्थान में भी होती हैं परंतु प्रमुखतः यह उत्तर प्रदेश का नाट्य रूप है। यहाँ इसकी दो शैलियाँ हैं—कानपुर की शैली और हाथरस की शैली। कानपुर की शैली के प्रवर्त्तक श्रीकृष्ण पहलवान और हाथरस की शैली के प्रवर्तक नत्थाराम गौड हैं। श्रीकृष्ण पहलवान ने सन् 1927-28 के आस पास कानपुर में श्रीकृष्ण संगीत कंपनी के नाम से व्यावसायिक स्तर पर नौटंकी प्रदर्शन प्रारम्भ किए पर इसके पहले से ही वे शौकिया तौर पर प्रदर्शन करते थे। श्रीकृष्ण पहलवान पर गणेश शंकर विद्यार्थी का बहुत प्रभाव था इसलिए उन्होंने जन जागरण एवं राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण नौटंकियाँ लिखीं। इनकी लिखी जलियावाला बाग, टीपू सुल्तान, शहीद भगत सिंह और बलिया का शेर नामक नौटंकियाँ बड़ी लोकप्रिय हुईं और उस समय के जन मानस पर उनका प्रभाव भी बहुत पड़ा। श्रीकृष्ण पहलवान को नौटंकी के क्षेत्र में योगदान के लिए केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी ने पुरस्कृत भी किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने हरिश्चंद्र तारामती, नल दमयंती आदि पौराणिक कथाएँ भी लिखीं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

कानपुरी नौटंकी के अन्य प्रणेताओं में त्रिमोहन उस्ताद, लालमणि नंबरदार तथा छिछन उस्ताद का नाम सगर्व लिया जाता है। ये लेखक नौटंकी के नक्कारा वादन में भी अत्यंत प्रख्यात थे।

हाथरस का इंदरमन अखाड़ा (1812-1920)—19वीं शताब्दी के अंत में नौटंकी की शैली और विषय वस्तु में काफी परिवर्तन हुए। हाथरस में सबसे पहले श्री मुरारीलाल ने नौटंकी प्रारम्भ की, ये भी मुरलीधर हरनारायण की नौटंकी मण्डली में थे इनकी लिखी लक्ष्मण शक्ति, रुक्मिणी मंगल, लवकुश कांड आदि नौटंकियाँ बड़ी प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुई इसके पश्चात् इनकी मंडली में श्री. नत्थाराम आए जिन्होंने बहुत नौटंकियाँ लिखीं और करवाईं इनकी यह मण्डली इंदरमन का अखाड़ा कहलाती थी। नौटंकी मंडली को अखाड़ा भी कहते हैं। श्री नत्थाराम ने धार्मिक और पौराणिक कथानकों पर भी अनेक नौटंकियाँ लिखीं। इन्होंने 25 भागों में संपूर्ण रामायण सांगीत शैली में लिखी थी। यह पूरी तरह रामचरित मानस पर आधारित है और इसके छंदों का प्रयोग अनेक प्रदेशों की रामलीलाओं में किया जाता है।

हाथरस में इंदरमन के अखाड़े के पास ही दाऊ जी का मंदिर था और नत्थाराम प्रतिवर्ष वहाँ प्रस्तुत करने के लिए एक नयी नौटंकी लिखते थे। 1890 के आसपास नत्थाराम ने अपने दल को लेकर समूचे उत्तर भारत की यात्रा की और इस प्रकार उनकी शैली की नौटंकियों की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई। हाथरस में और अखाड़े भी थे परंतु सबसे प्रसिद्ध नौटंकी दल नत्थाराम का ही था।

कानपुर में नौटंकी का विस्तार आगे चलकर हुआ। 1910 से 1930 तक कानपुर में श्रीकृष्ण पहलवान की नौटंकियों की बहुत लोकप्रियता रही। कानपुर औद्योगिक नगर था और वहाँ मजदूरों के बीच नौटंकी की लोकप्रियता बहुत अधिक हो गई। क्रमशः कानपुर की नौटंकी की अपनी अलग शैली हो गई, सबसे बड़ी विशेषता तो यही रही कि कानपुर की नौटंकी में स्त्री पात्रों का प्रवेश हुआ। बाद में हाथरस की नौटंकी में भी स्त्रियाँ अभिनय करने लगीं। वास्तव में पारंपरिक रंगमंच में नौटंकी या सांगीत उन लोकनाट्यों में से है जिसमें स्त्रियाँ अभिनय करती रही हैं। प्रारम्भ में वेश्यायें स्त्री अभिनेत्रियों के रूप में आगे आई और फिर साधारण घरों की स्त्रियाँ भी इसमें भाग लेने लगीं। बीच में वेश्याओं के कारण मजदूरों के बीच काफी लड़ाई झगड़ा हो जाता था और इसलिए कानपुर शहर में नौटंकियों का प्रस्तुतीकरण बंद किया गया। इस तरह कानपुर की नौटंकी शहर से निकल कर गाँवों में चली गई। अब नौटंकी की प्रस्तुति गाँवों के मेलों, उत्सव-त्योहारों या घर के विवाह आदि में होने लगी। यह सिलसिला अब भी चल रहा है और ग्रामीण अंचलों में नौटंकी एक बड़ा लोकप्रिय नाट्यरूप है। हाथरस की नौटंकी भी अपने आसपास के ग्रामीण अंचलों में भी प्रस्तुत होती है।

नौटंकी का मंच—पहले नौटंकी का मंच मात्र एक चबूतरा होता था, उसमें परदों या रंग सज्जा का प्रयोग नहीं होता था। अब भी ग्रामीण क्षेत्रों में नौटंकी के लिए किसी नियमित प्रेक्षागृह की आवश्यकता नहीं होती। गाँव की चौपाल या बगिया या नगर में सार्वजनिक स्थान, सड़क या जजमान के द्वारा के सामने मंच बना लिया जाता है। कई तख्त डालकर और उस पर दरी डाल कर मंच बन जाता है। उस समय तक नौटंकी

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

का स्वरूप पद्यबद्ध संवादों में लिखी गई अभिनेय कहानी का सा होता था। स्थान और समय की अन्विति के नियम लागू नहीं होते थे। परंतु आगे चलकर नौटंकी पर विशेषकर कानपुर शैली की नौटंकी पर पारसी रंगमंच का प्रभाव पड़ा और पर नौटंकी के प्रस्तुतिकर्ता पर्दो वाले मंच का प्रयोग करने लगे। अब उसी प्रकार के मंच पर नौटंकी प्रस्तुत होती है। और इसी से नौटंकी जब एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती है तो उसके साथ बड़े-बड़े परदे मंच का बड़ा साज-संभार चलता है। इधर तीसेक वर्षो से फिल्मों का प्रभाव भी पड़ा है और पुरानी फिल्मों की बड़ी प्रसिद्ध कहानियाँ जैसे सिकंदर और पुकार आदि नौटंकी में अपना ली गईं। इस संबंध में यह बात भी ध्यान में रखने की है कि लिखित रूप में सांगीत कहलाई जाती है और प्रस्तुति में नौटंकी। हाथरस में सांगीत शब्द का ही प्रचलन अधिक है।

कथानक—नौटंकी लोकाधारित नाट्यरूप है, इसके अधिकतर कथानक लोकपरक होते हैं-जैसे नौटंकी शहजादी, लैला मजनू, सुल्ताना डाकू आदि। परंतु पौराणिक एवं धार्मिक कथानक भी लोकप्रियता की दृष्टि से अपनाए गए हैं जैसे शकुंतला, नल दमयंती, सत्यहरिश्चंद्र आदि। कहा जा चुका है कि हाथरस शैली में धार्मिक कथानक अधिक थे और कानपुर वाली में लोकपरक। देशभक्ति और राष्ट्रीयता परक सांगीत भी बहुत लिखे गए जैसे–जलियावाला बाग, शहीद भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि। इस प्रकार नौटंकी अथवा सांगीत में कथानकों की बहुत विविधता है, और शायद आज तक ग्रामीण अंचलों में उसके चलते रहने का कारण भी यही है। शहरों में फिल्मों का जो स्थान है ग्रामीण अंचलों में नौटंकी का वही स्थान है।

सभी सांगीत पुस्तक रूप में मिलते हैं, और केवल नाट्य रूप में ही नहीं वरन् पढ़ने के लिए भी लोग इन्हें मोल लेते हैं। नौटंकी मंडलियों के संचालक श्रीकृष्ण पहलवान और नत्थाराम दोनों ने ही सांगीतों का प्रकाशन किया पर अब तो उत्तर प्रदेश के कस्बों के सभी प्रकाशक लोकप्रिय सांगीतों को छापते हैं और इनकी बहुत बिक्री होती है। इनके आकर्षण का प्रमुख कारण यह है कि ये कथानक उत्तर भारतीय संस्कृति का पूरा चित्र प्रस्तुत करते हैं, इनमें आदर्शवादिता भी होती है और यह हास विलास से भरे ही होते हैं।

पात्र—पहले अन्य लोकनाट्यों की भाँति नौटंकी में भी पुरुष ही स्त्रियों का अभिनय करते थे परंतु जल्दी ही नौटंकी मंच पर स्त्रियों का प्रवेश हो गया। जैसा कि कहा गया है नौटंकी मंच को अपना लिया, पहले वेश्याओं का प्रवेश हुआ फिर साधारण घरों की स्त्रियाँ भी इसमें आने लगीं। कानपुर मंच की गुलाबबाई तो अपने अभिनय के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध है और उन्हें उत्तर प्रदेश अकादमी का सम्मान भी मिला है। हाथरस की कृष्णा भी बहुत कुशल अभिनेत्री थी। नौटंकी में रंगा नाम से सूत्रधार होता है जो कथा का परिचय भी देता है और बीच बीच में नौटंकी का पात्र भी बन जाता है। सभी अभिनेता चाहे वे राजा बन रहे हों या योद्धा अथवा कोई धार्मिक चरित्र अपने अभिनय को बड़ी कुशलता से निभाते हैं। विदूषक जिसे जोकर कहा जाता है, बीच बीच में आकर कथानक में हास्य की सृष्टि करता है। गंभीर कथानकों में भी बीच में हास्य की प्रस्तुति पारसी रंगमंच के प्रभावस्वरूप होने लगी।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

वेशभूषा और रूपसज्जा—वेशभूषा पात्र के चारित्रिक गुणों पर आधारित होती है। अधिकतर चमक-दमक और तडक-भड़क वाले वस्त्र पहने जाते हैं। नायक यदि राजा हुआ तो मुगलकालीन चोगा और पगड़ी आदि धारण करता है-कामदार जूतियाँ भी। सामाजिक कथानकों का भी वस्त्रविन्यास आकर्षक होता है। स्त्रियाँ चमकीली साड़ी या लहँगा दुपट्टा पहनती हैं, अब नाईलौन का प्रयोग भी होता है। नकली मोतियों और झूठे गहने भरभर हाथ चूड़ियों का शृंगार होता है। मुखसज्जा भी भड़कीली आकर्षक होती है।

संगीत—नौटंकी एक गेय रूपक है अतः संगीत इसकी प्रमुख विशेषता भी है और इसका आकर्षण भी। पहले कहा जा चुका है कि नौटंकी खुले मंच का नाट्य है। देर रात में गाँवों में नौटंकी का नक्कारा गूँजता है और दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। नक्कारे के अतिरिक्त नौटंकी में ढोलक, क्लेरिओनेट या शहनाई का प्रयोग भी होता है। इन सबकी सम्मिलित सुरीली आवाज दूर दूर तक गूँज उठती है और तब तक बजती रहती है जब तक मंच के तीनों या चारों ओर दर्शक मण्डली आकर जुट नहीं जाती फिर गंगा (सूत्रधार) प्रवेश करके उस दिन की नौटंकी के प्रमुख पात्र का परिचय देता हुआ—नौटंकी की एक प्रकार से घोषणा करता है और फिर ये सभी वाद्य बज उठते हैं इन्हें सम्मिलित वाद्यों को नौबत भी कहा जाता है, गणेश वंदना के बाद पात्रों का प्रवेश होता है। अधिकतर पात्र पूरे समय मंच पर ही बैठे होते हैं और अपनी भूमिका का समय आने पर उठ कर अपना गीत गाते हैं या संवाद बोलते हैं, पर परदों वाले मंच पर पात्रों का प्रवेश और प्रस्थान पारसी रंगमंच की शैली में होता है। सभी पात्र चाहे पुरुष हों या स्त्री गायन में कुशल होते हैं और उनकी आवाजें बड़ी ऊँची तेज होती हैं जो दूर दूर तक बैठे दर्शकों को भी सुनाई देती है। गायन पर हिंदुस्तानी संगीत और लोकधुनों का प्रभाव होता है नौटंकी के प्रसिद्ध छंद हैं चौबोला और बहरतवील, ये बड़ी ऊँची आवाज में गाये जाते हैं और बड़े आकर्षक लगते हैं। हाथरस की नौटंकी शैली का संगीत अधिक कर्णप्रिय और मधुर होता है। इसके प्रसिद्ध अभिनेता गिरिराज प्रसाद को अपने नौटंकी गायन में मध्य प्रदेश का कालिदास सम्मान मिला था। वास्तव में नौटंकी का संगीत खुले में गाने योग्य संगीत है और उसमें ऐसे छंद लिए जाते हैं जिन्हें, तार स्वर में गाया जा सकता है। स्त्रीपात्र दादरा, ठुमरी आदि भी गाते हैं, गजल का भी प्रयोग होता है। नौटंकी में गद्य संवादों का प्रयोग बहुत कम होता है अधिकतर अलग-अलग छंदों में गेय संवाद प्रस्तुत होते हैं और वही नौटंकी का प्रमुख आकर्षक भी होते हैं। अब अन्य लोकनाट्य रूपों की भाँति नौटंकियों के कैसेट भी बनने लगे हैं जो बहुत बिकते हैं।

नौटंकी के अभिनेताओं को संगीत का प्रशिक्षण नियमित ढंग से नहीं दिया जाता है। स्वयं ही सुनकर या अभ्यास करके गायन सीखते हैं, इसी से उनका गायन शुद्ध रागों पर आधारित न होकर मिला जुला होता है पर लोकधुनों के मिल जाने के कारण बहुत प्रभावी और आकर्षक होता है।

बहरतबील – यह अरज मेरी तुमसे है माहेल का
दिल लगाके न दिल को हटा लेना तुम।
बेवफाई न करना कभी भूलकर

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

गर मोहब्बत करो तो निभा देना तुम

गजल– तेरा ही तसव्वुर रहता है, तू दिल में समाई रहती है,

मैं रातों को जागा करता हूँ जब सोती खुदाई रहती है। –सुलताना डाकू

भाषा— नौटंकी की भाषा बोलचाल की होती है, उर्दू शब्दों की प्रधानता लिए हुए। वैसे भाषा का प्रयोग कथानक के प्रयोग पर भी निर्भर होता है जैसे रामायण पर आधारित संगीत की भाषा हिंदी संस्कृत प्रधान होती है। लोकपरक कथानकों में—जो कि अधिक हैं—हिन्दुस्तानी का ही प्रयोग किया जाता है। सामान्य व्यक्ति के बीच जो भी भाषा अधिक स्वीकृत और समझने योगय हो उसी का प्रयोग किया जाता है।

मंगलाचरण, ईश्वर, प्रार्थना, वेदना स्तुति, हम्दे खुदा याकोरस से लेकर नौटंकी के उपसंहार तक सभी हिंदी उर्दू या लोकछंद गेय हैं। मंगलाचरण प्राय: विभिन्न राग रागनियों में गाये जाते हैं। दोहा चौपाई सोरठा में हिंदी का और बहरतबील, कव्वाली, गजल,शेर आदि में उर्दू का प्रयोग होता है। इन सब छंदों की अपनी विशिष्ट धुनें भी हैं। रंगा नौटंकी की कथा के स्थान, समय, नामक एवं उससे संबंधित प्रमुख पात्रों का वर्णन कर बीच-बीच में प्रवेश कर कथा सूत्र भी जोड़ता चलता है, कभी कभी कॉमिक गाने अथवा नृत्य द्वारा भी दृश्य परिवर्तन की सूचना दे दी जाती है। इस प्रकार नौटंकी या संगीत उत्तर प्रदेश का एक प्रमुख-लोकनाट्य रूप है- फिल्मों के प्रचार के बाद इसका प्रचलन नगरों में कम हो गया परंतु ग्रामीण अंचलों में, मेलों में और पर्व त्यौहारों में अब भी नौटंकी का नक्कारा गूँजता है और उसके छंदों की तेज और आकर्षक ध्वनि सुनाई पड़ती है।

2.4.6 बिदेसिया

बिदेसिया बिहार का अत्यंत लोकप्रिय नाट्य-रूप है। इसके प्रणेता भिखारी ठाकुर का नाम बिहार राज्य में ही नहीं समूचे भोजपुरी क्षेत्र में फैला हुआ है। भिखारी ठाकुर पढ़े लिखे नहीं थे, वे बचपन में ही अपना घर छोड़ गये थे और अपनी एक घुमंतु नृत्यगान मडली बना ली थी। बहुत पहले से ही भोजपुरी क्षेत्र में लौंडा नाव नाम से एक नृत्यशैली प्रचलित थी। लौंडा नाव का कोई रीतिबद्ध नृत्य नहीं होता। ढोलक या तबले की तीव्र लय पर नर्तक लौंडा कमर को विभिन्न तरह से डुलाता है। भिखारी ठाकुर की नाच पार्टी में लौंडा नाच का होना आवश्यक होता था। नाच के बीच बीच में गायन और छोटे छोटे संवाद टुकड़े–बिदेसिया नाट्य का रूपबंध यही है।

इस नाट्यरूप का नाम बिदेसिया क्यों पड़ा, इसका भी विशिष्ट कारण है। भिखारी ठाकुर ने अपने पहले नाट्य में उस विरहिणी युवती की दु:ख गाथा बयान की जिसका पति काम की तलाश में कलकत्ता या ढाका जाकर बिदेसी बन जाता था और फिर वहीं किसी नागर स्त्री से प्रेम संबंध बना लेता था। विरह-पीड़िता नायिका अपनी विरह व्यथा बिरहा में प्रकट करती थी:

गवनां कराइ-सैंया घरे बइठवले से,

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अपने वो भइले परदेस रे बिदेसिया
चरूली जवनिया बैरन भईली हमरी से
के मोरा हरि हैं कलेस रे बिदेसिया।

इस प्रकार से बिदेसिया से 'युक्त' लंबे-लंबे गीत बिदेसिया नाट्य रूप की पहचान है। कथा है कि भिखारी ठाकुर ने सूरदास का भ्रमरगीत सुना और अपने प्रदेश की नई नवेली वधुओं का अकेलापन तो वे देखते ही थे, भ्रमरगीत में गोपियों की विरह कथा से प्रेरित होकर उन्होंने प्रथम बिदेसिया की रचना की। इसमें चार पात्र होते थे, बिदेसी / कृष्णजी / प्यारी सुंदरी / राधिकाजी / बटो ही / उद्धव / और वेश्या / कुबरी / बिदेसिया में आध्यात्मिक भाव भी लिये गये हैं, और इस कथा के अतिरिक्त आधुनिक समस्याओं और कुरीतियों पर भी आरोपित किया है। बिदेसिया नाट्यरूप इसी से इतना लोकप्रिय हुआ क्योंकि उसमें पश्चिम बिहार के ग्रामांचल की एक समकालीन समस्या को चित्रित किया गया है। भिखारी ठाकुर ने पहले बेमेल विवाह की समस्या ली है। इस तरह से उन्होंने अनेक नाटक लिखे, विधवा-विलाप, बाल-विवाह, ननद भौजाई, बेटी-बेचवा आदि हैं, ये कलकत्ते के दूधनाथ पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित हुए हैं। बिहार क्या भोजपुरी भाषा क्षेत्र में ये बिदेसिया पुस्तकें बहुत लोकप्रिय भी हैं।

भिखारी ठाकुर की नाच पार्टी का इनकी देखा देखी अन्य नाच पार्टियों में लौंडा नाच या पुरुष नर्तक का होना आवश्यक होता था। वैसे तो बिदेसिया की शुरूआत लौंडा नाच से ही हुई। धीरे धीरे नाच के बीच बीच में प्रहसनया छोटे बड़े नाट्य-कथानक जोड़ लिये गये और यह एक नाट्यरूप बन गया। पर इस नाट्यरूप का बिदेसिया नाम भिखारी ठाकुर के रचित प्रवास गीत के कारण ही पड़ा। कहते हैं कि भिखारी ठाकुर रवयं तो निरक्षर थे परंतु किसी से सूरदास के भ्रमर गीत में गोपियों की विरह व्यथा सुनकर//मोर माधो काहे बिलमि बिदेस रहै//अथवा//कह कोई परदेसी की बात//यही पंक्तियाँ उनके बिदेसिया गीत की प्रेरक बनी। बिदेसिया की अपूर्व सफलता का कारण भिखारी ठाकुर का आकर्षक कंठ माधुर्य भी था। वर्षों पूर्व उनका देहांत हो चुका है परंतु उनके जीवन काल में उनके गीतों की स्वरलहरियों पर बिहार का जन जन दीवाना रहा है। उनके समय में उनकी मंडली स्थान-स्थान पर घूमकर प्रदर्शन करती रहती थी। पहले बिदेसिया गीत से प्रारंभ कर फिर भिखारी ठाकुर ने रामायण, महाभारत, किस्सा तोता-मैना और आल्हा-ऊदल पर भी गीत रचे और गाते रहे। इनको भोजपुरी गीतों का बादशाह कहा जाता था। कैकेयी-मंथरा संवाद हो या लक्ष्मण-परशुराम संवाद कजरी हो या झूमर, ननद-भौजाई की बातें हों या सासु जी के ताने, पति वियोग में सावन माह बिताने वाली बहुरियार के कलेजे से उठती हूक हो या चरवाहों के स्थान पर छोरा-छोरी की चुहल—ऐसे अवसरों के लिए स्वरचित गीतों को जब भिखारी ठाकुर अपने गले की सुरीली आवाज में निकालते हैं और उनके संघतिया ढोलक और हारमोनियम पर संगत करते हैं उस समय श्रोताओं की क्या दशा होती है यह वे ही जानते हैं। (*सिन्हा: भिखारी ठाकुर*, पृ० 37)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

बिदेसिया के अभिनय और प्रदर्शन पर रामलीला और नौटंकी का प्रस्ताव था। लौंडा नाच तो उसमें अनिवार्यत: होता ही था, अत: भोजपुरी क्षेत्र का यह अकेला गीत नृत्य नाट्यरूप अत्यधिक लोकप्रिय हुआ।

भिखारी ठाकुर के समय में और उनके बाद भी भोजपुरी क्षेत्र का यह नाट्य-रूप चलता रहा है। बिदेसिया खुले मंच की प्रस्तुति है। किसी भी खुले स्थान पर विशेषकर गाँवों की चौपालों या शादी ब्याह के अवसर पर बिदेसिया पार्टियाँ बुलाई जाती हैं और वे कई चौकियों या तख्तों को जोड़कर अथवा ईंटों का चबूतरा बनाकर अपने लिये मंच बना लेती हैं, इसके ऊपर कभी चंदोवा ताना जाता है कभी पूरी तरह मुक्ताकाशी होता है।

बिदेसिया में सूत्रधार को मूलगैन कहा जाता है, वही कथा का संक्षेप में गायन करता है और फिर पात्र संवाद बोलते हैं। मूलगैन ही नायक की भूमिका निभाता है। स्त्री पात्रों की भूमिका भी पुरुष ही करते हैं। लौंडा नाच में भाग लेने वाले लड़के अपनी नृत्य शैली के कारण कमर मटकाना और स्त्रियों के दूसरे हाव भाव सीखे होते हैं अत: स्त्री पात्रों की अभिनय स्वाभाविकता से कर लेते हैं। नाटक में अधिक पात्र नहीं होते, तीन या चार पात्र ही होते हैं। प्रधानता संगीत और नृत्य की ही होती है अत: संवाद भी अधिक नहीं होते। भोजपुरी भाषा का प्रयोग संवाद और गीत दोनों के लिये होता है। संगत के लिये ढोलक, हारमोनियम, तबला, झाल और बाँसुरी होते हैं। बजाने वालों को समाजी कहते हैं, पूरी प्रस्तुति में समाजी मंच पर उपस्थित रहते हैं और कभी-कभी उन्हीं में से कोई उठकर पात्र का रूप धारण कर कुछ संवाद बोल देता है।

गीत के लिए दोहा, सवैया, चौबोला, खेमटा, बिरहा आदि छंदों का प्रयोग होता है।

वेशभूषा और रूप सज्जा आंचलिक होती है, बहुत चमक-दमक वाली वेशभूषा नहीं होती। परंतु इधर नौटंकी के प्रभाव के कारण रामायण, महाभारत आदि कथानकों में राजसी वस्त्र आभूषण पहने जाते हैं। परंतु बिदेसिया पूरी तरह ग्रामीण रूप है। अत: पहले बहुत सजावट नहीं होती थी परंतु अब नये प्रभाव पड़ते जा रहे हैं।

बिदेसिया नाट्यरूप या उसकी शैली को अपना कर इधर नये सिरे से अपने निर्देशित नाटकों में बिदेसिया नाट्यशैली का प्रयोग किया है। उन्होंने बिदेसिया नाट्य से सूत्रधार और उसके कछ पात्र जैसी लबार या जोकर, उसकी नृत्य शैली, उसका संगीत और उसके संगत करने वाले वाद्ययंत्रों को अपनाकर अनेक नाटकों के लिये बिदेसिया नाट्य शैली का प्रयोग किया है और इस शैली में उनका माटी गाड़ी, (शूद्रक का मृच्छकटिक), मैला आँचल (फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास का नाट्य रूपांतर) ओर (रवींद्रनाथ टैगोर कृत) मुक्तधाम बहुत सफल रहे हैं। उन्होंने गीतों की धुनें और नृत्य-गतियाँ बिदेसिया की अपनाकर प्रभावशाली शैली का सृजन किया है और भोजपुरी क्षेत्र के इस नाट्यरूप को नया आयाम मिला है।

2.4.7 ख्याल (i)

लोक नाट्यरूप ख्याल का राजस्थान में अत्यधिक प्रचार है। यह ख्याल तथा लावनी दोनों नामों से प्रसिद्ध है। वैसे तो ख्याल की परम्परा काफी पुरानी है। परंतु अपने वर्तमान रूप में राजस्थानी ख्याल 18वीं

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रारम्भ हुआ। ख्याल प्रदर्शन समूचे राजस्थान और उसके आसपास के प्रदेशों में बहुत लोकप्रिय है और ख्याल मंडलियाँ निश्चित शुल्क पर विभिन्न नगरों और गाँवों का दौरा करती तथा प्रदर्शन करती रहती हैं। ख्याल शब्द खेल या उर्दू शब्द ख्याल-विचार से बना होगा। इस नाट्यरूप का यह नाम क्यों पड़ा, इसकी निश्चित जानकारी नहीं।

राजस्थानी ख्याल संगीत प्रधान लोकनाट्य है, इसमें संगीत, नृत्य और नाटक का सम्मिश्रण होता है और गायन की प्रधानता रही है। ख्याल गेय है और विविध राग रागनियों में लिखे जाते हैं जिन्हें रंगत कहते हैं। इस प्रकार के रंगतों की संख्या साढ़े तीन सौ से ऊपर है, रागबद्ध होने के अतिरिक्त उनमें हिंदी के छंदों लावनी, तारंक और आल्हा आदि का प्रयोग होता है। ख्याल या ख्याल को लावनी भी कहते हैं, क्योंकि इसका मूलाधार 22 मात्राओं वाला लावनी छंद है।

ख्याल नाटकों के अधिकांश कथानक या तो प्रचलित लोक-कथाओं पर या ऐतिहासिक गाथाओं और धार्मिक पौराणिक कथाओं के लिए जाने जाते हैं। कथानक कहीं से भी लिये जायें, श्रृंगारिक तत्त्वों को प्रधानता दी जाती है। वीर नायकों की कहानियों में प्रेम-भाव की ही अभिव्यक्ति दी जाती है। अधिक प्रचलित कथानकों में गोगा चौहान, अमर सिंह राठौर, पृथ्वीराज, तेजाजी, दुल्ही, सुल्तान निहालदे, पठान शहजादा, पन्ना वीमदे, नरसी मेहता, राजा हरिश्चंद्र, नल-दमयंती, गोपीचन्द्र, भर्तृहरि आदि। कथानक का विकास व्यवस्थित नहीं होता, संगीत की प्रधानता रहती है, गायन में ही संवाद भी होते हैं, बीच के अंतराल को नृत्य दृवारा भरा जाता है।

ख्याल का रंगमंच केवल एक ऊँचा चबूतरा मात्र होता है। यह चारों ओर से खुला रहता है। दर्शक मंच के चारों ओर धरती पर बैठते हैं। पीछे की ओर वादक समाज बैठता है। ढोलक, हारमोनियम, सारंगी, नगाड़ा आदि ख्याल के मुख्य वाद्य हैं। संवाद गीतों की समाप्ति पर नगाड़ा तेजी से बज उठता है और नृत्य के चक्कर भी तेजी से चलते हैं। तीव्र गतिमत्ता और ऊँचा स्वर ख्याल की प्रमुख विशेषताएँ हैं। नगाड़े का स्वर बड़ी दूर-दूर से दर्शक समाज को खींच लाता है। ख्याल में अभिनेतागण प्रारंभ से अपनी-अपनी भूमिका आने पर क्रमशः प्रवेश करते हैं और पार्ट समाप्त करके प्रस्थान नहीं करते वरन् मंच पर ही बैठ जाते हैं, दूसरे अभिनेता के संवाद के साथ ही साथ पृष्ठभूमि से वे सभी उन संवादों अथवा गीतों को दुहराते रहते हैं। रंगमच पर कोई दृश्य-सज्जा नही होती और कोई सामान भी नहीं रखा जाता। दृश्य का आभास कभी-कभी संवादों द्वारा दे दिया जाता है।

ख्याल में स्त्री-पात्रों का अभिनय भी पुरुष ही करते हैं। पात्र राजस्थान की परंपरागत वेशभूषा पहनते हैं। जैसे पुरुष पात्र राजस्थानी पगड़ी, अंगरखा और धोती। किसी राजा या वीर नायक की भूमिका करने पर अधिक कीमती पगड़ी और अंगरखा होते हैं। राजा, चौबदार, सैनिक, पुरोहित मंत्री, विदूषक आदि की पोशाक एक-सी होती है, चाहे वह राजा हरिश्चंद्र या मोरध्वज हो अथवा अमर सिंह राठौर। कभी-कभी कुछ विशिष्ट सज्जा कर ली जाती है, जैसे राजा के तलवार बाँध दी जाती है या पुरोहित भगवा रंग का चोंगा पहन लेता

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

है। स्त्री लहँगा, चुनरी और कांचली पहनती है। आभूषणों में सिर पर बोरला होता है, हाथों में बड़े-बड़े चुड़िले, पैरों में चिपके-चिपके जेवर पहनती हैं। स्त्री-पुरुष पात्र दोनों ही हार पहनते हैं और पैरों में घुघरू बाँधते हैं। मुख सज्जा सामान्य रहती है।

पहले ख्यालों में मशालों का प्रयोग किया जाता था, प्रकाश कम होने पर मशाल में मंच पर ही और तेल डाल दिया जाता था और वह भभक कर जल उठती थी। अब अधिकतर बिजली का प्रयोग होने लगा है फिर भी गाँव में बिजली उपलब्ध नहीं है, मशालों के प्रकाश में ही अभिनय होता है। इनका प्रकाश काफी होता है और समूचे प्रदर्शन को एक आकर्षण प्रदान करता है।

रात के प्रारंभ से ख्याल का प्रदर्शन प्रारंभ होता है आधी रात से भी अधिक समय तक चलता रहता है। पहले मंच पर सभी अभिनेता एकत्र होकर गणेश या सरस्वती आदि की समवेत वंदना के पश्चात् मंच से चले जाते हैं और भंगी आता है, गा-गाकर सफाई करता जाता है, अपना परिचय देता है। भंगी के बाद भिश्ती आकर मंच पर छिड़काव करने का अभिनय करता है, भिश्ती के जाने के बाद हलकारा आता है और अपना परिचय देने के बाद, हलकारा ख्यालकार और ख्याल की कथावस्तु का परिचय देता है। फिर अभिनेताओं को एक-एक कर मंच पर बुलाकर उनका परिचय देता है, सबसे अंत में गुझ आता है जो मंडली का नायक भी होता है। इसके पश्चात् नाटक प्रारंभ हो जाता है।

ख्यालों की भाषा राजस्थानी होती है। लोक-प्रचलित शब्द और तीखापन तथा व्यंग्यात्मकता इस भाषा की विशेषता है। विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित होने के कारण ख्याल गीतों में आसपास की भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं और इसी से उनका काफी सरलीकरण हो गया है। परंतु भाषा शैली बड़ी मधुर और आकर्षक होती है। संगीत और नृत्य तो ख्याल का प्राण ही हैं। अनेक प्रकार के छंदों जैसे लावणी, वित्त चौबोला आदि का प्रयोग होता है ओर काफी, सारेठ, भैरव आदि राग लोक धुनों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। सम की थाप पर अभिनेता मंच पर नृत्य की गति में ही प्रवेश करता है, हर संवाद के बाद और कभी-कभी उसके साथ ही नृत्य चलते रहते हैं। गीत के ऊँची तान, वाद्य के आकर्षक स्वर और नृत्य में मनमोहक घुंघरू दूर-दूर तक रात्रि की निरतब्धता में गूंजते हैं और दर्शक खिंचे चले जाते हैं।

ख्याल में हास्य और चुहल का वातावरण भी रहता है जो उसके आकर्षण को और बढ़ा देता है। पारंपरिक गीतों में सामाजिक समरयाओं का उल्लेख करने वाली पंक्तियों का भी समावेश कर लिया जाता है और कई स्थानीय व्यक्ति तथा घटना भी व्यंग्य का लक्ष्य बन जाती है। इन हास-परिहासों का आनंद अभिनेता और दर्शक एक साथ लेते हैं और दैनंदिन थकान तथा ऊब को भूलकर नाट्यरस में सराबोर होकर रात-रात भर ख्याल देखते रहते हैं।

राजस्थानी ख्यालों के अतिरिक्त शाहदरा और फर्रुखावाद के भी ख्याल होते थे। जिनके वाद, गेयता और नाट्य तत्त्व राजस्थानी ख्यालों से मिलते थे, परंतु उनकी भाषा खड़ी बोली होती थी। तुर्रा और कलंगी लावनी के दो विरोधी संप्रदाय माने जाते हैं तुर्रा वाले शिव के उपासक होते हैं, और कलंगी वाले शिव के, दोनों

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संप्रदायों के ख्यालकार अपनी-अपनी रंगतें बनाते हैं और सवाल-जवाब भी चलते हैं। कुछ समय तक कानपुर खड़ी बोली के ख्यालों का प्रमुख स्थान था। प्रवर्तक रिसालगिरि तुर्रे वाले और स्याम सिंह कलंगी वाले रहे हैं। ख्याल की यह परंपरा लुप्त प्राय है, तुर्रा कलंगी के ये दंगल अब नहीं के बराबर होते हैं। अब ख्याल नाम से राजरथानी ख्याल ही प्रसिद्ध है, जो बड़ा लोकप्रिय पारंपरिक नाट्य रूप है।

ख्याल (ii)

राजस्थान के संगीत प्रधान लोक-नाट्य को ख्याल कहा जाता है। इसका उद्भव 18वीं शताब्दी से माना जाता है। ख्याल की शैलियाँ बहुत सी हैं जैसे मेवाड़ी, ख्याल, जैपुरी ख्याल, कुंचामणी ख्याल, शेखावती ख्याल, हाथरसी ख्याल आदि। इन ख्यालों में भाषा की भिन्नता है और कुछ प्रस्तुति में भी परंतु अधिकांश विशेषताएँ एक जैसी ही हैं। कोई-कोई ख्याल अपने रचयिताओं या प्रस्तुति कर्ताओं के नाम पर रखे जाते हैं जैसे अली बक्षी ख्याल। वास्तव में ख्याल, माच और नौटंकी अलग-अलग स्थानों पर विकसित हुये-जैसे राजस्थान, मालवा और उत्तर प्रदेश में और उनकी भाषा तथा संगीत राग रागनियाँ, संगत के साज अलग-अलग हैं परंतु कथानक और प्रस्तुति शैली में समानता तो यही है कि ये सभी ऑपेरा या गेय नाट्य हैं अर्थात् इनके संवाद गेय होते हैं- कुछ गद्य में भी होते हैं पर अधिकतर गाकर बोले जाते हैं। ख्याल इन तीनों लोकनाट्य रूपों में अधिक विकसित है। इसका उद्भव रास चर्चरी, फागु आदि से माना जाता है परंतु यह विशेष रूप से सामाजिक नाट्य रूप है, यद्यपि इसकी अनेकों शैलियाँ हैं जैसा कि कहा जा चुका है ये शैलियाँ कहीं तो विशेष स्थान के नाम पर है जैसे मेवाड़ी ख्याल या शेखावटी ख्याल अथवा इनके प्रस्तुत कर्ताओं के नाम पर है जैसे अली बख्शी ख्याल ओर कुचामणी ख्याल। ये सभी शैलियाँ मिलती जुलती हैं परंतु भाषा की भिन्नता है, किसी में संगीत अत्यधिक प्रधान है किसी में गद्य संवादों की प्रचुरता है। पहले इसकी विभिन्न शैलियों को देख लेते हैं।

कुचामणी ख्याल—इनके प्रवर्तक पंडित लच्छूराम कहे जाते हैं-कुचामण में निवास करने के कारण इन्होंने अपने ख्यालों को कुचामणी ख्याल कहा। इनके लिखे करीब पच्चीस ख्याल हैं। इन ख्यालों में हास्य की प्रधानता है, मंच भी विशेष नहीं बनाया जाता, ये अधिकतर होली के अवसर पर प्रस्तुत होते हैं। इनमें दोहा, कवित्त, सोरठा, शेर आदि छंदों का प्रयोग होता है। भाषा उर्दू मिश्रित हिंदी होती है।

बहुत सी रागरागनियों का प्रयोग होता है, इनमें संगत के लिये नगाड़े, ढोलक, मजीरे और हारमोनियम का प्रयोग किया जाता है। इसमें नृत्य का प्रयोग भी काफी होता है उसे आदायगी कहते हैं। मंच साधारण सज्जा वाला होता है, तीन तरफ से खुला होता है। राजस्थान में इन ख्यालों के शौकिया और व्यावसायिक दोनों प्रकार के दल होते हैं।

शेखावटी ख्याल— यह इनका जन्म देने वाले प्रहलादीराम पुरोहित हैं। नानू राणा भी इन्हीं के दल से थे जिन्होंने आगे चलकर चिड़ावी ख्याल को जन्म दिया। शेखावटी ख्याल अपनी उच्चस्तरीय संगीतात्मक

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

गायकी के लिये बहुत प्रसिद्ध हुए। पहले इनमें ढोलक, और सारंगी का प्रयोग होता था परंतु अब हारमोरियम और नगाड़े का प्रयोग भी होने लगा है।

मेवाड़ी ख्याल–यह विशेषकर वेशभूषा की चमक दमक के लिये प्रसिद्ध है। राजस्थानी वेशभूषा वैसे भी आकर्षक होती है उसमें भी मेवाड़ की वेशभूषा और भी अधिक। कलंगीदार पगड़ियाँ झिलमिलाते घेर घुमेर लहँगे, जगर मगर करते आभूषण--बाजूबंद, भारी पायलें आदि सभी इसे विशेष आकर्षण प्रदान करते हैं। इसमें संगीत और नृत्य बहुत आकर्षक होता है। मंच की कोई अधिक तामझाम या सजावट नहीं होती। थोड़ा ऊँचा चबूतरा और उसके चारों ओर बैठे रसविभोर दर्शक।

अली बख्शी ख्याल–अली बख्श इन ख्यालों के जन्मदाता थे। इनके लिखेदस ख्याल मिलते हैं। इनमें दोहा, भेंट, ठुमरी आदि छंदों का प्रयोग होता है और अपने सुंदर संगीत के कारण ये बड़े लोकप्रिय भी हैं। अलीबख्श को राग-रागनियों की अच्छी जानकारी थी-ठुमरियाँ लिखने में बहुत ही कुशल थे।

कथावाचक ख्याल, अभिनय ख्याल आदि भी प्रसिद्ध हैं इनके नाम से ही इनकी विशिष्ट शैली की झलक मिल जाती है।

ख्याल गीत नाट्य नृत्य और वाद्य का सम्मिलित रूप है। परंतु सभी प्रकार के ख्यालों में ये समान रूप में नहीं रहते। जैसे शेखावटी ख्यालों में उच्चस्तर की गायकी होती है। पर नृत्य पक्ष कुछ कमजोर होता है, कुचामणी ख्यालों को रोवणी धुन के ख्याल कहते हैं।

यद्यपि ख्यालों की विविध शैलियाँ हैं परंतु इन सभी में कुछ बातें समान होती हैं अतः इनकी प्रस्तुति की चर्चा में इन विशेषताओं पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। ख्याल की गणना मंचीय नाट्यों में की जाती है और विशेषकर राजस्थान भर में इन्हें इनकी गायकी और नृत्य के लिये पसंद किया जाता है। विषयवस्तु या कथानक विषय वस्तु की दृष्टि से इन ख्यालों को चार भागों में बाँटा जा सकता है। ऐतिहासिक, श्रृंगार-कथा आधारित, सामाजिक ख्याल और धार्मिक ख्याल।

ऐतिहासिक ख्याल—राजस्थान में वीर राजाओं की कहानियाँ अत्यंत लोकप्रिय हैं, अतः ख्यालों में भी इनकी कथाओं को गीत नाट्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। राजा विक्रमादित्य, अमर सिंह राठौर, गोगाजी चौहान, पाबूजी (जिनकी कथा पट-चित्रों के माध्यम से भी सुनाई जाती है और उसे पाबूजी की पड़ कहते हैं) देव नारायण, तेजा जी, रामदेव आदि की कथाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, नामों से स्पष्ट है कि ये ऐतिहासिक ख्याल राजस्थान के लोककंठ की कथाओं को प्रस्तुत करते हैं, प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथाओं को नहीं।

श्रृंगारिक ख्याल—लोक के बीच प्रचलित प्रेमाख्यानों को लेकर इन ख्यालों की रचना हुई है, ख्यालों में शहजादा सुलतान, पद्मावत, भँवर चमेली, रूपरल, रसफूला, राजा रिसालू, पंचफूला राणी, हीर राँझा, लैला मजनूँ, सुल्तान निहालदे, ढोलामरवण. माधवानल कामकंदला, राजा केशरसिंह और रानी फूलांदे आदि हैं। रोचक बात है कि नौटंकी नाट्यरूप का उद्भव जिस नौटंकी शहजादी कहानी से हुआ है, उसका ख्याल भी है और उसमें ख्याल के अनुरूप नौटंकी और वीरमदेव की कहानी को ढाल लिया गया है। प्रेमी-प्रेमिका के

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

संदेशवाहक एवं सहायक के रूप में सूफी प्रेमाख्यानों की भाँति सूआ एवं मालिन आदि पात्रों का प्रयोग किया जाता है। इन श्रृंगारिक ख्यालों में नायक-नायिका में प्रेम की अतिशयता दिखाई जाती है, इनमें से अधिकतर सुखांत हैं परंतु दुखांत भी होते हैं जैसे ढोला, मरवण और पदमावत। अधिकतर कहानियाँ राजस्थान में प्रचलित प्रेमाख्यान हैं परंतु कुछ समूचे हिंदी प्रदेश अथवा उत्तरी भारत में प्रचलित प्रेमाख्यान हैं।

सामाजिक ख्याल—ये विशिष्ट प्रकार के ख्याल हैं जिनमें समाज में व्याप्त बुराइयों और दुश्चरित्रों को स्पष्टता से दिखाया जाता है-इनका उद्देश्य होता है कि समाज की बुराइयों जैसे अनमेल विवाह, नशाखोरी, जादू टोने आदि के बुरे प्रभाव को दिखाकर हास्य व्यंग्य की शैली में कहकर समाज से इन बुराइयों को दूर किया जाय। सामाजिक ख्यालों में शिशु विवाह नाटिका, मस्तपरी, खटपटिया, छोटा बालम, नशाबाज आदि बहुचर्चित ख्याल हैं। ये ख्याल करीब सौ साल पहले ही प्रारंभ हुए हैं, परंतु काफी लोकप्रिय हैं।

धार्मिक ख्याल—हमारे देश में पारंपरिक नाट्य की हर शैली में चाहे वे लौकिक कथानकों से संबंधित हों अथवा गेय हों या गद्य-संवादपरक, धार्मिक कथाओं को अवश्य लिया जाता है और इस प्रकार के कथानक बहुत लोकप्रिय भी होते हैं क्योंकि इन धर्मकथाओं पर सामान्य जन की श्रद्धा सदा से जमी हुई है। राजा हरिश्चंद्र, भक्त प्रहलाद, रुक्मिणी मंगल, भर्तृहरि पिंगला, नरसी, मेहता, मीरा मंगल आदि ख्याल बहुत प्रसिद्ध हैं।

मंच विधान-सभी ख्यालों में मंच विधान लगभग एक सा होता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि लोकनाट्य की प्रस्तुति कभी थिएटर गृहों में नहीं होती। गाँवों की चौपाल, मंदिर का प्रांगण या कभी-कभी तो सड़क का बड़ा चौराहा इन ख्यालों का मंच बन जाता है। कुछ चौकियाँ डालकर उन पर चादर बिछा कर मंच बना लिया जाता है। कभी ये मंच चारों ओर से खुले होते हैं और दर्शक चारों ओर बैठ सकते हैं-अधिकांश तीन ओर बैठते हैं-पर मंच पर कोई परदा-न पीछे का न आगे का नहीं रहता पात्र अपनी-अपनी भूमिका के उपयुक्त समय में स्वयं ही आकर अपना 'पार्ट' बोल देते हैं। केवल ख्यालों का एक मंच विशिष्ट है जिसे अट्टाली मंच कहा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह निकटवर्ती माच का प्रभाव है-बारह फुट से लेकर बीस-बीस फुट तक ऊँचाई रखी जाती है और इनमें आलिका की भाँति झरोखे आदि बनाकर चारों ओर रंगबिरंगी झंडियों, फूलों आदि से खूब सजाया जाता है। सीढ़ियाँ भी लगी होती हैं, ऊपर बैठे पात्र इन सीढ़ियों से उतर कर नीचे मंच पर अपने संवाद बोलकर फिर ऊपर जाकर बैठ जाते हैं। परंतु अब इसका प्रचार कम होता जा रहा है। अधिकतर त्रिदिशीय मंच का ही प्रचार है, और वही ख्याल का सर्वसाधारण मंच माना जा सकता है। मंच की एक विशेषता यह भी अवश्य दर्शनीय है कि एक चादर बिछे खुले चबूतरे पर किसी कोने को महल मान लिया जाता है, कहीं उपवन और कहीं बाजार। मंच सज्जा नहीं होती, और मंच पर कोई उपकरण भी नहीं रखे जाते।

प्रकाश व्यवस्था पहले गैस के हंडों से होती थी अब बिजली का प्रयोग होता है। गाँवों में अभी तक गैस के हंडों का ही प्रयोग होता है। ख्याल मंच की विशेषता उसकी सादगी और उन्मुक्तता ही है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पात्र–ख्याल में स्त्रियाँ भाग नहीं लेती, स्त्री भूमिकाओं को भी पुरुष ही निभाते हैं। वैसे ये पुरुष स्त्री भूमिकाओं में इतने कुशल होते हैं कि नाट्य, देखते समय यह मानना कठिन हो जाता है कि छैल–छबीली रंगीली युवती की भूमिका करने वाला कोई पुरुष है। एक प्रसिद्ध ख्याल में पति–पत्नी की भूमिका करने वाला एक जोड़ा इतना लोकप्रिय हुआ कि उन्हें अभिनय का पुरस्कार केन्द्रीय अकादमी द्वारा प्राप्त हुआ–मैं मैके चली जाऊँ तुम देखते रहियो–यह गीत गाते हुए मुख पर घूँघट डाले नायिका बहुत आकर्षक लगती थी और पति–पत्नी का जोड़ा आपस में झगड़ते और चुहल करते कभी रूठते कभी मान जाते, इतने प्रभावी लगते थे कि राजकपूर ने बॉबी फिल्म में इस गीत और उसकी प्रस्तुति को ले लिया।

कलाकार, अपनी अभिनय कला में बहुत कुशल होते हैं और आस–पास के क्षेत्रों में खूब लोकप्रिय भी।

भाषा—ख्यालों की भाषा राजस्थानी होती है। अलग–अलग स्थानों के ख्यालों में राजस्थानी की अनेक शैलियों का प्रयोग होता है। मेवाड़ी ख्याल में मेवाड़ प्रदेश की बोली, कुचामणी और शेखावटी ख्यालों में अपने–अपने प्रदेश की शैली का प्रभाव मिलता है। शेरो–शायरी के प्रयोग के कारण उर्दू, फारसी का प्रयोग भी मिलता है, भाषा बड़ी सहज गतिशील और प्रभावी होती है। गीतों की भाषा काव्यमयी होती है।

संगीत और छंद–प्रस्तुति गद्य संवादों, पद्य और गेय अंशों–इन तीन रूपों में होती है। दोहा, कवित्त, सोरठा और कहीं–कहीं शेर भी प्रयुक्त होते हैं। राग रागनियाँ हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की होती हैं अधिकांश भूपाली, टोड़ी, ललिता, भैरवी, आसावरी आदि का प्रयोग होता है। प्रचलित और लोकप्रिय धुनें जैसे लावणी, कव्वाली, रासडो, रसिया घूमर, सोरठ आदि भी कलाकार अपनी रुचि अनुसार प्रयोग कर लेते हैं।

प्रकाशन–ख्यालों को पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है, यद्यपि पहले यह मौखिक परंपरा की नाट्य ही था और इसके पात्र अपनी–अपनी भूमिका को याद रखते थे और उपयुक्त समय पर बोलते थे। परंतु अब बंबई, आगरा, कलकत्ता मथुरा आदि स्थानों से ख्याल पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हुए हैं। इधर हाल में तो इनके कैसेट भी बन गये हैं। वास्तव में यह ख्याल की लोकप्रियता का ही द्योतक है कि दर्शक तो इसे देखते ही हैं इसका एक पाठक वर्ग भी है जिसके बीच ये बड़े प्रिय हैं।

ख्याल राजस्थानी लोकनाट्य का अत्यंत विकसित रूप है। इनकी गणना मंचीय लोकनाट्यों में की जाती है, ख्याल में भारतीय परंपरा के मूल सिद्धांतों की पालना देखी जाती है, इनसे मानव जीवन अपने उच्चादर्शों को प्राप्त करता हुआ भारतीय संस्कृति के शाश्वत रूपों को प्रकट करता है। राजस्थान की ख्याल संपदा बड़ी समृद्ध और स्वस्थ रही है और आज भी ग्रामीण अंचलों में बड़ी लोकप्रिय है।

2.4.8 माच (i)

मालवा का लोकप्रिय नाट्यरूप माच नौटंकी जात्रा, तमाशा एवं ख्याल की भांति सामाजिक नाट्य है जिसमें मालवा में प्रचलित प्रेमाख्यान प्रस्तुत किये जाते हैं। परंतु उसमें कभी–कभी मोरध्वज, प्रह्लाद और रामायण भाव भी प्रस्तुत किये जाते हैं। माच का प्रचलन मालवा के गाँव–गाँव और शहर–शहर में हैं, परंतु

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

माच में विशेष प्रसिद्धि उज्जैन के सिद्धेश्वर सेन को मिली जिनके द्वारा प्रस्तुत भाव अत्यधिक कलात्मक होते हैं।

माच का उद्भव मालवा के द्वारा ढारा-ढारी के खेलों से हुआ। नृत्य, गान स्वांग और अभिनय कला में दक्ष-ढारी जाति का जमाव विशेषकर उज्जैन में मुख्य रूप से रहा। ये लोग पहले उज्जैन के मंदिरों के कृष्ण चरित का अभिनय अपनी विशिष्ट शैली में किया करते थे।

क्रमशः माच मंदिरों से हटकर गाँवों और नगरों के खुले मैदानों में होने लगा और उसके कथानक भी बदल गये, तभी उसका संगीत, काव्य विशेषकर हास-परिहास भी विशिष्ट होता गया।

माच के खेलों का आयोजन सामान्यतः वर्षाकाल को छोड़कर शेष समय में किया जाता है। इनका आयोजन फाल्गुन, चैत्र और वैशाख महीनों में ही विशेषकर किया जाता है। माच प्रदर्शन के लगभग 15 दिन पूर्व मंच का खम्भ गाड़ा जाता है। मंच की खंभ-स्थापना परंपरागत ढंग से की जाती है। शुभ मुहूर्त में माच-मंडली का मुखिया खंभ की पूजा करता है, ढोल बजता है। माच के सदस्य गीतों की कड़ियाँ दुहराते हैं। लाल चोले (एक प्रकार का लाल वस्त्र), हरा धनियाँ, गुड़ और आम्रपल्लव आदिपूजन सामग्री के साथ खंभ स्थापना विधि पूरी होती है। गुड़ और धनिये का प्रसाद वितरित होता है। इसी के साथ मंच निर्माण का शुभ-कार्य शुरू हो जाता है। लकड़ी के तख्तों और बल्लियों के सहारे 9, 11 या 15 फुट ऊँचा मंच बनाया जाता है। मंच के ऊपर श्वेत वस्त्र की चाँदनी (चंदोवा) छायी जाती है। कहीं-कहीं कागज की मंडियाँ (लिग्गियाँ) भी लगायी जाती हैं। 10-12 फुट चौड़े मंच के सामने "बारह भाई का पाट" होता है, जहाँ मंडली के नवयुवक कार्यकर्ता बैठते हैं। मंच के एक ओर साजिंद्र-ढोलकवादक, सारंगीवादक और हारमोनियम वादक कुर्सियों पर बैठते हैं। खेल के नायक के लिए सिर्फ एक कुर्सी बीच में रखी जाती है। मंच के पीछे "टेक झेलनेवालों का पाट" होता है, जहाँ गायक कलाकारों का समूह बैठता है, जो पात्रों द्वारा प्रस्तुत गीति कथन "बोल" को दोहराता है। इस दोहराने को "टेक झेलना" कहते हैं।

माच के खेलों का प्रदर्शन रात्रि के प्रथम प्रहर से प्रारंभ होकर प्रातःकाल तक चलता है। मंच पर ढोलक बजती है, जो इस बात का संकेत होती है कि खेल शीघ्र ही शुरू होने वाला है। वैसे माच का प्रेमी समुदाय आकर पहले से ही जम जाता है। जमीन पर और आसमान के ऊँचे ओटलों (मिट्टी के मकानों के ऊँचे आँगन) पर जनता सैकड़ों की संख्या में जमा हो जाती है। माच के पात्र अपनी सादी वेषभूषा में आकर सामूहिक स्वरों में देवी-देवताओं की वंदना करते हैं। प्रत्येक कलाकार गुरु या मुखिया को ''मुजरा" करता है। चोपदार, भालदार ऊँची आवाज में मुजरा करने वाले पात्र का नाम पुकारता है। मुजरे के बाद कलाकार वेशभूषा धारण करने के लिए निकट ही बने कक्ष में चले जाते हैं।

इसके बाद मंच पर भिश्ती का प्रवेश होता है। वह अभिनय और गीति कथन द्वारा पानी छिड़कने के अपने उद्देश्य को प्रस्तुत करता है। भोपाली भिश्ती, पंजाबी भिश्ती, गुजराती भिश्ती, नौलाई भिश्ती, प्रभृति नामों से मांचकारों ने इस प्रसंग को अपने खेलों के पूर्व प्रस्तुत किया है। भिश्ती के बाद आती है-फर्रासन।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

वह "जाजम बिछाने" का अभिनय करती है। "नानकस के पंडे" आकर देवी की वंदना के "बोल'' प्रस्तुत करते हैं। माच के इन पूर्वरंगों की पृष्ठभूमि में मालवा में नाथपंथी कनफटिये जोगियों और फकीरों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। सिद्ध फकीरों की ''हाजरात विदया'' के ही प्रभाव के परिणाम-स्वरूप माच में पूर्वरंग की यह परंपरा ग्रहण की गई है।

इसके उपरांत किसी बालक को भगवा वस्त्र या लाल चोल (वस्त्र) से लपेटकर कुर्सी पर बैठा दिया जाता है। कपड़े की सूंड निकाली जाती है। स्वांग भरकर बैठे हुए गणेश जी की वंदना में माच के कलाकार गीत कड़ियाँ दुहराते हैं। गणेशजी के बाद सरस्वती, भैरव-भवानी प्रभृति देवी-देवताओं की स्तुतियाँ की जाती हैं। भैरव की वंदना करना अनिवार्य होता है, क्योंकि भैरव जी माच के रसिया है। उनकी वंदना के अभाव में माच का खेल जम नहीं पाता।

इस पूर्वरंगों के पश्चात् माच का मुख्य खेल प्रारंभ होता है।

मंच-निर्माण एवं प्रस्तुतीकरण—मंच की विशेषता है, चौदह फुट ऊँचा मंच जो केले के खंभों और पत्तों तथा फूल वंदनवारों से सजा बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है। पात्र उस पर बैठे रहते हैं और अपने संवाद का अवसर आने पर नीचे उतर कर दर्शकों के निकट समतल भूमि पर अभिनय करते हैं। संवादों को गेय शैली में प्रस्तुत किया जाता है। वेशभूषा मालवी होती है और भाषा मालवी और खड़ी बोली मिश्रित होती है।

माच के पात्र लोकजीवन की कल्पना के प्रतिरूप होते हैं। पात्रों की संकल्पना और उनका चित्रण इतना स्वाभाविक होता है कि उनके प्रति जनमानस का आकर्षण सदैव बना रहता है। माच में मानव पात्रों के साथ पशु-पक्षी-हिरण, सिंह, तोता मैना आदि भी होते हैं जिसकी सज्जा रोचक होती है। स्त्रियों का अभिनय भी पुरुष ही करते हैं, नायक का सहायक शेरमार खाँ कहलाता है, वह मुख्य पात्र के साथ सदा मंच पर उपस्थित रहता है और हास्य की सृष्टि करता है परंतु वह मात्र विदूषक नहीं है, यदि प्रमुख पात्र मंच से हट जाए तो वह उसका स्थान भी ले लेता है।

मांच के संवादों को बोल कहते हैं, ये सभी गेय होते हैं। विभिन्न राग रागनियों, लोकधुनों और रंगतों का प्रयोग मांच की लोकप्रियता का प्रमुख कारण है। माच की प्रमुख भाषा तो मालवी है। परंतु खड़ी बोली का प्रयोग भी होता है। मालवी भाषा की मिठास और कहावतों-मुहावरों का प्रयोग मानव की भाषा को आकर्षक बनाता है।

माच में मालवा के लोक जीवन का सच्चा प्रतिबिंब मिलता है, और उनके रीति-रिवाज़, आचार-व्यवहार आदि इसमें देखे जा सकते हैं इसी कारण और संगीत तथा अभिनय की कुशलता के कारण माच को मालवा में तो लोकप्रियता प्राप्त है ही, प्रदेश के बाहर भी जब प्रस्तुत हुआ है, उसे सफलता मिली है।

माच के आदि-प्रर्वतक गुरू गोपालजी हैं, जिन्होंने राजस्थानी ख्याल का मालवी रूपांतर और मालवा प्रचलित विभिन्न लोकशैलियों से तत्त्व ग्रहण करने की माच की परंपरा चलाई जो मालवा में बहुत लोकप्रिय हुआ।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

माच (ii)

माच प्रधानत: मालवा का लोकनाट्य रूप है। इस लोकनाट्य माच का प्रचलन मालवा के गाँव-गाँव और नगरों में भी हैं। मालवा के बाहर माच-नाट्य रूप नहीं मिलता, ख्याल का एक रूप उसके ऊँचे मंच के कारण ख्याल माच कहा जाता है परंतु उसमें और माच में और कोई समानता नहीं होती। मालवा की सीमा दक्षिण में नर्मदा की घाटी को सम्मिलित करता है। इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (पृ. 20) इस संबंध में मालवा में एक दोहा भी प्रचलित है:

इत चंबल उत बेतवा मालब साम सुजान।
दक्षिण दिसि है नर्मदा यह पूरी पहचान।

इस प्रकार मालवा की कोमल भावभूमि पर इस गेय नाट्य रूप का जन्म और प्रचार हुआ।

माच शब्द संस्कृत के मंच शब्द का अपभ्रंश है। इस नाट्यशैली को माच नाम देने का प्रमुख कारण इस नाट्य शैली के मंच की विशेषता है। मंच 15 से बीस फीट तक ऊँचा होता है। नाट्य के पहले पारिवारिक उत्सव (विवाह यज्ञोपवीत आदि) की भांति खंभ स्थापना या स्तम्भ स्थापन का आयोजन होता है, मंच की खंभ स्थापना परंपरागत ढंग से की जाती है, शुभ मुहूर्त में माच मंडली का मुखिया खंभ की पूजा करता है, ढोल मंजीरे बजते हैं, गीत गाये जाते हैं, लाल चोल, हरा धनिया एवं आम के पत्तों के साथ पूजा की जाती है. गुड़ और धनिया का प्रसाद बांटा जाता है और इसी के साथ मंच निर्माण प्रारंभ होता है। लकड़ी के तख्तों और बल्लियों के सहारे 9, 11 या 15 फीट ऊँचा मंच बनाया जाता है, मंच के ऊपर श्वेत चंदोवा ताना जाता है। चारों ओर के खंभों पर झंड़ियाँ लगाई जाती हैं और फूल मालाओं आदि से सजाया जाता है। इस चौड़े मंच के सामने टेक की पाट होती है जहाँ मंडली के युवक कर्मि-कर्ता बैठते हैं। मंच के एक ओर साजिन्दे-ढोलकवादक, सारंगीवादक और हारमोनियम वादक, कुर्सियों पर बैठते हैं। मंच के पीछे टेक झेलने वालों का पाट होता है जहाँ गायक कलाकार बैठते हैं, मंच पर भूमिका करने वाला पात्र जब संवाद-गीत की पंक्ति गाता है तो पीछे से ये गायक उसके संवाद को गाकर दोहराते हैं। इस दोहराने को टेक झेलना कहते हैं। माच नाट्य रूप में पहले उसके मंच का विवरण इसलिए उपयुक्त है क्योंकि इसका नाम ही इसके मंच के आधार पर पड़ा और वह मंच ही माच की विशिष्टता है।

माच नाट्य का प्रदर्शन रात्रि के प्रथम प्रहर से आरंभ होकर प्रात:काल तक चलता है। मंच पर पहले से ढोलक बजने लगती है जो नाट्य आरंभ का संकेत देती है और दर्शक खिंचे चले आते हैं। माच का पूर्वरंग विशिष्टता लिये होता है, माच के प्रारंभ में सर्वप्रथम भैरव की वंदना होती है, पहले सभी पात्र बारी-बारी से मंच पर आकर गुरू या मुख्या को मुजरा करते हैं जो मंच पर कुर्सी पर बैठा रहता है। चोबदार या भालदार ऊँची आवाज में पात्र की भूमिका का नाम पुकार कर उसका परिचय देता है। मुजरे के बाद कलाकार वेशभूषा धारण करने के लिए नेपथ्य में चले जाते हैं। इसके बाद मंच पर भिश्ती का प्रवेश होता है जो सांकेतिक रूप से पानी का छिड़काव करता है, भिश्ती के बाद फर्राशन आती है वह नाजमी बिछाने का

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अभिनय करती है। नानक सां के पंडे आकर देवी की वंदना के बोल प्रस्तुत करते हैं। इसके उपरांत किसी बालक को भगवा वस्त्र या लालचोल से लपेटकर कुर्सी पर बिठाया जाता है और कपड़ों की सूंड बनाकर उसे ढुंढालो गणेश बनाया जाता है फिर सभी कलाकार प्रवेश कर वन्दना करते हैं, गणेश वंदना के बाद सरस्वती भवानी आदि की वंदना होती है परंतु सबसे पहले भैरव की क्योंकि भैरव को माच का अधिष्ठाता देवता माना जाता है।

माच का उद्‌भव–यह गेय नाट्य मालवा में प्रचलित नकल और स्वांग के अनेक खेलों से प्रारंभ हुआ। ढाराढारी के खेल–जिसमें कृष्णचरित का अभिनय प्रस्तुत होता रहा है दाढ़ी जाति के कलाकार नृत्यगान और स्वांग में बहुत कुशल होते हैं, सूरदास के पदों में भी उनका उल्लेख मिलता है। ये कलाकार प्रमुखतः उज्जैन में केंद्रित रहे हैं। कृष्णचरित से संबंधित गर्वा पर्व भी मालवा में मनाया जाता है। माचकार पहले गरबी गीतों की रचना करते रहे हैं।

माच के विकास में प्रमुख भूमिका तुर्रा कलगी नाम से काव्य गायन की शैली की रही है। इस तुर्राकलगी गायन परंपरा का प्रभाव ख्याल पर भी है, परंतु माच के उद्‌भव में इसकी बहुत बड़ी भूमिका है। तुर्रा और कलंगी दो अखाड़ों के नाम हैं, तुर्रा के आदि गुरू तुखनगीर गुसाई माने जाते हैं और कलंगी के शाह अली। गुसाई शिवभक्त थे और शाहअली शक्ति के अनुयायी। इन दोनों अखाड़ों में प्रतिस्पर्धामूलक गायन वर्षों से होता रहा है। गुरू उस्ताद की वंदना और गीतिबद्‌ध संवादरचना की शैली माच के रचयिताओं में तुर्रा कलंगी से ही ली है। इस तरह स्पष्ट होता है कि माच की पृष्ठभूमि में ढाराढारी के खेल, गर्वा पर्व, स्वांग और तुर्रा कलंगी से माचकारों ने विभिन्न तत्त्व ग्रहण किये। इन्हीं से माच में अभिनय, (ढाराढारी के खेल), संगीत (गर्वापर्व), काव्य–रचना (तुर्रा, कलंगी) और नकल स्वांगसे हास–परिहास एवं चुटीले व्यंग्य आदि की विशेषताएँ अपनाई।

माच के रचनाकार—माच के खेलों के रचयिताओं को गुरू या उस्ताद कहा जाता है। माच का प्रमुख स्थल उज्जैन ही रहा है। माच के आदि प्रवर्तक गुरू गोपाल जी कहे जाते हैं। इन्होंने ख्याल से प्रभाव और मालवा में प्रचलित लोक शैलियों से तत्त्व ग्रहण करके माच की परंपरा चलाई। इनके रचित हीर रांझा, रूपसिंह, प्रह्लाद चरित्र खेल लोककंठ में ही सुरक्षित हैं। माच के कुछ खेल जैसे राजा हरिश्चंद्र, गेंदापुरी रामलीला, कुंवर खेमसिंह, राजा भर्तृहरि, शिवलीला, कृष्णलीला, देवर भौजाई, सेठ सेठानी आदि शालिग्राम बुक सेलर उज्जैन द्‌वारा प्रकाशित किये गये। इन नामों से स्पष्ट है कि माच की बहुत सी प्रस्तुतियाँ धार्मिक भी हैं यद्‌यपि माच प्रमुखतः प्रेमाख्यानपरक एवं सामाजिक नाट्यरूप है। गुरू बालमुकुंद की भाँति वर्तमान समय में श्री सिद्‌धेश्वर सेन माच परंपरा के प्रसिद्‌ध गुरू हैं। इन्होंने भी अनेक खेलों की रचना की है जिसमें राजा भर्तृहरि, सत्यवादी हरिश्चंद्र, परिहारिन एवं कालिदास आदि–अब भी उनकी रचना का क्रम चल रहा है और माच की दुनिया में इस समय श्री सिद्धेश्वर सेन का सबसे बड़ा नाम है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अभी तक विभिन्न रचनाकारों द्वारा रचित 114 खेलों का पता चला है। इनके आधार पर माच की विशेषताओं का अध्ययन किया जा सकता है।

कथानक–जैसा कि कहा जा चुका है माच के कथानकों में विविधता है।

धार्मिक और पौराणिक कथानक—यद्यपि माच को लोकपरक नाट्य माना जाता है परंतु इसकी अनेक प्रस्तुतियों के कथानक धार्मिक एवं पौराणिक हैं। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि माच का आधार कृष्णचरित प्रस्तुत करने वाले ढाराढारी के खेल, देवी पूजा वाली गर्वागीत एवं रामलीला आदि हैं। ये कथानक रामायण, महाभारत, भागवत एवं पुराणों से लिये गये हैं। भक्त पूरनमल, शिवलीला, कृष्णलीला, सावित्री सत्यवान, राजा हरिश्चंद्र आदि बड़े प्रसिद्ध माच हैं जिनका अभिनय अभी तक खूब धूमधाम से होता है, इससे लोक जीवन के धार्मिक आस्था विश्वासों का पता चलता है।

प्रेमाख्यान—माच के विशिष्ट कथानक हैं। प्रेम कथानकों के आधार पर भी अनेक माच रचे गये जैसे भर्तृहरि पिंगला, हीर-रांझा, ढोला-मारूनी आदि बड़े लोकप्रिय माच हैं।

शौर्य कथाएँ–माच के खेलों में मालवा क्षेत्र के प्रसिद्ध वीरों के जीवन चरित भी प्रस्तुत होते हैं। इन वीरों की कथायें मालवा की जनता के बीच बड़ी लोकप्रिय है, इसी से इनको आधार बनाकर प्रस्तुत किये जाने वाले माच बड़े पसंद किये जाते हैं। वीर तेजाजी, विक्रमाजीत आदि प्रसिद्ध माच हैं जिनमें वीरों के शौर्य ही नहीं उनकी संघर्ष त्याग एवं निस्वार्थ भावना भी प्रकट होती है।

सामाजिक विषय और सामाजिक परंपराएँ–माचकर्ता केवल मनोरंजन के प्रति जागरूक नहीं थे वरन् सामाजिक समस्याओं और बिगड़ी हुई परंपराओं को भी माच में दिखाना बराबर अपना कर्तव्य समझा है। यह अधिक आधुनिक प्रवृत्ति है, भूमिहीन कृषकों की समस्या धरती को दान, ऊगतोसूरज गाँव के नवनिर्माण से संबंधित माच के खेल इस तथ्य के उदाहरण हैं कि आज के युग का माच-प्रस्तुतिकर्ता समाज की विभिन्न परिस्थितियों की ओर भी सजग है और प्रयत्न करता है कि सामान्यजन का ध्यान उन बुराईयों पर जाय और उनसे मुक्त होने का प्रयत्न करें।

पात्र और चरित्र चित्रण–माच में केवल पुरुष ही अभिनय करते हैं और स्त्री पात्रों की भूमिका बड़ी कुशलता से पुरुष पात्र निभाते हैं। माच की एक विशेषता यह है कि इसमें हरिण हरिणियाँ, सिंह-सिंहनी, मैना, तोता, कबूतर आदि भी पात्रों के रूप में प्रस्तुत होते हैं। पुरुष भूमिकाओं की अपेक्षा स्त्री भूमिकाओं में अधिक होती हैं (यद्यपि उनका अभिनय भी पुरुष ही करते हैं)। माच के पात्र मालवा के लोकजीवन को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत करते हैं। दर्शकों के बीच उनकी भूमिकाएँ और वे स्वयं इतने निकट हो जाते हैं कि उनके प्रति सामान्य जन आत्मीयता का अनुभव करते हैं। स्त्री भूमिकाओं में प्रमुख रानी या राजकुमारी की भूमिका होती है। माच में नायिका को बहुत महत्त्व दिया जाता है। पुरुष भूमिकाओं में राजा, राजकुमार आदि होते हैं, सामाजिक माचों में सामान्य स्त्री और पुरुष नायिका और नायक की भूमिका में आते हैं। माच का एक पात्र विशिष्ट होता है, उसका नाम हर माच में शेर मार खां होता है। नायक कोई भी हो चंद्र हो या

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

हरिश्चंद्र, विदूषक शेरमार खां ही होगा। नायक का अभिन्न मित्र होता है, और संस्कृत नाटकों की तरह ही विदूषक का काम भी वही करता है। जैसा उसके नाम से ही स्पष्ट है वह अपनी झूठी वीरता का गुणगान करता रहता है। वह मंच पर नायक के साथ सदा उपस्थित रहता है। एक विशेषता यह है कि यदि कुछ समय के लिये किसी कारणवश नायक मंच से हट जाता है तो शेरमार खां को अपनी तलवार दे देता है और शेरमार खां नायक की भूमिका में आ जाता है। ऐसा किसी और नाट्य प्रकार में नहीं होता कि नायक का मित्र स्वयं नायक की भूमिका में आ जाय। यही बात स्त्री पात्र के थक जाने पर भी होती है दूसरा पात्र जो उसकी सखी होती है उसकी भूमिका निभा देती है।

संवाद—माच के संवादों को बोल कहते हैं, यह स्वाभाविक भी है क्योंकि माच के अधिकांश संवाद गेय होते हैं। इसी से गीतों के बोल की तरह उन्हें भी बोल कहते हैं। माच के गीतिबद्ध संवाद बड़े मधुर भाव की सृष्टि करते हैं। प्रधानता श्रृंगारिक गीतों की होती है, परंतु कथानक के अनुसार वीरता, भय आदि को प्रकट करने वाले संवाद भी होते हैं। माच में स्वगत कथन का प्रयोग नहीं होता, कभी कभी गद्य में भी संवाद होते हैं।

माच के बोल प्रसंग और भाव के संदर्भ में रचे गये। माच की संगीत शैली को रंगत और धुन कहते हैं। इसके बोल प्रसंगानुसार अलग-अलग रंगतों और धुनों में आबद्ध होते हैं। रंगत इकहरी रंगत दोहरी आदि कही जाती है, रंगतों में मात्राएँ निश्चित रहती हैं। रंगत में टेक के बाद दोहा आता है। माच में अधिकांशतः यही दो शैलियाँ अपनाई जाती हैं।

भाषा—माच की भाषा मुख्यतः मालवी होती है, मालवी भाषा बड़ी सुकोमल होती है, इसी से माच में भी कोमलता बहुत आ जाती है। इधर माच में खड़ी बोली का भी कुछ प्रभाव होने लगा है, मालवा की सीमावर्ती भाषाओं जैसे मारवाड़ी, मेवाड़ी के शब्द भी आ जाते हैं, उर्दू का प्रभाव भी गजलों और शेरों में होता है परंतु प्रमुख भाषा मालवी है।

माच में अपने समय की सजीव तस्वीरें अंकित होती हैं। सामन्ती प्रथा के विरुद्ध स्वर माच के खेलों में दिखलाई दिये हैं, माच के सामाजिक खेलों में समाज के जड़ नियमों और रूढ़ परंपराओं का प्रहार किये गए। नवयुग का प्रभाव भी अब माच पर दिखाई देने लगा है। इधर माच में श्रव्य काव्य अर्थात् संगीत का प्रभाव बहुत बढ़ गया है क्योंकि रेडियो से भी माच प्रसारित किये जाते हैं। इसका कारण मालवा क्षेत्र में माच की अभूतपूर्व लोकप्रियता ही है। विगत तीस चालीस वर्षों में माच में स्त्रियाँ भी प्रमुख भूमिकाओं में उतरने लगी हैं। परंतु ग्रामीण अंचलों में और अधिकांशतः अब भी माच अपने पुराने रूप में ही खेला और पसंद किया जाता है, जनता उन्हीं पुराने प्रेमाख्यानों में रसमग्न हो माच के ढोल सुनते ही मंच के चारों ओर एकत्र हो जाती हैं। लोक नाट्य की यही विशेषता होती है कि उसकी जड़े अपने अंचल में गहरी समाई होती हैं और उसकी लोकप्रियता घटने नहीं पाती।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2.4.9 बोध प्रश्न

1. विभिन्न पारंपरिक नाट्य रूपों के नाम बताइए?
2. धार्मिक नाट्य रूप कौन-कौन से हैं?
3. शंकरदेव द्वारा लिखित नाटकों के नाम बताइए।
4. नौटंकी नाट्य रूप का प्रदर्शन किन क्षेत्रों में विशेष रूप से होता है?

2.5 सारांश

पारंपरिक रंगमंच हमारी जमीन की उपज है जिसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। भारत में पारंपरिक रंगमंच बहुत प्राचीन है तथा आज हमारा जो नाट्य साहित्य है इसकी मूल परंपरा पारंपरिक शैली ही है यदि ऐसा कहा जाए तो गलत नहीं होगा। नृत्य, संगीत, हास्य प्रधान होते हुए भी ज्यादातर पारंपरिक शैलियाँ धार्मिक कथाओं पर ही खेली जाती हैं। पारंपरिक रंगमंच, चाहे उत्तरी भारत के हो या दक्षिण भारत के या पूर्वोत्तर भारत के, आंतरिक रूप से सभी पारंपरिक शैलियाँ समान रचना तत्वों और सौंदर्य से परिपूर्ण होते हैं और उनमें आम आदमी को उसके जीवन की गति और उनमें लय को यहाँ तक कि आधुनिकता बोध तक को विन्यस्त किया जा सकता है। पारंपरिक रंगमंच मन की विधा है। जन जीवन ने ही उसे विकसित और परिपुष्ट किया है। काल के अपरिमित विस्तार को भीतर समाहित कर जनजीवन की प्रगति को उसने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। पारंपरिक रंगमंच की अवधारणा मनुष्य की सामूहिक चेतना की सहज अभिव्यक्ति है। वह मनुष्य के सामाजिक अनुभवों का सर्जनात्मक रूपांतरण है। लोक मंगल की कामना उसका सारतत्व है। सामूहिकता उसकी सबसे बड़ी विशेषता और सामाजिक सहकार उसका अर्थपूर्ण संदेश है। वह सामूहिक रचनात्मकता का प्रतिफलन है। पारंपरिक रंगमंच मुख्यतः सामूहिक रचनात्मकता का प्रतिफलन है। वस्तुतः वह समूह की, समूह के लिए, समूह द्वारा अभिव्यक्त सर्जनात्मकता है।

इस प्रकार लोक मनोरंजन और धार्मिकता से संबंधित अनेक पारंपरिक शैलियाँ भारत में प्रचलित हैं। प्रादेशिक भिन्नता के कारण इनमें थोड़ा बहुत अंतर अवश्य दृष्टिगत होता है। भाषा-भेद और प्रादेशिक भेद के बावजूद भी भारतीय पारंपरिक शैलियों में सामान्य रूप से दिखाई पड़नेवाली कुछ विशेषताएँ भी हैं। यह निश्चित है कि पारंपरिक शैलियों के गीत, नाद, वाद्य, भाषा, कथा आदि उपकरणों पर क्षेत्रीय रंग चढ़ा रहता है। फिर भी उनमें एक समान सूत्र भी निहित होता है। यही कारण है कि भारत में उत्तर से लेकर दक्षिण तक विभिन्न क्षेत्रों के पारंपरिक शैलियों में भिन्नताओं के बावजूद एक देश-व्यापी एकात्मकता का सूत्र विद्यमान है। यह इस बात का प्रमाण है कि हमारी परंपरा, संस्कृति और नाट्य संवेदना की मूल चेतना एक ही है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2.6 अभ्यास प्रश्न

1. पारंपरिक रंगमंच से क्या अभिप्राय है? तर्कपूर्ण उत्तर दें।
2. पारंपरिक रंगमंच की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करें।
3. प्रमुख पारंपरिक नाट्य रूपों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. नौटंकी नाम कैसे पड़ा? उसकी कथा बताइये।
5. नौटंकी का सबसे आकर्षक तत्त्व क्या है?
6. नौटंकी की प्रस्तुति शैली की विशेषताएँ बतलाइये।
7. नौटंकी नाट्यरूप का इतिहास बतलाइये।
8. बिदेसिया नाट्यरूप के विभिन्न और सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व क्या हैं?
9. बिदेसिया का उद्भव कैसे हुआ?
10. बिदेसिया में भिखारी ठाकुर का क्या स्थान है?
11. बिदेसिया नाट्य शैली के नये प्रयोगों के बारे में बताइये।
12. ''ख्याल की परंपरा बड़ी समृद्ध और संपन्न रही है'' टिप्पणी कीजिए।
13. ख्याल की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
14. ख्याल की विभिन्न शैलियों का विवरण दीजिए।
15. माच के मंच निर्माण का विवरण देते हुए उसकी विशेषताएँ बताइये।
16. माच के उद्भव और विकास के संबंध में बताइए।
17. माच के पूर्वरंग का विवरण दीजिए।

2.7 संदर्भ-ग्रंथ

1. *'भारत के लोकनाट्य'*-डॉ. शिव कुमार मधुर
2. *'भारतीय लोकनाट्य'*- विशिष्टनारायण त्रिपाठी
3. *Grounds for play*: Kathreyen Hausen Nautanki Theatre
4. *'लोकरंग'* : महेन्द्र मानावत।
5. *'Rural Drama'*: Jagdish Candra Mathur
6. *'लोकसाहित्य विमर्श'*–श्याम परमार।
7. *'Traditional Indian Threatre'*: kapila Vatsyayan
8. *'माच'*: शिवकुमार मधुर

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

इकाई-2

पाठ-1

प्रस्तुति-प्रक्रिया : आलेख का चयन, अभिनेताओं का चयन, दृश्य परिकल्पना (ध्वनि-संगीत-नृत्य प्रकाश)

डॉ. माधुरी सुबोध
रीडर, हिन्दी विभाग,
लेडी श्रीराम कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
सम्पादक- प्रो. सुधीर शर्मा

रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 नाट्य कृति का चुनाव
1.2.1 बोध प्रश्न
1.3 नाट्य कृति का अर्थ निर्धारण, पाठ और मानसिक तैयारी
1.3.1 नाटक का अध्ययन
1.3.2 उसकी प्रस्तुति-प्रक्रिया के विषय में चिंतन
1.3.3 बोध प्रश्न
1.4 पात्रों का चयन
1.4.1 बोध प्रश्न
1.5 पूर्वाभ्यास या रिहर्सल
1.5.1 पूर्वाभ्यास का पहला चरण
1.5.2 पूर्वाभ्यास का दूसरा चरण
1.5.3 तीसरा चरण–प्रस्तुति की समग्रता की ओर
1.5.4 चौथा चरण–प्रदर्शनपूर्व अभ्यास और प्रदर्शन
1.5.5 बोध प्रश्न

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1.6 सारांश

1.7 अभ्यास प्रश्न

1.8 संदर्भ-ग्रंथ

1.0 अधिगम का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ नाटक की प्रस्तुति-प्रक्रिया पर केंद्रित है। इस पाठ के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित करने में सक्षम होंगे:

- प्रस्तुति-प्रक्रिया के अर्थ तथा महत्त्व को समझ सकेंगे।
- प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न चरणों तथा स्तरों को जान सकेंगे।
- नाटक की प्रस्तुति-प्रक्रिया की जटिलताओं को समझ सकेंगे।
- नाटक को रंगमंच पर सफल बनाने में प्रस्तुति-प्रक्रिया के योगदान को स्पष्ट कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

नाटक चूँकि मूलतः दृश्य-काव्य है। प्रस्तुति-प्रक्रिया केवल नाटककार के लिए ही नहीं, बल्कि रंग-निर्देशक, दर्शक, अभिनेता आदि के लिए एक ऐसा तत्त्व है, जिसका आधार लेकर ये सभी अंग नाट्यकृति को सार्थकता प्रदान करते हैं। नाटक का समग्ररूप से आस्वादन मंचीय प्रस्तुतीकरण के बाद ही संभव होता है। नाट्यालेख को रंगमंच तक पहुँचाने की प्रक्रिया रचनात्मक भी है, जटिल तथा दिलचस्प भी है। इस प्रस्तुति-प्रक्रिया में निर्देशक, अभिनेता और प्रेक्षक सहकर्मी की निर्णायक भूमिका निभाते हैं। प्रस्तुति-प्रक्रिया के माध्यम से ही नाटक ज्यादा जीवंत और सृजनात्मक बनता है।

1.2 नाट्य कृति का चुनाव

नाट्यकृति का चुनाव रंग प्रस्तुति-प्रक्रिया का पहला और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसको केंद्रित कर संपूर्ण रंग-प्रक्रिया का ताना-बाना तैयार किया जाता है। इसके अभिप्राय का संप्रेषण करना संपूर्ण प्रस्तुति का लक्ष्य भी होता है। नाट्यकृति का चुनाव गंभीरतापूर्वक किया जाना चाहिए। इसका तात्पर्य ऐसे नाटक से है जो (*i*) नाटक खेलने वालों को सृजन का संतोष दे। (*ii*) दर्शकों को बाँध सके और उनकी कलात्मक रुचि को संतुष्टि दे। (*iii*) साथ ही कलात्मकता के स्तर को भी बनाये रख सके। कमजोर और रंगकला की दृष्टि से ढीली कृति परिश्रम और आशा के अनुकूल परिणाम न दे सकेगी। श्रेष्ठ और कलात्मक नाट्यकृति का चुनाव करते समय प्रस्तुतिकर्त्ताओं को अपने आर्थिक और मानव संसाधनों का भी आकलन कर लेना चाहिए। जिस

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

दर्शक समुदाय के सम्मुख नाटक को प्रस्तुत करना है–उसकी रुचि, संस्कार और सामर्थ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इन सब बातों को ध्यान में रखकर किया गया नाट्यकृति का चुनाव निश्चय ही प्रस्तुति-प्रक्रिया को सही दिशा दे सकेगा।

यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि आप नाटक क्यों करना चाहते हैं? क्या मात्र दर्शक का मनोरंजन करना आपका लक्ष्य है अथवा कोई सार्थक अनुभूति या संदेश संप्रेषित करना चाहते हैं। अथवा कोई नया प्रयोग करना आपका लक्ष्य है। यह ध्यान रहे कि दर्शकों को बाँधने की समार्थ्य तो कृति में मनोरंजन से ही संभव है। परंतु कोई गहन अनुभूति या संदेश संप्रेषण करनी हो तो प्रस्तुति सार्थक सिद्ध होगी। मुखर संदेश न होकर जीवन को देखने की दृष्टि दे सके–इस संभावना को खोज लेना चाहिए तभी मनोनुकूल प्रभाव उत्पन्न हो सकेगा। यदि रंगकर्मियों का लक्ष्य 'नया प्रयोग' करना है तो भी दर्शकों की रुचि, रुझान, सामर्थ्य और संस्कारों का तो ध्यान रखना पड़ेगा। आप किसी भी प्रकार का प्रयोग कर रहे हों–आलेख, अभिनेता, स्थल या शैली की दृष्टि से दर्शकों की रुचि होने पर ही प्रयोग सफल हो सकेगा अथवा रंगकर्मियों में वह सामर्थ्य, कौशल और आत्मविश्वास होना चाहिए कि उनका प्रयोग दर्शकों की मन:स्थिति को अपने अनुकूल बना लेगा। गंभीरतापूर्वक विचार-मंथन के बाद ही इस दिशा में कदम बढ़ाना उचित होगा।

यह भी देखना चाहिए कि आप किस तरह का नाटक खेलना चाहते हैं। उसकी प्रस्तुति की सामर्थ्य आप में है?

(*i*) यदि आप कथानक प्रधान कृति उठा रहे हैं तो देखिए कि उसमें कथानक या घटनाक्रम में, नाट्यस्थितियों में कार्यकारण संबंध और तारतम्य है? गतिशीलता और संगठित संरचना है? शिथिलता तो नहीं? यदि है तो उसे दूर करने की संभावनाएँ नाट्यकृति में उपस्थिति हैं? क्या उसका 'पेस' बनाये रखने की सामर्थ्य आप में है?

(*ii*) यदि चरित्र प्रधान कृति का खेलने का विचार है तो देखना होगा कि चरित्र के विकास की दिशा सहज और उसके प्रस्थान बिंदुओं में कार्यकारण संबंध है? अथवा नये रूप और भंगिमा में दिखाई देते हैं। चरित्र प्रधान नाटक में अभिनेताओं की सामर्थ्य को भी तोलना होगा। क्या उपलब्ध अभिनेता या अभिनेत्रियों में से कोई उन पात्रों का अभिनय करने की सामर्थ्य रखता है। क्या उन भूमिकाओं के अनुकूल अभिनेताओं को जुटाना संभव है? यदि उत्तर हाँ में हो तभी ऐसा नाटक उठाना चाहिए। अन्यथा कलात्मक संतोष की जगह निराशा ही हाथ आयेगी और महीनों किया गया श्रम व्यर्थ हो जायेगा।

(*iii*) यदि प्रहसन खेलना चाहें अथवा हास्य प्रधान नाटक उठायें तो गंभीरता से विचार करना और भी आवश्यक हो जाता है। गंभीर नाटक की तुलना में हास्यपूर्ण अभिनय करना अधिक कठिन और चुनौतीपूर्ण है। इसके लिए समझदार और समर्थ अभिनेताओं की आवश्यकता है। अन्यथा प्रस्तुति हास्यप्रधान की जगह 'हास्यास्पद' हो जायेगी अथवा दर्शक ऊब जायेंगे। आलेख की स्थितियों, घटनाओं,

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पात्रों और संवादों में हास्य उत्पन्न करने की संभावना और उन्हें व्यंजित कर सकने की 'विशिष्ट' भंगिमाएँ भी स्पष्ट होनी चाहिए।

किसी नाट्यकृति का चुनाव करते समय उपर्युक्त अनेक बातों का ध्यान रखना अपेक्षित है। उसके कथानक और नाट्यस्थितियों में व्यंजना, चरित्र-संयोजन में प्रकृति, स्तर में मनोरमता और विलक्षणता, स्थितियों और व्यक्तित्वों की टकराहट, समानता और विरोधी रंगों और रेखाओं की स्पष्ट ध्वनियाँ, सामाजिक-राजनैतिक संदर्भों का विरोधाभास, संवादों में सहजता, प्रभविष्णुता, टकराहट, खनक और अभिनय की संभावनाएँ, स्फूर्ति, संक्षिप्त, निरर्थक पुनर्रावृत्ति से बचाव जितना अधिक होगा–उतना ही नाटककार की रंगदृष्टि को खोजकर रंगकर्मियों के लिए रंगसृष्टि करना रम्य अनुभव बन सकेगा।

(*iv*) जिन नाट्यकृतियों में नाटककार काव्यात्मक स्थितियों और चरित्रों तथा काव्यात्मक भाषा और संवादों का प्रयोग करता है, वहाँ विशेष संवेदनशीलता और सावधानी की आवश्यकता है। जीवंत अनुभव बनाने के लिए नाटक का जीवन के निकट रहना आवश्यक है। किंतु काव्यात्मक संवेदना की तलाश के बिना ऐसे नाटकों के साथ न्याय करना संभव न होगा। स्थितियों की काव्यात्मकता के साथ-साथ चरित्रों और संवादों की आंतरिक काव्यात्मक लय की तलाश भी आवश्यक है। कृति में निहित उन सूत्रों की तलाश अनिवार्य है जो इस काव्यात्मकता का उद्घाटन कर सकें। इसके लिए अभिनेता और निर्देशक दोनों में ही अनुभवों की सघनता, रंगकौशल की परिपक्वता और परिष्कार आवश्यक है।

(*v*) सब स्थानों पर रंगकर्मियों को समान साधन और सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पातीं। न दर्शक वर्ग में रुचि साम्य एक जैसा रहता है। कम से कम साधनों में नाट्यार्थ को अभिनय द्वारा संप्रेषित कर सकने की सामर्थ्य की आवश्यक है। उसी का परीक्षण प्राथमिक है।

(*vi*) प्राचीन कृतियों की प्रासंगिकता और विदेशी कृतियों की हमारे जीवन-संदर्भों में सार्थकता की परख भी आवश्यक है अन्यथा दर्शकों का तादात्म्य होना संभव नहीं। दर्शक किन प्रसंगों के कारण उन्हें देखना पसंद करेंगे और क्यों? यह स्पष्ट होने के बाद ही कोई नाटक उठाना सुरक्षित होगा।

1.2.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए-
   - (क) नाट्य कृति के चुनाव से क्या आशय है?
   - (ख) नाट्य कृति के चुनाव के समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   - (क) प्रस्तुति-प्रक्रिया के माध्यम से ही नाटक ज्यादा जीवंत और सृजनात्मक बनता है।
   - (ख) नाट्यालेख को रंगमंच तक पहुँचाने की प्रक्रिया रचनात्मक भी है, जटिल तथा दिलचस्प भी है।
   - (ग) नाट्य कृति के चुनाव के लिए गंभीर होने की आवश्यकता नहीं है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(घ) जिन नाट्यकृतियों में नाटककार काव्यात्मक स्थितियों का प्रयोग करता है, वहाँ विशेष संवेदनशीलता और सावधानी की आवश्यकता है।

3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -

(क) नाट्यकृति का चुनाव बहुत ही.....कार्य है। (साधारण/गंभीर)

(ख) नाट्यकृति का चुनाव ही.....को सही दिशा प्रदान करता है। (प्रस्तुति-प्रक्रिया/पाठ)

(ग) नाट्य कृति.....को बांध सके और उनकी कलात्मक रुचि को संतुष्टि दे। (दर्शकों/पात्रों)

1.3 नाट्य कृति का अर्थ निर्धारण, पाठ और मानसिक तैयारी

नाटककार रंगपरिकल्पना का जन्मदाता है। उसे प्रस्तुति-प्रक्रिया में शामिल करना लाभप्रद रहेगा। यदि नाटककार किसी नाट्यदल का सदस्य है अथवा स्थानीय व्यक्ति है तो इसकी संभावना अधिक रहती है। हमारे देश में धीरे-धीरे नाटककार और निर्देशक के बीच सहयोग की स्थिति बनती जा रही है। लक्ष्मीनारायण लाल अपने नाटकों की प्रस्तुतियों में भाग लेते थे। भीष्म साहनी का अपना नाट्य दल है–'प्रयोग'। 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' की प्रस्तुति-प्रक्रिया में मोहन राकेश की भागीदार सर्वविदित है। नाटक की पहली बार होने वाली प्रस्तुति में प्रकाश से पूर्व यदि नाटककार शामिल हो सके तो मंचन-प्रक्रिया में निर्देशक के सहयोग से आलेख का जो व्यावहारिक और प्रभावशाली स्वरूप बन रहा है–लेखक अपने लेखन में उसे स्थान दे सकता है। यह समर्थ निर्देशक के सहयोग से ही संभव हो पायेगा। नाटककार की सहमति और उसकी रंगपरिकल्पना को समझने में सहायक बनने के लिए यदि लेखक को आमंत्रित किया जाता है तो वह सहर्ष तैयार हो जायेगा। किंतु बार-बार परिवर्तन की माँग से नाटककार और निर्देशक के बीच अनावश्यक तनाव ही बढ़ता है। अपनी प्रस्तुति में निर्देशक आवश्यक परिवर्तन के लिए स्वतंत्र है, किंतु उसमें लेखक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं। प्रकाशित आलेख में नाटककार से छेड़छाड़ करवाना आवश्यक नहीं और न ही उचित भी।

जब नाटककार और निर्देशक एक ही व्यक्ति हो तो अधिक कठिनाई नहीं होती। दूसरी स्थिति में लेखक से पत्राचार, दूरभाष अथवा भेंट करके किसी लेख में व्यक्त धारणा के बल पर निर्देशक 'अपने विवेक और समझ' से प्रस्तुति-संबंधी निर्णय स्वयं ले सकता है। अपने सहकर्मियों से विचार-विमर्श करना भी लाभदायक हो सकता है। अंतिम निर्णय उसी का है। फिर भी कृति के साथ मनमानी करने की स्वच्छंदता उसे नहीं मिल जाती। उसे 'प्रयोग' की स्वतंत्रता है, वह प्रयोग जो नाटक को प्रभावशाली बनाये, नाट्यार्थ को सघनता से संप्रेषित कर सके।

प्रदर्शन से पूर्व नाटककार की स्वीकृति लेना और जहाँ उचित लगे उसे रॉयल्टी देना निर्देशक का नैतिक दायित्व है। 'दर्शक' के रूप में भी जीवित नाटककार को अवश्य आमंत्रित करना चाहिए। आलोचक-दर्शक के रूप में उसकी प्रतिक्रिया महत्त्वपूर्ण तो होगी ही, उसकी उपस्थिति से रंगकर्मियों का उत्साह भी बढ़ेगा।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तुति-प्रक्रिया के चरण हैं–

1.3.1 नाटक का अध्ययन

हर साहित्यिक विधा की तरह अपने प्राथमिक चरण में नाटक पढ़ना भी आत्मनंद का कारण होता है। किंतु यह प्रस्थान बिंदु है, अंतिम चरण नहीं। फिर उसके कथानक, चरित्र, संवाद और अभिप्राय को समझने के लिए बार-बार पढ़ना पड़ता है और तब तक पढ़ना आवश्यक है, जब तक अर्थ बिल्कुल स्पष्ट न हो जाए। सहानुभूति एवं कल्पनाशीलता से पढ़कर उसके प्रारूप को समझने की चेष्टा करनी चाहिए। दर्शकों से उसका तादात्म्य कैसा होगा? उसकी प्रकृति व्यंग्यात्मक है, अथवा हास्यमूलक अथवा त्रासद? कथास्थितियों, चरित्रों और उनके परिवेश के माध्यम से नाटककार के मंतव्य तक पहुँचने की चेष्टा करनी होगी। नाटककार की दृष्टि से नाटक पढ़ने की चेष्टा करनी होगी। केंद्रीय कथ्य को समझ कर हम नाटककार के अनुभव जगत से स्वयं को जोड़ते हैं। शब्दों पर ये धुंधलका हटने लगे, उनके आर-पार दिखाई देने लगे, कुछ-कुछ दृश्य बिंब बनने आरंभ हो जाते हैं। इसे नाट्यानुभूति की प्रक्रिया का आरंभ मानना चाहिए। नाटक पढ़ना तभी सार्थक है जब पढ़ते-पढ़ते हम उसे अपने मानस में 'घटित' होते देख सकें। यह 'नाटक' को समझने और 'दृश्यकाव्य' की अनुभूति के लिए आवश्यक है। क्योंकि नाटक 'पढ़ने' से अधिक देखने की 'वस्तु' है–पाठक का 'नाटक' को देखना ही नाटक को सही रूप से पढ़ना है। नाटककार की कल्पना का जीवंत मानसबिंब ग्रहण करना भी कम आनंददायी नहीं है।

नाटक को संवेदनापूर्ण ढंग से पढ़ना और उसके प्रारूप-प्रकृति को समझने की चेष्टा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अपने रंग संस्कारों की सहायता से नाटककार की रंगपरिकल्पना को ग्रहण करना, 'दृश्यकाव्य' को 'चाक्षुष बिंबों' में ग्रहण करना ही नाटक पढ़ने की सही प्रक्रिया है। इस बिंदु पर पहुँचने के बाद ही नाटक की आलोचना करना अथवा प्रस्तुति की ओर कदम बढ़ाना सही होगा। कृति के भीतर के 'द्वंद्व' और 'काव्य' की तलाश तो जारी रहती ही है।

1.3.2 उसकी प्रस्तुति-प्रक्रिया के विषय में चिंतन

पाठ और चिंतन का यह क्रम निरंतर चलता रहता है। सीमित और उपलब्ध साधनों का कैसे सार्थक उपयोग किया जाय कि नाटककार के मंतव्य का संप्रेषण हो सके। प्रस्तुति की शैली, रूप और अभिनेताओं का क्रियाकलाप कुछ-कुछ हलचलें लेता दिखाई देने लगता है। सोते-जागते अदृश्य-दृश्य आपके साथ रहने लगता है। आप पात्रों की वेशभूषा, गतिविधियों, मंच उपकरणों और समूहन इत्यादि के विषय में नोट लेने लगते हैं।

नाट्य प्रस्तुति के लिए मानसिक तैयारी आरंभ हो जाती है। पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान, उठने-बैठने, गतिसंचालन स्पष्ट होने लगते हैं। विभिन्न पात्रों और दृश्यों के बीच कार्य-करण संबंध बनाने और उनके प्रस्तुतीकरण के लिए युक्तियाँ स्पष्ट सूझने लगती हैं।

इसके बाद विभिन्न भूमिकाओं के लिए पात्रों का चयन किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार परिवर्तन

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

की संभावना भी बनी रहती है। अभिनेताओं से भूमिका अदल-बदल कर पढ़वाई जा सकती है। जहाँ संतोष हो भूमिकाओं के विषय में निर्णय लिया भी जा सकता है।

1.3.3 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए -
   - (क) रंग परिकल्पना का जन्मदाता कौन होता है?
   - (ख) भीष्म साहनी के नाट्य दल का क्या नाम है?
   - (ग) 'लहरों के राजहंस' किसकी नाट्यकृति है?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   - (क) नाटककार और निर्देशक एक ही व्यक्ति हो तो प्रस्तुति में अधिक कठिनाई होती है। (सही/गलत)
   - (ख) निर्देशक को कृति के साथ मनमानी करने की स्वच्छंदता नहीं होती है। (सही/गलत)
   - (ग) लक्ष्मीनारायण लाल अपने नाटकों की प्रस्तुति में भाग लेते थे। (सही/गलत)
   - (घ) नाटककार की कल्पना का जीवंत मानस बिंब ग्रहण करना भी कम आनंदमयी नहीं है। (सही/गलत)
3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -
   - (क) अपनी प्रस्तुति में.....आवश्यक परिवर्तन के लिए स्वतंत्र है। (निर्देशक/अभिनेता)
   - (ख) .....और चिंतन का क्रम निरंतर चलता रहता है। (पाठ/आलेख)
   - (ग) विभिन्न भूमिकाओं के लिए.....का चयन किया जाता है। (निर्देशक/पात्रों)

1.4 पात्रों का चयन

नाटक का चयन, अर्थनिर्धारण और निर्देशक की मानसिक भूमि पर तैयारी के बाद अभिनेता को भूमिका में चुने जाने की प्रक्रिया आरंभ होती है। किसी भी भूमिका में अभिनेता का चुनाव महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसी पर नाटक की नियति निर्धारित होती है। यदि निर्देशक का यह चुनाव सही है तो चरित्र उभर कर आयेगा, अन्यथा नाटक को ही ले डूबेगा। उसका सारा समय अभिनेताओं के प्रशिक्षण और अभ्यास में ही निकल जायेगा। निर्देशन की बारीकियों की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिलेगा। नाटककार के मंतव्य को उभारना ही कठिन हो जाता है, उसके परे के अर्थ को खोज पाना तो असंभव ही है। पात्रों के चुनाव पर नाटक की सफलता-असफलता काफी सीमा तक निर्भर करती है। व्यावसायिक रंगमंच पर आर्थिक सुविधाओं के कारण निर्देशक को अभिनेता सहज की उपलब्ध हो जाते हैं पर अन्यत्र ऐसा संभव नहीं। हर रंगमंडल या नाट्यदल को आर्थिक सीमाओं में रहकर काम करना पड़ता है। निर्देशक भी परिस्थितियों के अनुसार अपनी प्रस्तुति-योजना अथवा कार्य-प्रणाली में लचीलापन लाकर काम करता है। शौकिया रंगमंच पर उसे कई समझौते करने पड़ते हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अभिनेताओं का चुनाव पात्रों की अंतर्बाह्य प्रकृति पर निर्भर करता है। पात्र की मुखाकृति, डीलडौल, इत्यादि बाह्य प्रकृति के अंतर्गत आते हैं। उसकी जो मुखाकृति उसके स्वभाव की किसी खास विशेषताओं को रेखांकित करे–अंत:प्रकृति के अंतर्गत ही समझना चाहिए। चरित्र की अंत:प्रकृति की अभिव्यक्ति में कौन अभिनेता अधिक समर्थ है अथवा अभिनेता की बाह्य रूपाकृति चरित्र की विश्वसनीयता में बाधक तो नहीं, यह अवश्य देख लेना चाहिए। अंतर्बाह्य प्रकृति को दो टूक खंडों में विभाजित करना इतना संभव नहीं, फिर भी पात्र चयन में यह देख लेना चाहिए कि किस गुण का होना अधिक आवश्यक है? उसकी किसी कमी को क्या वेषभूषा या रूपसज्जा अथवा किसी अन्य प्रकार से दूर करना संभव होगा? जहाँ अभिनेता की प्रकृतिगत अथवा शारीरिक अक्षमता को किसी प्रकार पूरा करना संभव न हो, और रूपाकृति के कारण पात्र को विश्वसनीय बनाना कठिन हो, निर्देशक के लिए उचित यही होगा कि उसे भूमिका में न उतारे। सामाजिक-राजनीतिक कथानक वाले नाटकों में अभिनय क्षमता कई बार शारीरिक रूपाकृति अथवा असमर्थता पर ध्यान नहीं जाने देती किंतु ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों में चरित्रों की विशेष छवि जनमानस में विद्यमान रहती है। उसका अतिक्रमण नाटक के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

भरत के नाट्यशास्त्र में भूमिकाओं के अनुसार पात्र चयन के तीन प्रकार माने गये हैं–अनुरूपा, विरूपा और रूपानुसारिणी। चरित्र की अंतर्बाह्य प्रकृति के अनुसार अभिनेता का चयन अनुरूप भूमिका, चरित्र की अंतर्बाह्य प्रकृति के विरुद्ध अभिनेता का चयन अथवा पुरुष द्वारा स्त्री तथा स्त्री द्वारा पुरुष की भूमिका–विरुपा के अंतर्गत आयेगी। तीसरी श्रेणी में–अभिनेता में कुछ विशेषताएँ पात्र की अंतर्बाह्य प्रकृति के अनुकूल हों और कुछ उसके प्रतिकूल, तो वह भूमिका रूपानुसारिणी कहलाती है। जब भूमिकाओं के अनुकूल अभिनेता न मिलें तब निर्देशक को विरूपा और रूपानुसारिणी पात्र योजना का सहारा लेना पड़ता है।

अभिनेता की देहदृष्टि, मुखमुद्रा, बोलचाल और चालढाल के साथ-साथ दूसरे अभिनेताओं के साथ उसका व्यवहार, परस्पर तालमेल, उत्साह, सीखने की ललक, अनुशासन इत्यादि पर भी ध्यान देना पड़ता है। विभिन्न अभिनेताओं से विभिन्न भूमिकाएँ पढ़वाना भी उचित होगा, उनके विषय में चिंतन करने के लिए कहा जाय। फिर पात्र के विषय में उनकी समझ और अवधारणा का मूल्यांकन किया जाय। सबके बीच चर्चा और पाठ हो, तभी भूमिका देने का निर्णय लिया जाय। पात्रों का चुनाव यदि सही होगा, तो समझ लीजिए आधा नाटक सध गया।

भूमिका के लिए पात्रों का चुनाव बिना किसी दबाव अथवा पक्षपात के किया जाए। कोई भय, प्रलोभन अथवा निजी संबंधों को बीच में न आने दें। पात्रों का चुनाव पूर्णरूप से निर्देशक के अधिकार में होना चाहिए। निर्णय दृढ़ता और निर्ममतापूर्वक केवल नाटक का हित सोचकर ही लिया जाय। कलात्मक प्रतिबद्धता ही सर्वोपरि हो। निर्देशक की स्वतंत्रता और संप्रभुता की परीक्षा यहीं से हो जाती है।

1.4.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए-

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(क) भरतमुनि के अनुसार पात्रों का चयन कितने प्रकार से होता है?

(ख) पात्रों के चुनाव से क्या आशय है?

2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -

(क) भूमिका के लिए पात्रों का चुनाव बिना किसी दबाव अथवा पक्षपात के नहीं किया जाना चाहिए। (सही/गलत)

(ख) कलात्मक प्रतिबद्धता ही सर्वोपरि है। (सही/गलत)

(ग) अभिनेताओं का चुनाव पात्रों की अन्तर्बाह्य प्रकृति पर निर्भर करता है। (सही/गलत)

3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -

(क) किसी भी भूमिका में.....का चुनाव महत्त्वपूर्ण कार्य है। (अभिनेता/संगीत)

(ख) .....के चुनाव पर नाटक की सफलता-असफलता काफी सीमा तक निर्भर करती है। (वेशभूषा/पात्रों)

(ग) भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में भूमिकाओं के अनुसार पात्र चयन के.....प्रकार बताएँ हैं। (तीन/पाँच)

1.5 पूर्वाभ्यास या रिहर्सल

नाटकलेखन यदि रंगकला का प्रारंभ बिंदु है तो मंच-प्रस्तुति उसकी समग्रता और उत्कर्ष। पूर्वाभ्यास या रिहर्सल इन दोनों के बीच का सेतु है। नाटक का विकास रिहर्सल-प्रक्रिया में ही होता है। इस प्रक्रिया का हर पल महत्त्वपूर्ण है। नाटककार की अमूर्त कल्पना यथार्थ की ठोस भूमि पर कदम रखती दिखाई देती है। उसे जीवन धारण करता हुआ हम देख सकते हैं। किसी भी नाटक का रिहर्सल एक से तीन महीने का औसत समय ले लेता है। 5 से 6 घंटा प्रतिदिन के हिसाब से समय लगाया जाय तभी यह संपूर्ण प्रक्रिया सहज रूप से संपन्न हो पाती है। यह प्रक्रिया आरंभ करने से पूर्व एक समय सारिणी बना ली जाती है–जिसका कठोरतापूर्वक पालन करना और अनुशासन बनाये रखना आवश्यक है। अभ्यास या रिहर्सल की संपूर्ण प्रक्रिया में निर्देशक सभी रंगकर्मियों के लिए 'आलोचक, सहृदयमित्र और गुरु' सभी कुछ रहता है। अनुशासनहीनता और समर्पण की कमी देखकर वह 'तानाशाह' भी बन जाता है। किंतु वह नाट्य-प्रस्तुति के हित में ही अपने सब अधिकारों का प्रयोग करता है। अतः उसकी बात सभी रंगकर्मियों को चुपचाप स्वीकार कर लेनी चाहिए। यही रंगमंच का अनुशासन है।

पूर्वाभ्यास के समय में संपादन, परिचर्चा, भूमिका-निर्धारण, प्रस्तुति और निर्माण से जुड़े काम, किसी चरित्र-विशेष को मांजने में अलग से दिया गया समय, चायपानी और मध्यांतर पर लगाया गया समय शामिल नहीं है। कब, किस दृश्य पर कितना समय लगाना है, कब ब्लाकिंग आरंभ करनी है, कब रनथ्रू आरंभ करने हैं, पार्श्वकर्म कब और किसे सौंपना है–यह निर्देशक का विवेक तय करता है। संपूर्ण प्रस्तुति का दायित्व

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उसी के कंधों पर है अत: वह किन व्यक्तियों से काम करवाना चाहता है–वही तय करे। रंगमंडली का कार्य परस्पर तालमेल से संपन्न होने से प्रस्तुति सुंदर और प्रखर होगी।

1.5.1 पूर्वाभ्यास का पहला चरण

पूर्वाभ्यास की पद्धति स्वयं निर्देशक तय करे। वह स्वयं सारी कृति का पाठ अभिनेताओं को सुनाना चाहता है अथवा अभिनेताओं द्वारा उसका वाचन करवाना चाहता है। इस दृष्टि से पूर्वाभ्यास का पहला दिन महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक अभिनेता को नाटक की एक-एक प्रति मिल जानी चाहिए। निर्देशक नाटक-पाठ का आरंभ करने से पहले उसका स्वरूप, पात्रों के चरित्र, नाटककार के अभिप्राय तथा अपनी प्रस्तुति में संप्रेषित होने वाले अर्थ के विषय में अभिनेताओं को बताये। यह नाट्यस्थितियों को स्पष्ट करने के लिए महत्त्वपूर्ण है, तभी अपने पात्रों के साथ अभिनेताओं का तादात्म्य स्थापित हो सकेगा। अधिक उचित होगा कि नाटक अभिनेताओं द्वारा पढ़ा जाय, अन्यथा अर्थ स्पष्ट करने और अभिनेताओं के 'टाइप्ड' बनने का अंदेशा रहेगा।

(*i*) आलेख अभिनेताओं द्वारा नाटक पढ़ा जायेगा तो संवादों से परिचय, अर्थ का स्पष्टीकरण, उच्चारण दोष ठीक किया जा सकेगा। वाचन में प्रवाह और निरंतरता आने के बाद कथ्य और उसके संप्रेषित करने के बारे में समझाना सरल होगा।

(*ii*) नाटक के पात्रों और उनके चरित्रों के बारे में विचार-विमर्श होता रहे। उस चरित्र को अभिनेता कैसे प्रस्तुत करे–इस संदर्भ में 'होमवर्क' दिया जाना चाहिए। इससे पात्रों के साथ तादात्म्य अधिक सरल होगा।

(*iii*) संवादों के वाचन में पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया समझाना और उसे प्रदर्शित करना भी संभव होगा।

तीन-चार दिन से एक सप्ताह का समय इस प्रतिक्रिया को दिया जा सकता है। यदि उचित लगे तो भूमिकाओं में परिवर्तन भी किया जा सकता है।

(*i*) इसके बाद दृश्य बाँधना अथवा दृश्य संयोजन आरंभ किया जाय। अभिनेताओं को दृश्य के भूगोल से परिचित कराया जाय। प्रवेश-प्रस्थान के द्वार कहाँ हैं? किस द्वार से कौन-कौन प्रवेश करेगा, पात्रों का प्रस्थान कहाँ से होगा। कमरे अथवा अंतर्गत दृश्यों की स्थिति, दीवार, खिड़कियाँ, फर्नीचर की स्थितियाँ समझाई जाएँ। नाटक की कथा के परिवेश का परिचय भी इस संदर्भ में स्पष्ट होगा। अभिनेता अपने-अपने 'स्क्रिप्ट' में आवश्यक बातों को नोट कर लें।

(*ii*) प्रथम अंक का दृश्य-संयोजन और पात्रों की गतियों का संयोजन किया जाए। कब कहाँ खड़े होकर, किसे किससे कौन-सा संवाद कहना है, कहाँ तक जाना है, दूसरे पात्र की उपस्थिति कहाँ है, कहाँ किस के साथ बैठना है, रंग उपकरणों का प्रयोग कहाँ और कैसे करना है, दूसरे के संवाद पर कैसी प्रतिक्रिया और कहाँ बैठकर अथवा खड़े होकर देनी है? जितनी जल्दी यह कार्य संपन्न होगा– अपने पात्रों और गतियों में अभिनेता उतनी जल्दी सहज हो पायेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(*iii*) इसके बाद दूसरे अंक का दृश्य संयोजन और गति संचालन (Blocking and movements) निर्धारित करना चाहिए। इसी प्रकार पूरे नाटक की गति संचालन (Blocking and movements) जितनी जल्दी संपन्न होगी, अभिनेता अपने पात्रों और परिवेश के प्रति उतना ही शीघ्र सहज हो पायेंगे।

किस दृश्य के संयोजन और गतिसंयोजन में कितना समय लगेगा, यह नाटक की जटिलता, अभिनेताओं के कौशल पर भी निर्भर करता है। किंतु पूरे नाटक के संतुलित अभ्यास का कार्यक्रम पहले तय हो जाना चाहिए। पूर्वार्द्ध में आवश्यकता से अधिक समय और उत्तरार्द्ध को हड़बड़ी में संयोजित करने का प्रयास नाटकीय प्रभाव में क्षतिकारक होगा।

इस संपूर्ण प्रक्रिया में दो से तीन सप्ताह का समय लगना चाहिए–उससे अधिक नहीं। क्योंकि इस संपूर्ण प्रक्रिया के बाद ही चरित्रों का विकास, नाट्यानुभूति की सघनता के लिए नाना युक्तियों का प्रयोग करने का अवसर निर्देशक को प्राप्त होगा। उसकी कला के संयोजन और विकास के लिए उसे पर्याप्त समय मिलना चाहिए।

1.5.2 पूर्वाभ्यास का दूसरा चरण

(*i*) अभिनेता जितनी जल्दी स्क्रिप्ट अपने हाथ में लेना बंद करके अपने संवाद बोलना आरंभ करेगा–चरित्र का विकास उतना ही संभव होगा। (*ii*) तभी वह मंचोपकरणों का सही उपयोग करना भी सीख पायेगा। इस दृष्टि से एक दिन छोड़कर प्रत्येक अंक का अभ्यास किया जाय। (*iii*) निर्देशक यह भी देखे कि अभिनेता अपने पात्र के चरित्र की बारीकियों को समझ पा रहा है या नहीं। तभी वह निर्देशक की व्याख्या के अनुकूल चरित्र को अपने अभिनय में उतार पायेगा। एकाग्रता और समझदारी से जीवन के अपने अनुभवों के बल पर यह कार्य संपन्न करने की चेष्टा करें। निर्देशक उसे अपनी प्रतिभा का उपयोग करने के लिए प्रेरित करे। तीसरे-चौथे सप्ताह तक यह स्थिति आ जानी चाहिए कि अभिनेता अपनी गतियों, संवादों एवं कार्य-व्यापार के प्रति सहज हो जाय। संवादों के उतार-चढ़ाव, घात-प्रतिघात, लहजा, ध्वनि प्रेक्षप के साथ-साथ संवादों का अभिप्रेत अर्थ और परस्पर संबंध भी स्पष्ट होने लगता है। हर अभिनेता की सामर्थ्य के अनुसार ही निर्देश देना उचित है। कभी-कभी उसे बिना टोके भी रिहर्सल चलने देनी चाहिए। अभिनेता को अलग से उसकी भूमिका समझायी जा सकती है। कमजोर अभिनेताओं को अलग से अभ्यास करवाया जा सकता है। नाट्यार्थ को संप्रेषित करने के लिए विभिन्न अभिनय युक्तियों के प्रयोग की संभावनाओं पर विचार किया जा सकता है।

1.5.3 तीसरा चरण–प्रस्तुति की समग्रता की ओर

नाटक धीरे-धीरे उभरने लगता है, संवाद, गतियों, कार्य-व्यापार सबके प्रति अभिनेता सहज होने लगते हैं। कई अंश सजीव लगने लगते हैं। यहीं से निर्देशक की वास्तविक कला मुखरित होने लगती है। एक नया विलक्षण जगत उभरने लगता है। नाटक की दुनिया सामने दिखती है, तब निर्देशक को तय करना है कि नाटक की प्रस्तुति को कैसे बेहतर बनाया जा सकता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

आरंभ के पंद्रह मिनटों की शुरूआत आक्रामक होनी चाहिए। निर्देशक देखे कि नाटक आरंभ होने के 15 मिनटों में दर्शक साँस रोक कर बैठा रहे, नाटक के पात्रों, घटनाओं और कार्य-व्यापार के विषय में उसकी जिज्ञासा बढ़ती रहे। कौन, क्या और कैसे यह सब घटित हो रहा है, यह उत्कंठा जगाना निर्देशक का लक्ष्य होना चाहिए। यदि ऐसा संभव न हुआ तो प्रस्तुति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। यदि नाटक में उत्सुकता जगाने वाली स्थिति का निर्माण नाटककार ने नहीं किया, तो निर्देशक को अपनी कल्पना से उस स्थिति का निर्माण करना होगा। ताकि दर्शक नाटक के सम्मोहन को अनुभव कर सके। एक्शन, स्पीड, खामोशी या कुछ और ढूंढकर ऐसी स्थितियाँ निर्मित की जाएँ। अभिनेता और निर्देशक आरंभ में अतिरिक्त सजगता से और बाद में सहज होकर तय करें कि अभिनेता संवाद के किस अंश पर कहाँ तक जाये क्या भंगिमा ले। उसके संवाद के किस अंश पर दूसरे अभिनेता को क्या मानसिक तैयारी करनी है। क्या संकेत अथवा 'क्यू' लेकर रिहर्सल सुचारू रूप से चल सकेगी।

संवाद भावाभिव्यंजना अथवा चरित्र-छाया की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, उनपर अतिरिक्त ध्यान दिया जाना चाहिए। उनके वाचिक अभिनय और दृश्य बिंब सार्थक हों। रुक-रुककर बोले जाने वाले संवाद, दूसरे को टोकने या बात काटने वाले संवादों पर अतिरिक्त ध्यान दिया जाना चाहिए। कई बार पात्र दो स्तरों पर क्रियाशील या दो व्यक्तियों से एक साथ बात कर रहा हो दो भिन्न शैलियाँ संवादों में स्पष्ट हों। रटे हुए ढंग से संवाद न बोले जाएं अथवा तेजी से बात को कहकर समाप्त करने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण करना जरूरी है। हर पात्र के संवाद कहने की अलग शैली उभरे, वह दूसरे की शैली का अनुकरण न करने लगे, निर्देशक इस ओर सतर्क रहे। शब्दों के उच्चारण, स्पष्टता और प्रक्षेपण पर विशेष ध्यान दिया जाए। बिना देखे नाटक की रिहर्सल को सुनकर इसका सही अनुमान हो सकता है। स्क्रिप्ट पर निशान लगाते जायें, बाद में अभिनेताओं को उचित निर्देश देकर उक्त त्रुटियों को दूर किया जा सकता है।

संवादों का सही प्रयोग जितना आवश्यक है, विरामों और चुप्पियों का भी महत्त्व कम नहीं है। संवादों से कहीं सघन प्रभाव नाटकीय मौन अथवा दो संवादों के बीच अंतराल का पड़ना स्वाभाविक है। बहुत सी बातें संवादों में अभिव्यक्त करना कठिन है, मौन के द्वारा उनका संप्रेषण संभव हो जाता है। दो संवादों अथवा शब्दों के बीच समय का कितना अंतराल होगा, निर्देशकीय विवेक पर निर्भर करता है।

रंगसामग्री का उपयोग सहज रूप से हो सके, उनके उपयोग से नाटकीय अभिप्राय को दृश्य बिंबों के रूप में संप्रेषित किया जा सके। गिरना, नींद से जगना, मर कर गिरना, घायल को उठाकर ले जाना जैसी क्रियाओं का विशेष अभ्यास अपेक्षित है। अभिनेताओं की अनावश्यक क्रियाओं और आदतों पर भी रोक लगनी चाहिए। कमजोर पात्रों पर विशेष ध्यान देकर उभारना चाहिए। उनकी गतियों, भंगिमाओं को केंद्र में रखने की चेष्टा उचित होगी। कई बार अच्छा अभिनेता भी किसी भूमिका के साथ उचित न्याय नहीं कर पाता। ऐसा अतिरिक्त सावधानी अथवा पात्र को लेकर होने वाले तनाव के कारण हो सकता है। निर्देशक उसे भूमिका के साथ सहज बनाने के विषय में सोच सकता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

दृश्य की मन:स्थिति के अनुकूल गति और क्रिया व्यापारों का संयोजन किया जाना चाहिए। दु:ख का दृश्य प्रबल और तीव्र तथा आनंद का शिथिल नहीं होना चाहिए। विडंबना दिखाना लक्ष्य हो तभी ऐसा करना उचित होगा। कई बार आरंभिक दृश्यों के संयोजन पर तो खूब ध्यान दिया जाता है किंतु बाद के दृश्य शिथिल हो जाते हैं। नाटक का ग्राफ गिरने न पाए, इस ओर विशेष ध्यान दिया जाए। टुकड़ों-टुकड़ों में अभ्यास करने से सहजता आना प्राय: संभव नहीं होता। इसके लिए पूर्णाभ्यास या runthrough आवश्यक है। निर्देशक निरंतरता में बिना टोके अभ्यास होने दे। त्रुटियों को नोट करके बाद में अभिनेताओं को कमियों के बारे में सचेत करना आवश्यक है। चर्मोत्कर्ष प्रभावशाली हो इस ओर ध्यान देना चाहिए।

अभिनेता अनावश्यक रूप से हरकतें या हलचल न करें। साथ ही संवाद बोलने के बाद चरित्र के खोल के बाहर न आए। सही ढंग से प्रतिक्रिया व्यक्त करना और मंच उपस्थिति का सही तरीका समझाया जाए।

नाटक के कथ्य के संप्रेषण के प्रति भी निर्देशक को सतर्क रहना चाहिए। निर्देशकीय व्याख्या भी कथा रेखा के भीतर ही कुछ 'अतिरिक्त युक्तियाँ' डालकर संप्रेषित की जा सकती हैं।

हँसी के दृश्यों में दर्शकों की प्रतिक्रिया और अभिनेताओं के संवादों में तालमेल होना आवश्यक है। क्रिया और प्रतिक्रिया दोनों का अभ्यास ऐसे किया जाए कि संवाद स्पष्ट और ठीक से सुनाई पड़ें। दर्शक दीर्घा में कुछ साथियों को बैठाकर इसका अभ्यास किया जा सकता है। मंच पर होने वाले क्रिया-व्यापार को प्रेक्षागृह में बैठा हर व्यक्ति सुन सके और देख सके, इसे 'चैक' कर लेना चाहिए। अन्यथा दर्शक हिलते-डुलते रहेंगे।

नाटक के अभिनय पर लगने वाले पूर्ण समय का, प्रत्येक अंक और दृश्य के बीच का समय निर्देशक को जाँच लेना चाहिए। प्रदर्शन के मध्य यदि किसी पात्र की रूपसज्जा अथवा वेशभूषा में परिवर्तन करना हो तो उसके लिए कितना समय लगेगा अथवा कितना समय मिलता है, यह देखकर दृश्य में आवश्यक परिवर्तन करना चाहिए, 'आधे अधूरे' में एक ही अभिनेता कुछ वेषभूषा और रूप सज्जा के परिवर्तन से दूसरा पात्र बन जाता है। 'लहरों के राजहंस' में नंद का सुंदरी के कक्ष से प्रस्थान और वापिस लौटने पर मुण्डित केश रूप में मंच पर उपस्थित होना समय के अंतराल और निर्देशकीय सामंजस्य की अपेक्षा करता है।

'कर्टेनकाल' के समय अभिनेताओं को कब, कहाँ से, कैसे मंच पर उपस्थिति होना है, इसका भी अभ्यास करना चाहिए। अभिनेता 'व्यक्ति' के रूप में दर्शकों के सम्मुख उपस्थित होकर उनका अभिवादन करता है। यह पहले तय करना इसलिए आवश्यक है जिससे किसी प्रकार की अव्यवस्था न हो और भगदड़ न मचे। अभिनेताओं का परिचय सही प्रकार से करवाया जा सके।

1.5.4 चौथा चरण–प्रदर्शनपूर्व अभ्यास और प्रदर्शन

प्रदर्शन पूर्व अभ्यास के लिए निर्देशक अलग से समय निकाल कर विशेषज्ञों के साथ वेशभूषा, रूपसज्जा, रंगदीपन और दृश्यबंध के डिजाइन के बारे में विमर्श कर सकता है। प्रदर्शन से एक सप्ताह पूर्व यदि दृश्यबंध खड़ा कर दिया जाय तो अभिनेताओं को इसके सही उपयोग का अभ्यास हो जायेगा। साथ ही रंगदीपन के

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

विशेष स्थलों की जानकारी के द्वारा चलने-फिरने और गतिसंचालन का भी अनुमान हो सकेगा। प्रदर्शन पूर्व अभ्यास 3-4 दिन तो अवश्य हो। अन्यथा एक दिन तो होना ही चाहिए। एक दिन पूर्व प्रकाश-व्यवस्था का भी प्रबंध हो जाय। ताकि रंगों का मिश्रण, घनत्व और प्रभाव का सही अनुमान हो सके। आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन भी किया जा सके।

1.5.5 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए -
   - (क) पूर्वाभ्यास की पद्धति कौन निर्धारित करता है?
   - (ख) पूर्वाभ्यास से क्या आशय है?
   - (ग) प्रदर्शन अभ्यास कम से कम कितने होने चाहिए?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   - (क) कर्टेनकाल के समय अभिनेताओं को कब, कहाँ से, कैसे मंच पर उपस्थित होना है, इसका भी अभ्यास करना चाहिए। (सही/गलत)
   - (ख) आरंभ के पन्द्रह मिनटों की शुरुआत आक्रमक नहीं होनी चाहिए। (सही/गलत)
   - (ग) रंगमंडली का कार्य परस्पर तालमेल से संपन्न होने से प्रस्तुति सुंदर और प्रखर होगी। (सही/गलत)
   - (घ) अभिनेताओं द्वारा नाटक का आलेख पढ़ा जाएगा तो संवादों से परिचय, अर्थ का स्पष्टीकरण, उच्चारण दोष ठीक किया जा सकेगा। (सही/गलत)
3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -
   - (क) प्रदर्शन के समय.....का कार्य समाप्त हो जाता है। (पात्रों/निर्देशक)
   - (ख) .....की बात सभी को स्वीकार कर लेनी चाहिए। (निर्देशक/कलाकार)
   - (ग) किसी भी नाटक का.....एक से तीन महीने का औसत समय ले लेता है। (रिहर्सल/लेखन)

1.6 सारांश

इस प्रकार नाटक की प्रस्तुति-प्रक्रिया नाट्य लेखन के पश्चात् नाटक को मंच पर प्रस्तुत करने तक की एक जटिल प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया विभिन्न स्तरों तथा चरणों में संभव है। प्रस्तुति-प्रक्रिया में सर्वप्रथम नाट्यकृति का चयन आवश्यक है। नाटक के अध्ययन के बाद मानसिक रूप से तैयार होना पड़ता है उसकी प्रस्तुति के लिए। नाटक को रंगमंच पर सफल होना कठिन परिश्रम का फल है। प्रस्तुति-प्रक्रिया में नाटक के चुनाव के बाद, पात्रों का चुनाव, वेशभूषा, प्रकाश और ध्वनि व्यस्था आदि को सम्मिलित किया जाता है। इसके पश्चात् रंगमंच पर प्रस्तुत होने से पहले नाटक का अनगिनत बार पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) किया जाता है। इस प्रस्तुति-प्रक्रिया में एक-एक चरण नाटक के मंचन को सफल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। किसी स्तर पर कमजोरी नाटक को असफल बना सकती है। मोटे तौर पर नाटक के दो पक्ष हैं – रचना कार्य और प्रदर्शन कर्म। वस्तुतः रंगमंच प्रस्तुति-प्रक्रिया का

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

दृश्यात्मक संप्रेषण है और नाटक के 'पाठ्य' से पैदा होने वाली प्रेक्षक की स्थाई भावदशा (नाट्यानुभूति) से आगे प्रस्तुति के स्तर पर नाटक जो अंतिम प्रभाव उत्पन्न करता है उसे रंगानुभूति कहा जा सकता है। रंगानुभूति से अभिप्राय मंचीय प्रक्रिया एवं प्रयासों तथा रंग- संसाधनों के जरिय रचनात्मक विचारों का प्रेक्षकीय चिंतन- संवेदन में ढल जाना है।

1.7 अभ्यास प्रश्न

1. नाटक की प्रस्तुति-प्रक्रिया एक जटिल तथा गंभीर कार्य है। तर्कपूर्ण उत्तर दें।
2. प्रस्तुति-प्रक्रिया में नाट्य कृति का चुनाव करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
3. प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का विवेचन करें।
4. नाटक के पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) से क्या आशय है?
5. प्रस्तुति-प्रक्रिया ही नाटक को रंगमंच पर सफल बनाती है। सिद्ध कीजिए।

1.8 संदर्भ-ग्रंथ

1. *रंगदर्शन* - नेमिचन्द्र जैन
2. *रंगमंच का सौंदर्य शास्त्र* - देवेन्द्र राज अंकुर
3. *दर्शन-प्रदर्शन* - देवेन्द्र राज अंकुर
4. *रंगमंच : नया परिदृश्य* - रीतारानी पालीवाल
5. *रंग प्रक्रिया के विविध आयाम* - (सं.) डॉ. प्रेम सिंह और सुषमा आर्य
6. *नाट्य प्रस्तुति : एक परिचय* - रमेश राजहंस

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पाठ-2
प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न घटक

डॉ. माधुरी सुबोध
रीडर, हिन्दी विभाग,
लेडी श्रीराम कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
सम्पादक- प्रो. सुधीर कुमार शर्मा

रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 नाटक और रंगमंच
2.2.1 बोध प्रश्न
2.3 नाटक और अभिनेता
2.3.1 बोध प्रश्न
2.4 अभिनेता और दर्शक
2.4.1 बोध प्रश्न
2.5 निर्देशक
2.6 प्रस्तुति योजना
2.6.1 बोध प्रश्न
2.7 सारांश
2.8 अभ्यास प्रश्न
2.9 संदर्भ-ग्रंथ

2.0 अधिगम का उद्देश्य

यह पाठ प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न घटकों पर आधारित है। प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न घटक रंगमंच की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इस पाठ के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित करने में सक्षम होंगे :

- नाटक की प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न तत्त्वों से परिचित हो सकेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- नाटक तथा रंगमंच के अंतर्संबंधों से परिचित हो सकेंगे।
- नाटक को रंगमंच पर सफल बनाने में निर्देशक की भूमिका को जान सकेंगे।
- अभिनय के महत्त्व तथा उसके तत्त्वों का विवेचन कर सकेंगे।
- अभिनेता तथा दर्शक की भूमिका से परिचित हो सकेंगे।

2.1 प्रस्ताना

नाटक साहित्य की एक प्रमुख विधा है। नाटक केवल काव्य ही नहीं, दृश्य काव्य भी है और इसलिए उसका सीधा संबंध अभिनय और रंगमंच से है। नाटक एक ऐसी विधा है, जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति रंगमंच पर ही संभव है। प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न घटक ही वह माध्यम है जिनसे नाटक रंगमंच पर पूर्ण होता है। प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न घटकों की परिकल्पना के बिना नाटक की सार्थकता, प्रासंगिकता, कलात्मकता और प्राणवत्ता आज के समय में संभव नहीं है। नाटककार द्वारा शब्दों में लिखे नाट्यलेख को जब तक रंगकर्मी और दर्शक मिलकर एक सांस्कृतिक-सामाजिक क्रियाकलाप के रूप में मंच पर जीवंत नहीं करते वह अपनी संपूर्णता को प्राप्त नहीं होता। आलेख की यह संपूर्णता एवं सार्थकता उसकी प्रस्तुति से जुड़ी है, इसलिए नाट्यलेख एवं प्रस्तुति के बीच एक अभिन्न संबंध होता है जिसे प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न घटक मजबूती प्रदान करते हैं। भारतीय नाट्य परंपरा में इन प्रस्तुति-प्रक्रिया के घटकों के बिना रंगमंच की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

2.2 नाटक और रंगमंच

व्यापक अर्थ में जीवन को रंगमंच कहा जाता है। यह विश्व उसी स्रष्टा की 'लीला' यानि खेल है। 'एकोऽहम् बहुस्याम्' की इच्छा ही इस 'लीला' का कारण है। हर व्यक्ति का जीवन एक नाटक है–इस विश्वमंच पर वह अपनी भूमिका जी रहा है, कुशलतापूर्वक निभाने की चेष्टा कर रहा है। यहाँ सूत्रधार, रचनाकार एक ही अदृश्य शक्ति है। जब हम नाट्य, रंगमंच या थियेटर की बात करते हैं तो उसका दर्शन भी विश्वकार की 'लीला' से भिन्न नहीं है। वह वस्तुतः इसी विश्व अथवा जीवन की अनुकृति ही है।

रंगमंच जीवन की यथावत् जड़ अनुकृति नहीं है, पुनर्सजन है। अन्य कोई कला इतनी गहराई और सघनता से मानव-जीवन से नहीं जुड़ी जितना रंगमंच। वास्तविकता और अवास्तविकता, स्वप्न और यथार्थ, विश्वास और अविश्वास के बीच के विचित्र संबंध के कारण ही नाट्यानुभूति का जन्म होता है। नाट्य समाज में व्याप्त झूठ, पाखंड और क्षुद्रता को मिटाता है। उन मुखौटों को गिराता है जिन्हें मनुष्य विभिन्न कारणों से पहने रहता है। देखा जाय तो वह मनुष्य को मनुष्य बनाता है। इसीलिए अपने विरेचन के गुण के कारण रंगमंच मनःचिकित्सा तथा उपचार करने वाले सांधन के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है।

कॉलरिज ने 'नाट्यानुभूति' को 'अविश्वास का स्वैच्छिक स्थगन' (willing suspention of disbelief) कहा। डॉ. सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार ''जब किसी प्रसिद्ध या कल्पित कथा के आधार पर कोई नाटककार–किसी रूप की रचना कर देता है और उसमें निर्दिष्ट संवाद तथा क्रिया के अनुसार- जब किसी

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

नाट्य प्रयोक्ता द्वारा सिखाये जाने पर या स्वयं नट अपनी वाणी, शारीरिक, चेष्टा, भावभंगी; मुखमुद्रा और वेशभूषा के द्वारा नाटक में आये हुए संवाद और रंग-निर्देश के भावों को दर्शकों को परिज्ञान और उनकी अनुभूति कराते हैं तब अभिनेताओं के उस संपूर्ण समन्वित व्यापार को अभिनय कहते हैं।'' (*भारतीय और पाश्चात्य रंगमंच*, पृ. 241) अतः कह सकते हैं कि **नाटककार, नाट्य प्रयोक्ता** (निर्देशक या प्रस्तोता, नट) और **दर्शक** नाट्याभिनय या रंगमंच के अनिवार्य घटक हैं।

हमारे यहाँ रंग-प्रक्रिया का बीज **नाटक** में निहित है। अभिनेताओं द्वारा उसी का प्रतिफलन रंगमंच पर किया जाता है। नाटक को दृश्य काव्य कहा गया जिसका तात्पर्य है कि काव्य और नाटक अलग नहीं। जो साहित्य तो निश्चित रूप से है ही किंतु दृश्य होना उसकी विशिष्टता है। दृश्य यानि मंच-प्रस्तुति। प्रस्तुति की संभावना और सामर्थ्य उसका अनिवार्य और मूलधर्म है। दृश्य संभावना जितनी अधिक होगी उतनी ही श्रेष्ठ नाट्यकृति मानी जायेगी। अरस्तू के समय से चली आ रही परंपरा में नाटक और काव्य को अलग समझा जाता रहा। **इसीलिए ब्रेख्त ने 'ड्रामेटिक थियेटर' का विरोध करते हुए अपने रंगमंच को 'एपिक थियेटर' या 'महाकाव्यात्मक रंगमंच' कहना अधिक पंसद किया। क्योंकि प्राचीन भारतीय परंपरा की तरह उसमें कविता का पाठ, कथा का बखान या नैरेशन का तत्त्व उपस्थित था।** साहित्य के उत्कृष्ट तत्त्व की रक्षा रंगमंच का दायित्व है, उसके बिना उसे प्रतिष्ठा और जीवन नहीं मिल सकता।

नाटककार ही 'बीज' प्रदाता है। अन्य काव्यविधाओं अथवा साहित्य विधाओं से नाटक इसी दृष्टि से विशिष्ट है कि उसकी रचना में ही रंग तत्त्व या खेले जाने का तत्त्व निहित है। नाटककार अपनी रचना पढ़े जाने या मुद्रण के लिए नहीं बल्कि मंचन के लिए करता है। उसकी रंगदृष्टि ही किसी शब्दबद्ध रचना को नाटक बनाती है। मंच पर 'दृश्य' होने अथवा क्रियात्मक होने में ही नाटक की सार्थकता है। **अतः रंग तत्त्व नाटक की संरचना का आधारभूत तत्त्व है। वह अभिनेता और दर्शकों–दोनों को दृष्टि में रखकर लिखा जाता है। यह नाटककार की रंगदृष्टि है। इस रंगदृष्टि के पीछे रंगचिंतन की निरंतरता, सृजन की इच्छा और अभिव्यक्ति सभी घुले-मिले हैं।** वह जीवन की समझ और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य प्रत्येक शब्द में भरता है। नाटककार ही अपने आलेख को जीवन व्यवहार में अभिव्यक्त कर सकने की संभावनाओं से पूर्ण बनाता है।

रंगप्रस्तुति का बीज है–'आलेख', जो लिखित रूप में पाठ्य तो है ही। पढ़ते हुए उसका 'दृश्य' प्रक्षेप पाठक/दर्शक के मानस पर होता है। अभिनेता, निर्देशक और रंगकर्मी 'पाठक' बनकर ही उसमें निहित संकेतों और संभावनाओं को तलाशते हैं। सब अपने लिए 'दिक्' (Space) की तलाश करते हैं। 'आलेख' में जो शब्दों में कहा गया, संवादों में कहा गया–उससे महत्त्वपूर्ण 'उपपाठ' में जो ध्वनित है–उसकी तलाश आवश्यक हो जाती है। इसीलिए 'मौन' भी मुखरित हो उठता है। उपपाठ (between the lines) और मौन (silence) संवादों और नाटक के 'पाठ' में तलाशने पड़ते हैं। इस प्रक्रिया का आरंभ रंगकर्मी पहले 'एकांत' में और फिर समूह के साथ मिलकर करता है। इसी प्रक्रिया में निर्जीव और जड़ प्रतीत होने वाले शब्द जीवंत

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

होने लगते हैं। नाटककार के शब्द-संकेत पहले मानस प्रतिबिंब और फिर सूक्ष्म से स्थूल रूप धारण करते दिखाई देते हैं।

एक ही नाटक की प्रस्तुति निर्देशक, अभिनेता और रंगोपकरणों के बदलने से भिन्न दिखाई देती है। रंगकर्मियों की क्षमता और गुणवत्ता के अनुसार उसकी व्याख्या भी बदल जाती है। एक प्रस्तुति का हर प्रदर्शन दूसरे से भिन्न हो जाता है। जो इस बात का प्रमाण है कि एक नाट्यकृति में अपार रंग संभावनाएँ हैं। सामूहिक चिंतन और सृजन-प्रक्रिया के परिणामस्वरूप नित नूतन सौंदर्य सृष्टि होती है। हर प्रदर्शन निराला, अनेक व्याख्याओं और संभावनाओं से संपन्न होता है।

नाट्यकला वस्तुतः प्रस्तुतिकला है। व्यापक संप्रेषण और रसास्वादन के लिए इसमें गीत, संगीत, नृत्य, चित्रकला, स्थापत्य कला का योग लिया जाता है। किंतु ये सब कलाएँ रंगमंच पर अपनी स्वतंत्र सत्ता में व्यक्त नहीं होती बल्कि 'नाट्य' का ही अंग बनकर उपस्थित होती हैं–जो सौंदर्यानुभूति के रूप में ही होती हैं। सभी रंगकर्मी नाटककार के निहित आशय को दृश्यत्व देने में अपनी कलाओं की आहुति देते हैं और 'दृश्यकाव्यत्व' प्रदान करते है। दृश्य भी और काव्य भी। इसीलिए रंगकला को 'चाक्षुषयज्ञ' भी कहा गया है। **नाट्यकृति के 'शब्द' में निहित स्थितियों और कार्यों को मंच पर जीवन प्रदान करने की कला ही वस्तुतः नाट्यकला या रंगसृष्टि कहलाती है।**

इस दृष्टि से नाटककार के 'शब्द' रंग-संप्रेषण की नींव हैं। अभिनेता अपनी रंगसृष्टि में उसी को आधार बनाता है। रंगमंच पर साहित्य अथवा शब्द की प्रतिष्ठा से ही उत्कृष्ट रंगसृष्टि संभव है। नाटककार के 'शब्द' के साथ ईमानदारी से ही रंगमंच प्रतिष्ठा पा सकता है। उसके साथ बेईमानी, अतिचार और अनाचार श्रेष्ठ रंगसृष्टि नहीं कर पाएगा।

रंगमंच एक प्रयोगशाला है। जिसपर हर क्षण नित नूतन प्रयोग ही रंगकर्मी की सत्य के संधान की कभी समाप्त न होने वाली साधना है। वस्तुतः नाटक 'प्रयोग' के लिए ही लिखा जाता है। प्रयोग–'एक्सपेरिमेंट' और प्रस्तुति दोनों दृष्टियों से। 'प्रस्तुति' प्रक्रिया का परिणाम मंच-प्रस्तुति है। और यह प्रक्रिया स्वयं में प्रयोगधर्मी है। प्रस्तुति-प्रक्रिया, नाट्य-प्रयोग अथवा रंग-सुष्टि के मुख्य अवयव हैं– नाटककार, अभिनेता/निर्देशक तथा दर्शक। पहला रंगसृष्टि का बीज प्रदाता है। उसी की रंगदृष्टि की खोज रंगकर्मियों को नूतन सृष्टि के लिए प्रेरित करती है। दूसरा–(अभिनेता और निर्देशक) रंगदृष्टि के माध्यम हैं। निर्देशक नाटककार की रंगदृष्टि को खोजकर नूतन सृष्टि करने का उपक्रम करता है और अभिनेता नाटककार के शब्दों को धारण करके निर्देशकीय कल्पना को मूर्त करने का माध्यम बनता है। नाटककार और रंगकर्मियों का यह संपूर्ण आयोजन दर्शकोन्मुख होता है। दर्शक के बिना न तो नाटक के लेखन और न ही प्रस्तुति की कोई सार्थकता है। वस्तुतः वह इस संपूर्ण प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। शब्द, अभिनय और दर्शक ये तीन घटक ही रंगसृष्टि को संपूर्णता प्रदान करते हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2.2.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए-
   (क) प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न घटकों का क्या महत्त्व है?
   (ख) रंगमंच से क्या आशय है?
   (ग) कॉलरिज ने नाट्यानुभूति को क्या कहा है?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   (क) हमारे यहाँ रंग-प्रक्रिया के बीज नाटक में निहित हैं। (सही/गलत)
   (ख) भारतीय नाट्य परंपरा में इन प्रस्तुति-प्रक्रिया के घटकों के बिना रंगमंच की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। (सही/गलत)
   (ग) नाटककार 'बीज' प्रदाता नहीं है। (सही/गलत)
   (घ) नाट्यकला वस्तुतः प्रस्तुतिकला है। (सही/गलत)
3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -
   (क) रंगमंच जीवन की यथावत् जड़ .....नहीं है। (अनुकृति/रंगप्रस्तुति)
   (ख) रंगमंच को एक .....कहा गया है। (प्रयोगशाला/वस्तु)
   (ग) रंगकला को .....यज्ञ कहा गया है। (चाक्षुष/वैदिक)

2.3 नाटक और अभिनेता

अभिनेता एक कलाकार अवश्य है किंतु दूसरी कलाओं की तरह अभिनेता की कला में उसका विचार स्वयं स्फूर्त नहीं होता। उसकी कला का आधार नाटक है। आलेख के रूप में, नाटक के शब्द के रूप में वह उसे पहले से तैयार मिलता है। नाटककार की सीमा जहाँ समाप्त होती है–वहाँ अभिनेता की सीमा का आरंभ बिंदु है। नाटक की कथा और विचार वह नाटककार से लेता है, यहीं तक नाटककार और अभिनेता का संबंध रहता है। शेष अभिनय-यात्रा उसे 'स्वयं के माध्यम यानी अपनी देह, मन, वाणी से ही करनी है। उसे कैसे निभाना है इसकी योजना निर्देशक तय करता है। निर्देशक के निर्देशन में स्वयं को अनुशासन में रखते हुए वह अपनी तैयारी करता है। उसे नाटककार के शब्द और निर्देशक के अंकुश के दोहरे अनुशासन के बीच स्वयं की भूमिका की तैयारी करनी होती है। इस दृष्टि से देखा जाए तो उसकी स्थिति सृजनशील कलाकार की अपेक्षा 'नाट्यस्थिति के व्याख्याकार' के रूप में अधिक दिखाई देती है।

आलेख-पाठ की प्रक्रिया में वह उस चरित्र की आयु, वेशभूषा, स्वभाव, उसके आर्थिक-सामाजिक परिवेश तथा चरित्र पर पड़ने वाले प्रभाव या प्रतिक्रिया के बिंदुओं की तलाश करता है। आदि से अंत तक उसके चारित्रिक विकास का ग्राफ, दूसरे चरित्रों के साथ उसके संबंधों का रूप निर्धारित करता है। चरित्र की आवाज, चाल-ढाल, उसकी क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ, हावभाव (जेस्चर, Posture etc.) निश्चित कर स्वयं के

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

व्यवहार को इनके अनुसार ढालने का मानसिक प्रारूप तैयार करता है। बाद में स्वयं को उसी के अनुसार ढालने का प्रयास करता है। निर्देशक जब गतिविधान से संबंधित कार्य की शुरूआत आरंभ करता है तो अभिनेता कई प्रकार से भूमिका में पैठने की तैयारी कर चुका है। अपने अध्ययन और पर्यवेक्षण का सूत्र हाथ में ले चुका है। निर्देशक का अनुशासन निरंतर उसके साथ है। शब्दों की ध्वनियों ने उसके मानस में जगह बनानी आरंभ कर दी है। यहीं से अभिनेता की दोहरी रंगप्रक्रिया आरंभ हो जाती है। व्याख्याकार तो वह है ही। किंतु कलाकार भी है। अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का योग देने के लिए भी वह व्याकुल है। प्रतिभा तो जन्मजात है ही, पर्यवेक्षण और अध्ययन से अर्जित जीवन-दृष्टि और अभ्यास उसके मार्गदर्शक हैं। किंतु प्रशिक्षण का भी अपना अलग महत्त्व है। अभिनय की बारीकियों और विभिन्न शैलियों के अर्जित ज्ञान तथा उनके प्रयोग तकनीक से वह अपने अभिनय को तराशता और मांजता है। अच्छे **अभिनेता का सबसे बड़ा गुरु स्वयं रंगमंच ही है। यहाँ रहकर वह जितना सीखता है–सीखे हुए की परीक्षा और प्रयोग करता है–उतना अन्यत्र नहीं।**

वस्तुतः रंगमंच वह प्रयोगशाला है जहाँ उसका 'अभिनेता' सही आकार और व्यक्तित्व ग्रहण करता है। (*i*) नाटककार के आलेख को सही परिप्रेक्ष्य में समझने, अनुभव करने, (*ii*) जीवन को जानने और अपने अनुभवों को सही संदर्भो में ग्रहण करने का, सूक्ष्म दृष्टि से पहचानने का अवसर उसे मिलता है। (*iii*) यहीं वह सीखता है कि कैसे नाटककार के भावों की रक्षा करते हुए–अपने कौशल और सीखी हुई तकनीक को उपकरण बनाकर 'जीवन के व्यवहार में अभिव्यक्त करने की क्षमता' अर्जित करनी है। वह सही-सही सीख पाता है कि उसे नाटककार का अनुकरण मात्र नहीं करना–व्याख्या भी करनी है। निर्देशक की परिकल्पना के अनुसार उसकी पुनर्सजना भी करनी है। किंतु नाटककार और निर्देशक की परिकल्पना से भिन्न अपने चरित्र की व्याख्या भी प्रस्तुत कर सकता है। शब्दों के खोल के भीतर जाकर अथवा संवादों की सतह के नीचे जाकर लेखक के निहित व्यंग्यार्थ को अधिक गहराई और जीवंतता के साथ उपस्थित कर सकता है। कभी-कभी उसकी एक सूक्ष्म भंगिमा उसके पात्र के चरित्र तथा दूसरों के साथ उसके संबंधों के संपूर्ण परिप्रेक्ष्य को बदल देते हैं। यही उसकी सृजनात्मकता की सबसे बड़ी उपलिब्ध है। अभिनय करते हुए वह व्यक्ति नहीं चरित्र बनकर स्वाभाविक और जीवंत व्यवहार करने लगे–तभी यह संभव हो सकता है। **नाट्यकला वस्तुतः अभिनेता की कला है। नाट्यकृति और अभिनय कला का ऐसा सम्मिश्रण हो जाता है कि मंच पर केवल अभिनेता ही दिखाई देता है। 'नाट्य' में शब्द और अभिनेता अभिन्न हो जाते हैं। अभिनेता ही नाट्यकृति का पाठ या वाचन करता है, अपनी आंगिक चेष्टाओं द्वारा कृति के अभिप्राय को प्रस्तुत करता है।**

स्थल, अभिनेता और दर्शक नाट्यकला की प्रत्यक्ष प्रतीति कराते हैं। कृति सूक्ष्म रूप में अभिनेता और दर्शक को एकसूत्र में बाँधे रखती है–स्थल दोनों को आधार देता है। अभिनेता स्थल का उपयोग अपनी कला

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

के प्रदर्शन के लिए और दर्शक उसके ग्रहण के लिए करता है। कृति के शब्द सूक्ष्म-अदृश्य रूप में और स्थल स्थूल-दृश्य रूप में अभिनेता और दर्शक को जोड़ने का काम करते हैं।

2.3.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए-
   (क) नाट्यकला की प्रत्यक्ष प्रतीति किसके माध्यम से होती है?
   (ख) अभिनेता की कला का क्या आधार है?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   (क) नाटककार की सीमा जहाँ समाप्त होती है - वहाँ अभिनेता की सीमा का आरंभ बिंदु है। (सही/गलत)
   (ख) रंगमंच के माध्यम से अभिनेता सही आकार और व्यक्तित्व ग्रहण करता है। (सही/गलत)
   (ग) अच्छे अभिनेता का सबसे बड़ा गुरु स्वयं रंगमंच ही है। (सही/गलत)
   (घ) नाट्यकला का अभिनेता से कोई संबंध नहीं होता है। (सही/गलत)

2.4 अभिनेता और दर्शक

नाटककार ने शब्दों को इस रूप में संजोया है कि अभिनेता के काम में वे सहयोगी हों। फिर भी बहुत कुछ छूट जाता है, अनकहा रह जाता है। उन छूटे हुए प्रसंगों और स्थितियों का पता लगाकर अभिनेता अपने मंच व्यवहार में सृजित करने की चेष्टा कराता है। उन्हें दृश्य रूप देना चाहता है। निर्देशक उसका दिशा निर्देशक बनता है।

संवादों में छिपे उन भावनात्मक क्षणों और प्रतिक्रियाओं को खोजकर अभिनय की भाषा में व्यक्त करना अभिनेता का दायित्व है। दो पंक्तियों के बीच जो अनकहा रहा है, दो संवादों के बीच जो छूट गया है, वह संप्रेषित हो सके। मौन भी मुखरित हो सके–यह बहुत गंभीर कला है। आप जब कुछ न कह रहे हों–दृश्य के अंग के रूप में भी दर्शकों की नजर आपको अनदेखा न करे, इसका भी उसे निरंतर अभ्यास करना है। किंतु दर्शकों का ध्यान खींचने के लिए ऐसा व्यवहार करना कि उनका ध्यान मुख्य प्रसंग से हट जाय उचित नहीं। नाट्य उपकरणों के व्यवहार में भी उसे सावधानी बतरनी होगी। वाक्संयम, वाणी उद्घात, गति संचालन (Movements), मुद्राएँ (Gesture) सभी सुनियोजित, सृजनात्मक और निर्देशकीय अनुशासन मानते हुए संपादित की जानी चाहिए। इस संदर्भ में वह सदा परंपरा का दास रहें–यह आवश्यक नहीं। पर रंगप्रस्तुति सार्थक और संतुलित बनी रहे, इसका ध्यान रखना आवश्यक है।

एक अच्छा और अनुभवी अभिनेता जानता है कि दर्शक 'नाटक' देखने आता है। वाणी और व्यवहार से वह नाटककार के शब्दों में छिपे, और शब्दों में अनभिव्यक्त रह गये अथवा शब्दों से परे जो आशय है–उसे दृश्यत्व प्रदान करने की चेष्टा करता है। नाट्यानुभूति को दर्शकों तक संप्रेषित करने का दायित्व उसी का है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भाव को उत्तेजित करने वाला अंश नाटक में ही निहित है, उसे पकड़कर 'हरकत' की भाषा में व्यक्त करना है। अभिनय में एक ओर सामान्य जीवन से अतिरिक्त 'हरकत' का घनत्व है, दूसरी ओर सामान्य जीवन से कम 'हरकतें' भी अपेक्षित हैं। अभिनय में कोई 'हरकत' निरर्थक नहीं होनी चाहिए–अन्यथा बोधगम्यता बाधित होगी। और नाट्यानुभूति संप्रेषित नहीं हो पायेगी। दर्शक की मानसिक और भावात्मक गतिशीलता को संयोजित करने में तथा नाट्यार्थ को संप्रेषित करने में ही अभिनय की सार्थकता है।

अभिनेता या नट रंग-प्रक्रिया का केंद्रीय और अनिवार्य घटक है। संपूर्ण आयोजन उसी को केंद्र में रखकर, उसी के द्वारा संपन्न होता है। रंगमंच का कोई अन्य तत्त्व न भी हो केवल **अभिनेता, स्थल** और **दर्शक** विशेष ही नाट्यानुभव के संप्रेषण के लिए पर्याप्त हैं और प्रस्तुति-प्रक्रिया के अनिवार्य तत्त्व कहे जा सकते हैं। पूर्वाभ्यास के दौरान दर्शक भले ही अनुपस्थित हो, पर अभिनेता उस अनुपस्थित दर्शक को ही संबोधित कर रहा है जिसे नाट्य प्रस्तुति में अनिवार्यतः उपस्थित रहना है।

अभिनेता अपनी भूमिका की तैयारी कई प्रकार से कर सकता है। पहली पद्धति में वह चरित्र को स्वयं पर बाहर से आरोपित कर अपने भीतर की ओर यात्रा आरंभ करता है। इसका कारण यह है कि भरत नाटक को 'लोकानुकीर्त्तन' या लोकवृत्ति का अनुकीर्तन कहकर भाव व्यंजना पर बल देते हैं। जबकि अरस्तू कला को 'जीवन का अनुकरण' कहकर यथार्थ अभिव्यक्ति पर बल देते हैं। यह यथार्थ– 'जैसा है वैसा' न होकर 'जैसा प्रतीत होता है–वैसा' प्रस्तुत किया जाता है।

अभिनेता की रचना-प्रक्रिया का दूसरा रूप है–वह अपनी भूमिका की तैयारी भीतर से करे। चरित्र की बाह्य रूपरेखाओं पर ध्यान न देकर उसके स्वभाव, व्यवहार और प्रतिक्रियाओं पर बल दे। भरत ने जिसे विसदृश्य भूमिका कहा है–उसी का अन्य रूप है–जिसका समर्थन बेख्त ने भी किया। अभिनेता की बाह्य रूपरेखा गौण और पात्र के आंतरिक गुणों की व्यंजना (प्रदर्शन) की जाती है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण पद्धति है–जो पूर्णतः भारतीय अभिनय पद्धति है। जिसे हमारी पारंपरिक शैलियों–कूडियाट्टम और यक्षगान में विशेष रूप से देखा जा सकता है। हमारी पारंपरिक शैलियों में पात्र की मुखसज्जा, वेशभूषा और अलंकरण पहले से निर्धारित हैं। कई बार तो वस्त्रों के रंग तक पूर्व निर्धारित होते हैं। उनकी सुरलिपि, नृत्य की गतियाँ भी पहले से निश्चित हैं। पर हर कलाकार को देखने-सुनने का अलग अनुभव होता है। वहाँ अभिनेता से अपने पात्र से निसंग और तटस्थ रहने की अपेक्षा की जाती है। दर्शकों से भी यह अपेक्षा रहती है कि वह देखते ही पात्र को तुरंत पहचान लें। वे अभिनेता की यथार्थगत पहचान की अपेक्षा यह देखने के लिए उत्सुक रहते हैं कि **''किसी अभिनेता ने उस पात्र को कितनी निजता, कितनी विशिष्टता और कितने नव्यतम रूप में प्रस्तुत किया''। इसीलिए दर्शक अभिनय के आंतरिक पक्ष को देखने के लिए उत्सुक रहते हैं।**

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अभिनय पद्धतियों की भिन्नता का आधार-दर्शकों की दृष्टि से ही है। अभिनेता के लिए वह उसका बाह्य यथार्थ ही है। उसकी तैयारी की प्रक्रिया सर्वत्र (चाहे वह यथार्थ शैली है, शैलीबद्ध अथवा पारंपरिक नाट्यों जैसी) भूमिका की आतंरिक तैयारी एक जैसी ही होगी। उसे भूमिका को 'विश्वसनीयता' प्रदान करने के लिए उतना ही परिश्रम करना पड़ता है, समान उपकरण जुटाने पड़ते हैं। विश्वसनीयता की जाँच पहले वह अपने अनुभव, रुचि और परीक्षण से स्वयं करता है, बाद में दर्शकों द्वारा उसकी परीक्षा होती है। यहीं 'परफार्मर' और 'एक्टर' (नट और अभिनेता) का अंतर स्पष्ट हो जाता है, जो दो रंग संस्कृतियों का अंतर भी है। पहला चरित्र की यथार्थ अभिव्यक्ति करता है उसका रूप कार्य-प्रधान है। नाटककार अथवा निर्देशक ने उसे जो कार्य दिया उसे दिखाता है–Performe करता है। दर्शकों के लिए भूमिका का प्रदर्शन करता है। उसकी कला में कौशल और प्रदर्शन की भावना प्रमुख रहती है। बाहरी रूप में तो परिवर्तन आता है, भीतर से वह 'व्यक्ति' ही रहता है। जबकि अभिनय में वह अभिनय करके दिखाता है। यथार्थ नहीं व्यंजना मुख्य है। चरित्र की यथार्थ अभिव्यक्ति और मंच पर वास्तविक की व्यंजना–'यथार्थ जैसा' लगना; दोनों में अंतर है। अभिनेता अपने अभिनय के द्वारा दर्शकों के लिए एक दूसरी दुनिया बनाता है और उसे इस दूसरे 'लोक' में ले जाता है। उसका अभिनय स्वयं के लिए और नाट्य-प्रस्तुति की अभिन्नता के लिए होता है। उसकी कला में सूक्ष्मता, आंतरिकता, कलात्मकता, सौंदर्यबोध और व्यंजना प्रमुख है। अभिनय व्यंजना में है। जो हो रहा है से अधिक जो व्यंग्य है। अभिनेता की पहचान उसकी भूमिका और उसकी विश्वसनीयता में है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में–**'एक्टिंग कार्य-प्रधान है', अभिनय संकेत और अभिनटन प्रधान है। इसमें तमाम मुद्राओं; संकेतों से पूर्ण अभिव्यक्तियाँ हैं।'** (*रंगभूमि : भारतीय नाट्य सौंदर्य*, पृ. 111)

अभिनेता द्वारा भूमिका निर्वाह की प्रक्रिया को निर्देशक-विचारक रिचर्डशेख्नर 'रेस्टोरेशन बिहेवियर' (Restoration – Behaviour) कहते हैं–''रेस्टोरेशन बिहेवियार का अर्थ है–एक व्यक्ति की तरह व्यवहार। यह व्यवहार उस समय दूसरे व्यक्ति के साथ तादात्म्य या अभेद अनुभव करते हुए भी हो सकता है या अपने-आप का तथा उस दूसरे व्यक्ति का अनुभव एक साथ बनाये रखते हुए भी। शेख़्नर दोनों स्थितियों से अलग अभिनेता के कर्म की व्याख्या–'दोहरी नकारात्मक स्थिति' के रूप में करते हैं, जहाँ वह अपने होने को भी नकारता है और पात्र को भी।'' (शेख़्नर – *परफार्मेटिव्ह सरकमस्टान्सेज – फ्राम अवॉगार्द टु रामलीला*, पृ. 44, 50, 108-9, 130, राधावल्लभ त्रिपाठी, द्वारा संपादित नाट्यशास्त्र विश्वकोश में उद्धृत)

भरत और स्तानिस्लाव्स्की दोनों के लिए अभिनयकर्म एक साधना है और अभिनेता एक योगी। ब्रेख्त ने इसी के विस्तार में अलगाव के सिद्धांत की चर्चा की। भारतीय नाट्य और एशियाई शैलियों के प्रभावस्वरूप यूरोपीय चिंतन में आये परिवर्तन का संकेत करना अनुचित न होगा।

भरत और स्तानिस्लाव्स्की दोनों ने ही अभिनेता की अंतर्दृष्टि पर जोर दिया। अभिनेता अपने आत्म या स्वत्व से नाटक के सत्य तक पहुँचता है। दोनों ही विसर्जन में अभिनेता के जीवन की सार्थकता देखते हैं। स्तानिस्लाव्स्की के विसर्जन का संबंध अभिनेता के आंतरिक जीवन से है–जिसकी अभिव्यक्ति उदात्तता, सौंदर्य

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

में होती है। भरत ने अभिनेता के भीतर की एकाग्रता को सत्त्व कहा है। सत्त्व ही सारे अभिनय का बीज है। चतुर्विध अभिनय में से–आंगिक, वाचिक और आहार्य अभिनेता की अभिव्यक्ति के बाह्य स्रोत हैं, सत्त्व उसके भीतर है। सत्त्व में प्रतिष्ठा के क्षण में वह भूमिका के आर पार देख सकता है। अपनी प्रतिभा और कल्पना के अंश से वह अपने चारों ओर एक रचनात्मक वृत्त तैयार करता है– स्वयं उसके भीतर स्थित रहता है। यही वृत्त या चरित्र का खोल उसे भीड़ में भी अकेले होने का अनुभव देता है। भरत ने परकाय प्रवेश के सिद्धांत द्वारा इससे समझाया है। "अभिनेता अपनी साधना, सूक्ष्मदृष्टि और एकाग्रता द्वारा अपने खुद के चोले के बाहर आ जाता है। और फिर दूसरे के चोले में जा सकता है। इस प्रक्रिया में असीम कष्ट तथा असीम आनंद दोनों को वह पाता है। अभिनेता के रूप में यह उसका मरण भी है और यही उसका नया जीवन भी।'' (राधावल्लभ त्रिपाठी, *नाट्यशास्त्र विश्वकोश*, पृ. 161)।

भरत ने नेपथ्य से रंगशीर्ष पर अभिनेता के प्रवेश के दो दरवाजे माने–दोनों द्वारों पर नियति और मृत्यु (देवता) का वास माना। जो इसका संकेत है कि मंच पर अभिनेता अपनी ही नियति का अतिक्रमण करके अपनी मौत से भी गुजरता है। अपने व्यक्ति की मृत्यु के बाद ही वह उस चरित्र को जीवंत कर पायेगा–जिसका वह अभिनय करने वाला है। ''अभिनेता जब रंगमंच पर अभिनय करता है तो वह मानो एक ऐसा जीव होता है, जो अपनी देह छोड़ कर दूसरे की देह में प्रवेश कर चुका है। (21-88-91) यह अभिनेता का परभावकरण है, जिसके लिए परकाय प्रवेश जैसी कठिन साधना करनी होती है।'' (*नाट्यशास्त्र विश्वकोश*, पृ. 27)। स्तानिस्लाव्सकी ने जिस आंतरिक यथार्थ की चर्चा की है वह भी 'अभिनेता का उत्सर्ग और विसर्जन द्वारा किसी और के चोले में पहुँचना' ही है।

ब्रेख्त ने भी अपने elination या अलगाव के सिद्धांत द्वारा इसी सत्य को अभिव्यक्त किया है। अभिनेता कभी तो रचना के स्तर पर मूलपात्र के साथ तादात्म्य करता है और कभी उससे अलग रहकर उसे अभिव्यक्त करता है।

भरत के **वेष, आच्छादन और परभावकरण**–इन तीन शास्त्रीय पदों के आधार पर सारी अभिनय प्रक्रिया को समझा जा सकता है।

वेष–केवल रूपसज्जा नहीं बल्कि भूमिका धारण करने में सहयोगी है। नाटक खेलने के संपूर्ण उपक्रम के लिए भी इस शब्द का प्रयोग पारंपरिक नाट्यों में देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त अभिनेता अपना मुखौटा स्वयं रचता है। अपने लिए एक दूसरा चेहरा, मुखौटा और खोल रचता है। कभी उसमें रहकर और कभी बाहर झाँककर परभावकरण करता है। ''वह अपने खुद के अन्य खोल में घुसने की सारी प्रक्रिया के प्रति साक्षी भी बना रहता है, साक्षी रहते हुए वह इसे नियंत्रित भी करता है।'' (*नाट्यशास्त्र विश्वकोश*, पृ. 29) ये मुखौटे ओढ़ने, लेप लगाने वाले अथवा अदृश्य भी हो सकते हैं।

पश्चिमी नाट्याचार्यों ने मुखमुद्रा (जेश्चर), शरीर-भंगी (पौश्चर), गति (गेट), वेग (स्पीड), वाणी (स्पीच)–अभिनय के इन पाँच अंगों की चर्चा की। यह कला नित्यप्रति के लोक-व्यवहार से ही सीखी जा

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सकती है। 'शब्द के अनूकूल अभिनय और अभिनय के अनुकूल शब्द सामंजस्य स्थापित' करना चाहिए। आदर्श स्थिति यही है कि 'अभिनेता अपने पाठ में तन्मय होकर स्वयं पाठ हो जाय और पाठ ही स्वयं अभिनेता हो जाय।' (सीताराम चतुर्वेदी, *भारतीय और पाश्चात्य रंगमंच*, पृ. 241) पाठ की बारीकियों को समझकर तथा उनमें जटिलता लाने की चेष्टा से ही सही संप्रेषण संभव हो सकता है।

अभिनेता अपनी भूमिका में अपने व्यक्तित्व का विलय करता है–जो मनोवैज्ञानिक शब्दावली में तादात्म्यीरण के द्वारा ही संभव होता है। यह प्रक्रिया मनोविज्ञान की तादात्म्यीकरण की प्रक्रिया से एक दृष्टि से भिन्न है। अभिनेता अपने व्यक्तित्व का तादात्म्यीकरण जान बूझकर अत्यंत सजगता से करता है। मनोविज्ञान का तादात्म्यीकरण अनुभूति प्रधान है, जिसमें क्रियापक्ष गौण है। जबकि अभिनेता के तादात्म्यीकरण में उसकी इच्छा शक्ति प्रमुख है और क्रियापक्ष गौण है। अभिनय प्रक्रिया में वह धीरे-धीरे अपने व्यक्तित्व का निराकरण करता हुआ दूसरा व्यक्तित्व ग्रहण करता है–अपने ऊपर उसे ओढ़ता है और उससे तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा करता है–जिसका उसे अलग ही सुख मिलता है।

नाट्य-प्रस्तुति में वह अकेला नहीं, समग्र का एक अंश मात्र है। अपनी भूमिका के अतिरिक्त उसे अन्य अभिनेताओं को भी सहयोग देना पड़ता है। मंच पर उसकी एकांत उपस्थिति भी संभव है, पर सामूहिक उपस्थिति भी होती है। एकाकी अभिनय की अपेक्षा सामूहिक अभिनय करना अधिक कठिन, महत्त्वपूर्ण और चुनौतियों से भरा हुआ है। सामूहिक अभिनय की मंच पर तीन स्थितियाँ संभव हैं–

(*i*) समवेत (कोरल) जनसागर की वह एक तरंग होता है। सारा समूह एक साथ गाता-बजाता या अभिनय करता है।

(*ii*) सम्मिलित या समूह में बहुत से लोग एकत्र होकर परस्पर विचार विमर्श करते हैं।

(*iii*) सामूहिक या समूहनपूर्ण दृश्य। भीड़ एकत्र होकर विभिन्न इच्छाओं, चेष्टाओं, गतियों और कोलाहल से जनसंपर्क करती है। इसमें अभिनेता को संपूर्ण अव्यवस्थित कार्य को अपने व्यक्तिगत अभिनय से पुष्ट करना होता है। (मेला, युद्ध, दंगों के दृश्य)

याद रखना चाहिए कि रंगमंच पर जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति होती अवश्य है पर श्रेष्ठ अभिनेता का प्रयास हो कि वह स्वयं के जीवन के यथार्थ की प्रस्तुति मंच पर यथासंभव न करे। उसे कलात्मक यथार्थ को ही मंच पर प्रस्तुत करना चाहिए। यह अपने व्यक्तित्व और भूमिका दोनों से अलगाव द्वारा ही संभव हो सकता है। अभिनेता के लिए वास्तविक और आदर्शस्थिति इस बात की समझ है कि वस्तुतः सौंदर्य अनुभूति या रस न तो भूमिका में है, न अभिनेता में, वह तो कलात्मक अभिव्यक्ति में निहित है। अभिनेता अपनी भूमिका मंच पर पुनर्निर्मित करता है और उसके साथ तादात्म्य स्थापित करता है। यह पुनर्निर्माण की प्रक्रिया प्रस्तुति के पूर्वाभ्यास में संपन्न हो चुकी है, पर मंच-प्रस्तुति में दर्शकों को यह आभास दिलाना कि यह सब तत्काल संपन्न हो रहा है, वर्तमान क्षण में घटित हो रहा है–यही अभिनेता की कला है। जो दर्शकोन्मुखी है–अतः एकायामी नहीं है। मात्र अनुभूति नहीं संप्रेषण भी है जिसका माध्यम वह स्वयं है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उसी क्षण वह अपनी कला का पर्यवेक्षण भी करता चलता है। अगले संवाद की तैयारी, दूसरे पात्र की क्रिया की प्रतिक्रिया के लिए सजगता, यह पूर्ण तादात्म्यीकरण से संभव नहीं हो पायेगी। भूमिका से बड़ी सजगतापूर्वक–सावधानी के साथ उसे स्वयं को पृथक भी करना है। अलगाव के बिना परभावकरण और सत्याभास भी संभव नहीं हो पायेगा। उसे अपने अंतर्बाह्य को साधना पड़ता है। अपनी देह और वाणी पर नियंत्रण रखने, उर्वर कल्पनाशीलता से अन्य उपकरणों का प्रयोग, संतुलन और सामंजस्य करना, साथ ही निरंतर सजग सक्रियता आवश्यक है। यह दोहरे व्यक्तित्व की दहलीज पर होता है। यह अनुभव की विचित्र घड़ी है। वह साधक, साधन और साध्य सब कुछ स्वयं होता है। इसे उन्नीसवीं शताब्दी की प्रख्यात अभिनेत्री फैनी कैम्बल ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–''अभिनय का एक रोचक पक्ष यह है कि अभिनय के दौरान हमारा मस्तिष्क एक साथ दो प्रक्रियाओं से गुजरता है। ये दो प्रक्रियाएँ एक दूसरे के विरुद्ध हैं, फिर भी यहाँ एक साथ चलती हैं। उदाहरण के लिए मिसेज बेवरली के आखिरी दृश्य में जब मैं दु:ख से अधमरी होकर जोर जोर रो रही थी... तो मैं देख रही थी कि मेरे आँसू गिर रहे हैं और उससे मेरा रेशमी परिधान खराब हो रहा है।'' (*सीइंग, बीइंग एण्ड बिकमिग*, पृ. 251 *नाट्यशास्त्र विश्वकोश* भाग-1, पृ. 29, राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा उद्धृत)

स्पष्ट है कि अभिनेता अपनी कला और तकनीक का प्रयोगकर्ता ही नहीं पर्यवेक्षक भी है। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि अभिनय करते समय वह अपने कार्य का पर्यवेक्षण करता चले। अभिनय-प्रक्रिया में वह स्वंय को देखकर निरीक्षण-परीक्षण करता रहे। अभिनय का 'क्षण' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पूर्वाभ्यास में संशोधन-सुधार अथवा पुनरावृत्ति की संभावना रहती है। मंच प्रस्तुति में उसकी कला जीवन-सी क्षणजीवी है, वह क्षण दुबारा लौट कर नहीं आयेगा। उसकी अपनी भूल, दूसरे पात्र की त्रुटि, पार्श्वकर्मी की चूक अथवा तत्काल घटित अनायास स्थितियों में सुधार एवं अपनी भूमिका और मूल आलेख के अनुसार परिवर्तन के लिए भी उसे मानसिक रूप से तैयार रहना होता है। दर्शकों को भूमिका जीने का आभास, स्वयं के मस्तिष्क में नाटक का आलेख और सजगता के साथ उसमें त्रुटि को सुधार कर वह स्थिति निर्मित करना कि प्रस्तुति कहीं स्खलित हुए बिना निरंतरता में गतिशील रहे। मन-मस्तिष्क की सजगता, सक्रियता, कल्पनाशीलता की अपेक्षा तो करती है–साथ ही स्थिति के पुनर्निर्माण के लिए कलात्मक कौशल और विशेष रंग-तकनीक के प्रयोग की भी अपेक्षा रखती है। एक साथ ही वह अपनी कला और रंग तकनीक का प्रयोगकर्ता है।

वह रंग प्रक्रिया का केंद्रबिंदु है। मंच पर प्रयुक्त होने वाले सभी मंचोपकरण, दृश्यबंध, पार्श्वध्वनियाँ और रंगदीपन का केंद्र भी वही है–सभी उसी की सहायता के लिए उपस्थित। पर कभी-कभी ऐसी स्थिति भी हो सकती है कि इनमें से कोई एक अथवा एकाधिक अथवा इनके अभाव में भी वह अकेला मंच पर हो। ये सभी उसके अभिनय के परिवेश का निर्माण करते हैं। ऐसी स्थिति में उसे अपने अभिनय के द्वारा ही अपने परिवेश का आभास दिलाने का दायित्व निभाना पड़ता है। अभिनय के द्वारा पात्र और उसके परिवेश को भी प्रस्तुत करना और भी चुनौतीपूर्ण बन जाता है। **अभिनय की सूक्ष्म और जटिल प्रक्रिया के द्वारा अपनी**

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भूमिका और उसके परिवेश की अभिव्यक्ति से प्रेक्षक को सार्थक नाट्यानुभव देना उसकी सबसे बड़ी परीक्षा है। अभिनेता ही केंद्रीय और एकमात्र तत्त्व है जो रंगप्रक्रिया को 'दृश्य' रूप प्रदान करता है। अभिनय का वह क्षण और स्थल अपनी निरंतरता और आधार के रूप में उसकी काल और स्थान सापेक्षता को सिद्ध करते हैं, नाटककार और दर्शक उसके बहुआयामी होने को प्रमाणित करते हैं।

पात्रनुमा बन जाना और पर्यवेक्षक के रूप में तटस्थता इन दोनों प्रक्रियाओं से वह विशेष क्षण और स्थल में जीवन धारण करता है। रंगसृष्टि की प्रक्रिया में वह स्थिति को बुनता भी है और झेलता भी है। इसी प्रक्रिया में उसका व्यक्तिगत अनुभव सामूहिक बन जाता है। शास्त्रीय भाषा में इसे साधारणीकरण कहा गया है। उसकी कला के द्वारा उसका अनुभव व्यक्तिगत और इन्द्रिय अनुभव से परे–मानसिक धरातल पर सामूहिक अनुभव बन जाता है। संपूर्ण प्रेक्षागृह में उपस्थित प्रेक्षकगण एक मानसिकता के सूत्र में बंध जाते हैं। यह सब उसके अभिनय का ही कौशल है।

अच्छा अभिनेता अच्छा मनुष्य होगा ही। उसका अधिक संवेदनशील, शिष्ट, सुसंस्कृत होने के साथ–साथ सहयोगी, सदाचारी, सहिष्णु, अनुशासित और संयमी होना भी आवश्यक है। शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ कलाकार ही 'समय' का महत्त्व पहचान पायेगा। परिश्रमी भी होगा। आत्म अनुशासन भी उसके लिए मुख्य है। निर्देशक के अनुशासन का पूर्ण रूप से पालन करना भी आवश्यक है। संपूर्ण रंगप्रक्रिया में वही सब कुछ नहीं, व्यापक परिप्रेक्ष्य को निर्देशक उससे अधिक जानता है। यह सोचकर वह निर्देशक के अनुशासन का पालन करता है।

2.4.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए-
   - (क) नाटक में किस प्रकार के अंश निहित होने चाहिए?
   - (ख) एक अनुभवी अभिनेता को क्या पता होता है?
   - (ग) अभिनेता का क्या दायित्व है?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   - (क) अभिनेता अपनी भूमिका की तैयारी कई प्रकार से कर सकता है। (सही/गलत)
   - (ख) अभिनय पद्धतियों की भिन्नता का आधार-दर्शकों की दृष्टि से ही है। (सही/गलत)
   - (ग) अभिनय संकेत और अभिनटन प्रधान नहीं होता है। (सही/गलत)
   - (घ) अभिनेता अपनी भूमिका में अपने व्यक्तित्व का विलय करता है। (सही/गलत)
   - (ङ) भरतमुनि ने अभिनेता की अंतर्दृष्टि पर जोर दिया है। (सही/गलत)
3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -
   - (क) अभिनेता अपनी कला और.....का प्रयोगकर्ता ही नहीं पर्यवेक्षक भी है। (व्यक्तित्व/तकनीक)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(ख) अभिनयकर्म एक साधना है और अभिनेता एक .....।(योगी/घटक मात्र)

(ग) अच्छा अभिनेता अच्छा.....होगा ही। (मनुष्य/गायक)

2.5 निर्देशक

रंगमंच पर निर्देशक सदा से नहीं था। ऐतिहासिक कारणों से रंगमंच में उसका आविर्भाव हुआ। पिछले कुछ में रंगमंच पर उसका आधिपत्य हो गया। रंगमंच में उसकी स्थिति कभी जहाज के कप्तान की, कभी सूत्रधार की, कभी तानाशाह की और कभी गुरु की मानी जाती है। निर्देशक सदा से रंगमंच पर नहीं था, अब है। तो निश्चय ही उसकी आवश्यकता अनुभव हुई होगी, तभी उसका रंगमंच पर आविर्भाव हुआ। इसका कारण रंग-प्रक्रिया में बढ़ती जटिलता ही है, जिसने उसकी आवश्यकता अनुभव करायी। आज तो उसके बिना रंगप्रस्तुति ही संभव नहीं मानी जाती। साठ के दशक में हिंदी में नए रंग आंदोलन का जन्मदाता वही है और आज हमारे रंगमंच पर जो भी कार्य हो रहा है–उसका श्रेय भी निर्देशक को ही जाता है।

श्री नेमिचंद्र जैन के अनुसार "निर्देशक ही वह केंद्रीय सूत्र है जो नाट्य प्रदर्शन के विभिन्न तत्त्वों को पिरोता है और उनकी समग्रता को एक अन्विति बल्कि सर्वथा स्वतंत्र कला-रूप का दर्जा देता है। सार्थक प्रदर्शन में नाटक जिस रूप में दर्शक तक पहुँचता है, वह बहुत कुछ निर्देशक के कलाबोध, सौंदर्यबोध और जीवनबोध को ही सूचित करता है।'' (*रंगदर्शन*, पृ. 45)

रंगमंच में उसके केंद्रीय स्थान की और कलात्मक आयाम के स्रष्टा के रूप में स्वीकृति मात्र सैद्धांतिक उक्ति नहीं बल्कि व्यावहारिक रूप एवं कार्य रूप में भी सत्य है। उसकी छाप के बिना नाट्यसृष्टि सर्जनात्मक कार्य और सर्जनात्मक अनुभूति की पूर्णवाहक बन ही नहीं सकती।

कला की श्रेष्ठता सृजनात्मक अनुभूति की सूक्ष्मता की मात्रा पर निर्भर करती है। कलात्मक अभिव्यक्ति जितनी स्थूल होगी कला उतनी गौण और अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता उसकी श्रेष्ठता का मानदंड है। रंगमंच पर सभी उपकरण और तामझाम एक दृष्टि से अपना स्थूल अस्तित्व रखते हैं। संभवत: इसी कारण रंगकला को उपयोगी कला का दर्जा किया गया और उसका स्थान दोयम दर्जे की कला के रूप में ही मान्य रहा। पर पिछले कुछ दशकों में रंगकला को श्रेष्ठ और सूक्ष्म कलात्मक अनुभूति के रूप में प्रस्तुत करने और रेखांकित करने का श्रेय निर्देशक को ही जाता है। आज तो स्थिति यह है कि रंगमंच उसी की अभिव्यक्ति का माध्यम माना जाता है। देखा जाय तो उसकी अपनी कला तो कुछ भी नहीं है। अलग से दिखाई तो देती ही नहीं। उसके लिए दृष्टि चाहिए। निर्देशक की दृष्टि (Vision) ही उसकी सबसे बड़ी कला है। जिसकी छाप रंगमंच से जुड़े सभी कलाकारों की कला पर, और रंगप्रस्तुति पर स्पष्ट दिखाई देती है। संपूर्ण प्रस्तुति से प्राप्त होने वाली नाट्यानुभूति का अस्वाद उसकी छाप लिए रहता है।

नाट्यानुभूति के संप्रेषण के लिए वह रंगमंच से जुड़ी सभी कलाओं का उपयोग करता है। बाकी काम वह दूसरों को सौंपकर निश्चित हो सकता है किंतु संपूर्ण नाटक की प्रस्तुति परिकल्पना उसी की है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अभिनेताओं को माध्यम बनाकर स्थितियों को 'जीवन' प्रदान करना, पात्रों का परस्पर संबंध, रंगदीपन, वेशभूषा रूपसज्जा का रूप क्या होगा, विशेषज्ञों से कैसे कार्य लेकर अपनी कला को साकार करना है–यह निर्देशक ही तय करता है।

निर्देशक की कला का सबसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण माध्यम अभिनेता है। अभिनेता का वह 'गुरु' है। उसे भूमिका समझाता है। कई बार समझाने के लिए शारीरिक क्रियाओं अथवा आवाज़ का उतार-चढ़ाव स्वयं प्रदर्शित करना पड़ता है। किंतु इसके लिए संकेत ही पर्याप्त हैं, निर्देशक का स्वयं कुशल अभिनेता होना आवश्यक नहीं। अभिनेताओं को अभिनय का प्रशिक्षण देने के लिए अभिनय का ज्ञान रखनेवाले लोग सहायक हो सकते हैं। वे ही अभिनेता 'गुरु' बनने का अच्छा कौशल रखते हैं जिन्हें विभिन्न चरित्र भूमिकाओं का अच्छा अनुभव होता है।

अभिनय सिखाने की अपेक्षा उसे संकेतों से भूमिका को समझाना, प्रेरणा और प्रोत्साहन देना निर्देशक का कार्य है। उसके एक सूक्ष्मतर संकेत को समझकर अभिनेता अभिनय की भाषा में उतार सके और अभिनेताओं की कठिनाइयों, सीमा और सामर्थ्य को निर्देशक पहचान सके–आवश्यकतानुसार उनका उपयोग, परिवर्तन और संशोधन कर सके–इसके लिए दोनों में परस्पर समझ और तालमेल होना आवश्यक है। अभिनेता निर्देशक का माध्यम है। इसके लिए अपने माध्यम की पहचान के साथ-साथ उस पर निर्देशक की 'पकड़' भी होनी चाहिए। यह दोनों के तालमेल और–'समझ' से ही आवश्यक होगा। एक-दूसरे की शक्ति और सामर्थ्य की समझ, परस्पर विश्वास अभिनेता के समर्पण और अनुशासन से ही संभव होगा।

संगीत, नृत्य अथवा चित्रकला में कलाकारों को जिस तरह अभ्यास करना पड़ता है, ऐसा कुछ निर्देशक के लिए करना आवश्यक नहीं है। **कुम्हार की तरह मिट्टी को हल्की-हल्की थपकियों से नर्म करते जाना और उसी से नाटक के चरित्रों को मनचाहा आकार और जीवन देना उसकी कला है। अभिनेता अथवा रंगकर्मी की ही कला मंच पर दिखाई देती है–निर्देशक की नहीं। उसकी कला 'कुछ नहीं है'। पर क्या हो सकता है, यह दिखाना उसकी सामर्थ्य** है। रंगमंच तकनीक से उसका परिचय तो सिखाया जा सकता है किंतु निर्देशन की कला सिखाई नहीं जा सकती। किस निर्देशक ने विभिन्न प्रस्तुतियों में किस तरह के प्रयोग करके चरित्र अथवा नाट्यार्थ में परिवर्तन किया यह भी दिखाया जा सकता है। किंतु निर्देशन से नाट्यार्थ में कैसे वह परिवर्तन करेगा अथवा नई परिभाषा देगा इसे सिखाया नहीं जा सकता। निर्देशक की अंतर्दृष्टि से ही यह संभव होगा। इसे कब कोई निर्देशक निर्धारित करेगा अथवा संभव करेगा, कोई कह नहीं सकता। यह पूर्णतः प्रयोगधर्मी कला है। **प्रयोग के समय निर्देशक की प्रतिभा और अंतर्दृष्टि ही इसे निर्धारित करती है। यही वस्तुतः उसकी असली कला है। अभिनेता तथा अन्य कलाकारों की कला का उपयोग कर सकने की सामर्थ्य-कल्पना को मूर्त रूप देने की सामर्थ्य ही उसकी कला है। अपनी रंगपरिकल्पना का कितना मूर्त, सुंदर, प्रखर और सामंजस्यपूर्ण रूप में उपयोग कर सकेगा, इसी पर प्रस्तुति की 'नियति' टिकी हुई है।**

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

आधुनिक रंगमंच का अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष होते हुए भी उसकी अपनी मर्यादा और सीमा निश्चित है। "निर्देशन का वास्तव में एक सीमा के बाद कोई स्वतंत्र अस्तित्व तभी रंगकार्य में सहायक होता है जब नाटककार के कथ्य का निष्ठा से अधिनिरूपण करे और उस कथ्य को अभिव्यक्त और दर्शकों तक अधिक प्रभावी ढंग से संप्रेषित करने में अभिनेता की सहायता करे। यही उसकी वास्तविक सार्थकता है।" (*दृश्य अदृश्य* पृ. 118) इसके साथ-साथ नाटक का अर्थ निर्धारण भी वही करता है। उसी अर्थ के अनुसार अपनी परिकल्पना की रूपरेखा तय करना, उसके विभिन्न बिंदुओं-मंचसज्जा, रंगदीपन, अभिनेता के चरित्र इत्यादि को क्या रूप देना है, वह भली-भाँति जानता है। रंगकर्मियों को समझाकर अपने मानसिक, प्रारूप के अनुसार-किससे क्या काम लेना है यह भी उसे ही तय करना है। यह सब कार्य वह धैर्य, लगन, विनम्रता, कलात्मक प्रतिबद्धता और ईमानदारी से ही संभव कर पाता है। विनम्रता का अर्थ दृढ़ता अथवा अनुशासन का अभाव नहीं। अन्य रंगकर्मी भी संवेदनशील कलाकार हैं, उनकी संवेदना का सम्मान कर अपने वांछित प्रभाव को उत्पन्न करने की अभिलाषा ही इसके पीछे निहित रहती है।

यों तो रंगमंच पर सक्रिय सदस्यों को छोटे से लेकर बड़ा काम करने के लिए तैयार रहना ही पड़ता है। पर निर्देशक से इसकी विशेष अपेक्षा की जाती है। उसे दूसरों से काम भी लेना है और यह संदेश भी देना है कि अहं के साथ सहयोग और समर्पण पूर्ण नहीं होगा। वह सबका नायक है, गुरु है। अतः अपने व्यक्तित्व के द्वारा आदर्श उपस्थित करना उसका कर्त्तव्य। प्रस्तुति में उसकी स्थिति किसी आर्केस्ट्रा के संचालक की होती है। प्रस्तुति के कलात्मक स्तर और संयोजन का दायित्व उसी के कंधों पर होता है। वह सूत्रधार भी है। सब कठपुतलियों के धागे इस खेल में भी उसी के हाथ में होते हैं। वह जिसे जितना चाहता है, नचाता है। उसके नियंत्रण और अनुशासन की सीमा जानकर सब रंगकर्मियों को उसके संकेतों, सुझावों और आदेशों का पालन करना चाहिए। इसी में रंगप्रस्तुति का हित निहित है। किंतु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रंगकर्मी कलाकार हैं–निर्जीव कठपुतलियाँ नहीं। हर कलाकार नाट्य प्रस्तुति में अपनी कलात्मकता का योग करने के लिए इच्छुक रहता है। हर चरित्र का अभिनय स्वयं करके दिखायेगा, तो अभिनेताओं को अपने अनुभवों के उपयोग और अपनी कल्पनाशीलता के प्रयोग का अवसर नहीं मिलेगा। अपनी कल्पनाशीलता के अनुसार अभिनेता और अन्य रंगकर्मियों को समझा कर तदनुसार कार्य ले सके–तभी कुशल निर्देशक कहलायेगा। उसकी कला स्वतंत्र है और उसका कर्त्तव्य है कि दूसरों को भी अपनी-अपनी सीमा में आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दे। तभी सभी कलाकार अपनी सृजनात्मकता के उपयोग का आनंद पा सकेंगे। रंगकला तथा उसके विभिन्न आयाम दर्शकों को सृजनात्मक अनुभूति के संप्रेषण का आनंद प्रदान कर सकेंगे। रंगप्रस्तुति सूक्ष्म, सुंदर और गहरे कलानुभव में रूपायित हो सकेगी।

निर्देशक निरंकुशता से नहीं दृढ़ निश्चयता और अपने कला-माध्यम के प्रति निष्ठा और प्रतिबद्धता से ही श्रेष्ठ रंगप्रस्तुति कर सकता है। हठ अथवा किसी प्रकार का पूर्वाग्रह उचित नहीं। प्रस्तुति की उत्कृष्टता के लिए वह उपयोगी और सृजनात्मक सुझावों के प्रति उदार रहे। उचित होने पर उनका उपयोग करना चाहिए।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल, दिमाग और सृजनशीलता के द्वारों को खुला रखना चाहिए। रंगमंच पर कुछ भी अंतिम नहीं है–मंचप्रस्तुति में भी सुधार और सृजन की संभावनाओं के लिए द्वार खुले रहते हैं।

निर्देशन कलाकार की अंतर्दृष्टि की माँग करता है। जिस प्रकार केवल ट्रेनिंग से श्रेष्ठ काव्य की रचना संभव नहीं, वैसे ही निर्देशन भी मात्र ट्रेनिंग से नहीं सिखाया जा सकता। उसके लिए आंतरिक प्रतिभा का होना आवश्यक है। निर्देशन का प्रशिक्षण कलाकार की सृजनक्षमता को तराश सकती है, उसे परिपक्वता प्रदान करती है, सहायक हो सकती है। एक संवाद से दूसरे के बीच गुँथे सूत्रों की पहचान, प्रतिक्रिया ही नहीं बल्कि चुप्पी और मौन का प्रभाव और उपयोग करने की सामर्थ्य भी आवश्यक है। रंगीय अभिव्यक्ति के सहायक उपकरणों का उपयोग, गुणवत्ता और प्रभाव, अभिनेताओं की मन:स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ तथा विभिन्न सामाजिक रुचि और वर्गों के लोगों की कला का समुच्चय करने के लिए किसी बंधी-बंधाई लीक पर नहीं चला जा सकता। प्रस्तुति प्रक्रिया का हिस्सा बनकर ही उसका वास्तविक प्रशिक्षण लिया जा सकता है।

रंगकला सामूहिक अभिव्यक्ति है। उसमें नाटककार, निर्देशक और अभिनेता तीनों की सृजनात्मकता का समन्वय वस्तुत: निर्देशक का ही दायित्व है। ''यह सही है कि मंच पर नाट्यानुभव के रूप में जो कुछ दर्शकों तक पहुँचता है, उसका प्रमुख माध्यम अभिनेता ही है। नाटककार और निर्देशक की सारी प्रतिभा अंतत: अभिनेता के काम के द्वारा ही अपनी पूरी अभिव्यक्ति और कलात्मक प्रासंगिकता हासिल करती है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अभिनेता अपने आप ही सारे तत्त्वों को समायोजित करके सार्थक और संपूर्ण सृजनात्मक नाट्य-रचना कर सकता है।'' (*दृश्य-अदृश्य*, पृ. 125)

नेमिचंद्र जैसे रंगालोचक जो रंगमंच पर अभिनेता को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं–निर्देशक के महत्त्व को नहीं नकार पाते। विशेषकर आज के संदर्भ में, जबकि रंगकला जटिल से जटिलतर अभिव्यक्ति रूप बनती जा रही है। निर्देशक रंगकला का केंद्रीय घटक बन गया है। ''उसकी उपस्थिति के बिना गतिविधान में सौंदर्यमूलक और चरित्र की मन:स्थितियों के अनुकूल संरचनाएँ संभव नहीं होती। इसी तरह निर्देशक के बिना विभिन्न चाक्षुष तत्त्वों को भी ऐसी संतुलन न बन पाता कि सबका मिलकर एक समग्र प्रभाव पड़े।'' (*दृश्य-अदृश्य*, पृ. 117) ''सार्थक कथ्य को लोकप्रिय स्तर तक लाने के लिए प्रदर्शन की शैली में अनेक प्रकार के प्रयोग निर्देशकों के कारण हुए हैं। आज का रंगमंच सही अर्थों में निर्देशक का रंगमंच है। दर्शक भी नाट्य प्रदर्शन नाटककार अथवा अभिनेता के कारण नहीं निर्देशक के नाम से ही देखने जाते हैं। उसकी कुशलता, कल्पनाशील, सृजनात्मकता अथवा अधिनिरूपण (इंटरप्रटेशन) के कारण देखने जाते हैं।''

हिंदी रंगमंच पर अच्छे नाटककारों तथा अभिनेताओं की कमी की बात आज भी की जाती है। किंतु निर्देशकों की संख्या में वृद्धि हुई है जिसके कारण प्रदर्शनों की श्रेष्ठता और स्तर निश्चय ही बेहतर हुए हैं। ''निर्देशकों को इस अधिकता के कारण ही हिंदी में देश की तमाम भाषाओं से अच्छे नाटकों के अनुवादों की इतनी माँग बढ़ी और फिर उसी के फलस्वरूप बड़ी संख्या में विभिन्न भाषाओं के श्रेष्ठ नाटकों के प्रदर्शन करने के कारण प्रस्तुतिकरण का स्तर इतना सूक्ष्म, विविधतापूर्ण और श्रेष्ठ हो सका। संभवत: देश का

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

किसी भी अन्य भाषा की तुलना में हिंदी का रंगमंच मुख्यत: निर्देशक का रंगमंच अधिक बन गया है।'' (*दृश्य-अदृश्य*, पृ. 115)

2.6 प्रस्तुति-योजना

प्रस्तुति-योजना का नेतृत्व भी निर्देशक के हाथ में होता है। प्रस्तुति का संपूर्ण दायित्व और श्रेय-अश्रेय उसी का है। वह प्रस्तुति प्रबंधक एवं विशेषज्ञों अथवा सहायकों का कलात्मक सहयोग लेता है। अपनी कला पर गहरी पकड़ और रंगकला के गूढ़ ज्ञान के अतिरिक्त उसे अपनी कुशाग्र बुद्धि, व्यवहारक्षमता और संगठनक्षमता का भी परिचय देना पड़ता है। अन्यथा प्रस्तुति-योजना से जुड़े इतने लोगों का सहयोग लेकर उनका सर्जनात्मक उपयोग करना संभव नहीं हो पायेगा।

रंगप्रस्तुति-संयोजन

निर्देशक

↓

प्रस्तुति-संयोजन

निर्देशक संयोजक

प्रस्तुति-प्रक्रिया	**पार्श्वकर्म**	**पार्श्व-व्यवस्था**	**प्रस्तुति प्रबंधन**
नाट्यकृति का चुनाव	रंगोपकरण	अभिनेताओं, नर्त्तकों,	मानव संसाधन
अर्थ निर्धारण, पाठ	दृश्यसज्जा	गायकों, वाद्यवृंद	जनसंपर्क (प्रचार-विज्ञापन)
और मानसिक तैयारी	वेशभूषा	पार्श्वसहायक,	प्रिंटिंग (टिकट, पोस्टर, ब्रोशर)
पात्रों का चुनाव	रूपसज्जा	सेवा परिकल्पकों एवं	टिकट-विक्रय
पूर्वाभ्यास/रिहर्सल	रंगदीपन प्रेक्षागृह की व्यवस्था	निमंत्रण (विशिष्ट अतिथि, प्रेस)	
पूर्वाभ्यास-प्रदर्शन	संगीत एवं		आर्थिक-व्यवस्था
नाट्य-प्रस्तुति	ध्वनि प्रभाव		

अपनी टीम के प्रत्येक कार्यकर्त्ता से उसका सीधा संबंध होना चाहिए। वाद-विवाद अथवा असहमति की स्थिति में उसका निर्णय अंतिम और मान्य होना चाहिए। यद्यपि निर्देशक प्रस्तुति के हित में अंतिम क्षण तक सुझावों के प्रति उदार रहता है, किंतु किसी सुझाव को स्वीकार न करने पर अपने सहयोगियों पर उसका कारण भी जाहिर कर देना उचित रहता है। अपने कलाकारों और पार्श्व-सहयोगियों को भावनात्मक चोट पहुँचाये बिना उनका आपसी तालमेल बनाये रखना अपेक्षित होता है।

© DDCE, COL, SOU, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2.6.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए -
   (क) निर्देशक का रंगमंच पर आविर्भाव क्यों हुआ?
   (ख) निर्देशक का क्या कार्य है?
   (ग) निर्देशक श्रेष्ठ रंग-प्रस्तुति किस प्रकार कर सकता है?
   (घ) प्रस्तुति-योजना का नेतृत्व किसके हाथ में होता है?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   (क) प्रस्तुति का संपूर्ण दायित्व और श्रेय-अश्रेय निर्देशक का है। (सही/गलत)
   (ख) हिंदी रंगमंच पर अच्छे नाटककारों तथा अभिनेताओं की कमी की बात आज भी की जाती है। (सही/गलत)
   (ग) निर्देशन कलाकार की अंतर्दृष्टि की माँग नहीं करता है। (सही/गलत)
   (घ) रंगकला सामूहिक अभिव्यक्ति है। (सही/गलत)
3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -
   (क) निर्देशक की कला का सबसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण माध्यम.....है। (अभिनेता/नाटक)
   (ख) .....वह केन्द्रीय सूत्र है जो नाट्य प्रदर्शन के विभिन्न तत्त्वों को पिरोता है। (निर्देशक/नाटककार)
   (ग) आज का रंगमंच सही अर्थों में .....का रंगमंच है। (निर्देशक/संगीतकार)

2.7 सारांश

रंगमंच एक प्रयोगशाला है। जिस पर हर क्षण नित नूतन प्रयोग ही रंगकर्मी की सत्य से संधान की कभी समाप्त न होने वाली साधना है। वस्तुतः नाटक प्रयोग के लिए ही लिखा जाता है और यह प्रयोग मुख्य रूप से प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न घटकों के माध्यम से ही संभव हो पाता है। नाटक को रंगमंच पर सफल बनाने में अभिनेता, निर्देशक, दर्शक तथा प्रस्तुति योजना का विशेष महत्त्व है। प्रस्तुति-प्रक्रिया के विभिन्न घटक का अर्थ है, रंगमंच के उन सारे उपकरणों का प्रयोग-कौशल तथा रंगशैली जिससे नाटक का मंचीकरण संभव हो सके। प्रस्तुति-प्रक्रिया के विधान में रंगमंच के वे सभी आंतरिक एवं बाह्य उपकरण समाविष्ट हैं जिनके द्वारा नाटक अपने चरम तक पहुँचता है। प्रत्येक नाटक के भीतर उसके अपने रंगमंच का स्वरूप होता है। अभिनेता, निर्देशक तथा मंच-शिल्पी, नाटककार रचित पांडुलिपि के आधार पर मंच-प्रयोग करते हैं। हर प्रयोग प्रस्तुति-प्रक्रिया को स्वतः जन्म देता है। रंगमंच परंपरागत कला होने के कारण परंपरा की सही पहचान इसका बड़ा महत्त्व है। नाटक साहित्य की सर्वोत्कृष्ट विधा है। नाटक का अस्तित्व संसार के सभी मनुष्य, जातियों तथा सभी राष्ट्रों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। इसमें समस्त ललित कलाओं का सुंदर समाहार रहता है। काव्य-कला का तो यह प्रमुख रूप है ही, संगीत, चित्र, नृत्य और स्थापत्य कला-कौशल की भी झाँकी इसमें मिल जाती है। जब भी नाटक की बात की

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

जाती है तो नाटक को प्रस्तुत करने की कला की तरफ ध्यान चला जाता है, जिसे प्रस्तुति-प्रक्रिया कहा जाता है। नाटककार किसी समस्या अथवा कथावस्तु को प्रस्तुत करते समय दृश्यतत्व को हर क्षण ध्यान में रखता है जिसे प्रस्तुति-प्रक्रिया कहा जाता है।

2.8 अभ्यास प्रश्न

1. प्रस्तुति-प्रक्रिया के प्रमुख तत्त्वों का विवेचन कीजिए।
2. नाटक के प्रदर्शन में निर्देशक की भूमिका को उदाहरण सहित व्याख्यायित कीजिए।
3. नाट्य संप्रेषण में अभिनय कर्म के महत्त्व की व्याख्या कीजिए।
4. नाटक और रंगमंच के संबंधों की समीक्षा कीजिए।
5. नाटक को सफल बनाने में दर्शक की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

2.9 संदर्भ-ग्रंथ

1. *रंगदर्शन* - नेमिचन्द्र जैन
2. *रंगमंच का सौंदर्य शास्त्र* - देवेन्द्र राज अंकुर
3. *दर्शन-प्रदर्शन* - देवेन्द्र राज अंकुर
4. *रंगमंच: नया परिदृश्य* - रीतारानी पालीवाल
5. *रंग प्रक्रिया के विविध आयाम* - (सं.) डॉ. प्रेम सिंह और सुषमा आर्य
6. *नाट्य प्रस्तुति: एक परिचय* - रमेश राजहंस

© DDCE, COL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

इकाई– 3

अभिनय की तैयारी : वाचिक, आंगिक, आहार्य, सात्विक

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी

प्रो. एवं अध्यक्ष

संस्कृत विभाग

सागर विश्वविद्यालय, सागर

सम्पादक- प्रो. सुधीर कुमार शर्मा

रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अभिनय का स्वरूप
1.3 सात्विक अभिनय
1.3.1 बोध प्रश्न
1.4 वाचिक अभिनय
1.4.1 बोध प्रश्न
1.5 आंगिक अभिनय
1.5.1 बोध प्रश्न
1.6 आहार्य अभिनय
1.6.1 बोध प्रश्न
1.7 सारांश
1.8 अभ्यास प्रश्न
1.9 संदर्भ-ग्रंथ

1.0 अधिगम का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ 'अभिनय' पर केंद्रित है। नाटक का प्रमुख तत्त्व है अभिनय। अभिनय के बिना नाटक की कल्पना नहीं की जा सकती है। इस पाठ के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित करने में सक्षम होंगे:

- अभिनय के महत्त्व को समझ सकते हैं।
- अभिनय के स्वरूप को स्पष्ट रूप में जान सकेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- अभिनय के विभिन्न प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
- वाचिक, आंगिक, आहार्य, सात्विक अभिनय में अंतर कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

दृश्यकाव्य होने के कारण नाटक की सफलता का सबसे प्रबल प्रमाण उसकी अभिनेयता अथवा मंचीय प्रस्तुति में निहित है। आचार्य भरत के अनुसार 'अभि' पूर्वक "णीञ्' धातु के योग से 'अभिनय' शब्द निःसृत होता है। उनके अनुसार 'अभिनय' शब्द का अर्थ है - सम्मुख ले जाना। नाटक के, प्रसंग में, अंग, उपांग सहित जो प्रक्रिया कवि के अभिप्रेत को पाठक के समक्ष व्यक्त कर देती है, उसे अभिनय कहते हैं। अभिनय की इस प्रक्रिया के कर्त्ता को अभिनेता कहते हैं। वाणी, शारीरिक चेष्टा, मुखमुद्रा एवं वेशभूषा आदि द्वारा मानसिक भाव व्यक्त करना तथा दर्शक को रस की अनुभूति करा देना मुख्यरूप से अभिनय का उद्देश्य है। अभिनय नाटक का सर्वप्रमुख तत्त्व है। अभिनय में अभिनेता द्वारा शरीर, मन और वाणी से अभिनेय चरित्र की अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है। अभिनय में व्यापक परिवेश का अनुकरण होता है। इसके अंतर्गत आंगिक, वाचिक, भावात्मक, क्रियात्मक चेष्टाओं, संकेतों के हावभाव द्वारा किसी प्रकृतवस्तु का अनुकरण किया जाता है और यह अनुकरण इतने कौशल से किया जाता है कि प्रेक्षकों और श्रोताओं को यथार्थ की अनुभूतियाँ प्रतीत होने लगती हैं।

1.2 अभिनय का स्वरूप

नाट्यशास्त्र में अभिनय शब्द बहुत व्यापक अर्थ में व्यवहृत हुआ है और अभिनय का विस्तृत सर्वांगीण विवेचन किया गया है। अभिनय के माध्यम से ही नाट्यरचना रंगमंच पर अवतरित होती है, इसी से भरत ने कहा है, 'अभिनय में ही नाट्य प्रतिष्ठित है'। अभिनय की परिभाषा इस प्रकार की गई है : नाट्य के मुख्यार्थ को सामाजिकों तक ले जाने वाली कला अभिनय है (शब्दार्थ : अभि–पास, नी––ले जाना) अभिनय के अन्तर्गत समूचा मानवीय कार्यव्यापार आ जाता है। शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक, नाट्यप्रस्तुति के लिये वेष एवं मुखसज्जा भी अनिवार्य है, इसी से अभिनय के चार प्रकार गिनाये गये हैं: आंगिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य। इनके अतिरिक्त इन चारों को अपने में समाने वाले सामान्य अभिनय और नृत्यप्रधान चित्र अभिनय का उल्लेख भी किया गया है। लिखित पाठ्य (संवादों) को वाचिक कहा जाता है, साहित्य का विद्यार्थी (और कभी–कभी प्राध्यापक, आलोचक भी) नाट्यकृति के पाठ्य–अंश को ही संपूर्ण नाट्य मान लेता है। परन्तु क्लासिकीय रंगमंच के अभिनय विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय परंपरा में लिखित पाठ के साथ मंच पर आंगिक, सात्विक एवं आहार्य का संयोग होने पर ही नाट्य को अपना स्वरूप मिलता है।

1.3 सात्विक अभिनय

सुख दुःखात्मक मनोभावों की अभिव्यक्ति सात्विक अभिनय कहलाती है। इस अभिनय की परिकल्पना रस सिद्ध नाट्य प्रस्तुति के संदर्भ में सार्थक होती है। रसों एवं भावों की अभिव्यक्ति के लिए अभिनेता को उन रसों एवं भावों के उपयुक्त एवं अनुसार अनुभावों को प्रदर्शित करना होता है। अतः नाट्यशास्त्र में

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

रस एवं भावों के अनुसार विभाग एवं अनुभावों के विस्तृत विवेचन के साथ यह स्पष्ट किया गया है कि अभिनेता उन अनुभावों को किस प्रकार प्रस्तुत करे कि अभीष्ट भाव एवं रस का उद्रेक हो सके।

नाट्यशास्त्र में मंच प्रस्तुति की दृष्टि से रसों एवं भावों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। भरत का प्रसिद्ध सूत्र है : "विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है", भरत ने रस की चर्चा सात्त्विक अभिनय की चर्चा के सन्दर्भ में करते हुए इस संयोग का व्यावहारिक रूप समझाया है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि स्थायी भाव, व्यभिचारी भाव एवं विभाव से युक्त नाट्य की रचना नाट्यकार का काम है और संबंधित अनुभावों को समझ कर उनकी प्रस्तुति अर्थात् सात्त्विक अभिनय अभिनेता का सरोकार है। अतः सात्त्विक अभिनय से तात्पर्य है मनोशारीरी प्रस्तुति। नाट्य को अवस्थानुकृतिः भी कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि उसमें पात्र की भावस्थितियों और उनकी शारीरिक परिणति को अभिव्यक्त करना होगा। अभिनेता नाट्यपात्र को जीता है अर्थात् अपने मनोभावों को नहीं, वरन् पात्र के मनोभावों को अभिव्यक्त करता है। इसके लिए उसे अपने में नाट्य परिस्थिति के अनुरूप शारीरिक प्रतिक्रियाएँ मुखभाव, स्वरविन्यास आदि प्रेक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत करने होते हैं। इसी से भरत ने रसों, स्थायीभावों एवं व्यभिचारी भावों के अनुसार अनुभावों की गणना प्रस्तुत की है, जैसे संयोग शृंगार की प्रस्तुति के लिए चंचल दृष्टि और भूमिक्षेप, कोमल अंगचालन मृदुवाणी आदि, वियोग शृंगार में निराशा, कमजोरी, व्याकुलता, ईर्ष्या, उन्माद आदि अभिनय में प्रकट करने चाहिये।

हास्यरस के अनुभाव हैं ओठों का फड़कना, आँख फाड़ना, धीमी या तेज हंसी, करुणरस की अभिव्यक्ति आँसू गिराना; विलाप, मुँह सूखने या विवर्ण होने से की जाती है। वीररस के लिये दृढ़ और धीर गतिविन्यास, उत्साहित मुखमुद्रा आदि। भयानक रस में कम्प, विवर्णता, मुँह से बात न निकलना, वीभत्स के लिये घृणापूर्ण मुखमुद्रा, थूकना, मितली आदि अद्‌भुत रस के लिये मुख पर प्रशंसा एवं अचरज का भाव, आँख फाड़ना, नेत्रों का सजल होना आदि गिनाये गये हैं। ये सभी अनुभाव अभिनेता को इस प्रकार प्रस्तुत करने होते हैं कि पात्र के वे भाव अभिनेता के अपने जान पड़ें। सात्त्विक अभिनय अभिनेता की कुशलता की कसौटी है, इसके लिये गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता भी होती है। क्योंकि अभिनेता को प्रत्येक रस, स्थायीभाव एवं व्यभिचारी के अनुभावों को जान समझ कर उनकी प्रस्तुति करनी होती है। भरत सात्त्विक अभिनय को ज्येष्ठ अभिनय कहते हुए स्पष्ट करते हैं कि वह सभी अभिनयों का आधार है।

1.3.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए -
   - (क) नाट्यशास्त्र में अभिनय के कितने प्रकार बताएँ गए हैं?
   - (ख) सात्विक अभिनय से क्या आशय है?
   - (ग) हास्यरस के अनुभाव बताएँ।
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   - (क) नाट्यशास्त्र में मंच प्रस्तुति की दृष्टि से रसों एवं भावों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। (सही/गलत)
   - (ख) अभिनय के माध्यम से ही नाट्यरचना रंगमंच पर अवतरित होती है। (सही/गलत)
   - (ग) अभिनय के अंतर्गत समूचा मानवीय कार्यव्यापार आ जाता है। (सही/गलत)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(घ) सात्विक अभिनय में पात्रों की आवश्यकता नहीं है। (सही/गलत)

3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -

(क) भरत ने सात्विक अभिनय को.....अभिनय कहा है।(ज्येष्ठ/अनुज)

(ख) सात्विक अभिनय.....की कुशलता की कसौटी है।(नाटक/अभिनेता)

(ग) सात्विक अभिनय से तात्पर्य.....प्रस्तुति है।(मनोशारीरी/रंगीन)

(घ) अभिनय में ही.....प्रतिष्ठित है। (समाज/नाट्य)

1.4 वाचिक अभिनय

नाट्यशास्त्र में कहा गया है कि वाच्य नाट्य का शरीर है। अतः वाच्याभिनय के प्रति सावधानी बरतनी चाहिये। नाटक के संवादों की संरचना एवं नाट्यभाषा कितनी भी उत्कृष्ट क्यों न हो उसके प्रभावी वाचन से ही प्रेक्षक पर उचित प्रभाव पड़ सकता है। अतः पाठ्य की योजना एवं उसके स्वरूप से अभिनेता का सीधा संबंध है। नाट्यशब्दों की वाच्य रूप में परिणति अभिनेता द्वारा स्वर, स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार एवं अंग के उपयुक्त प्रयोग से होती है। अलग–अलग रसों के अनुसार संगीत के सात स्वरों का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ प्रमुख रूप से मध्यम और पंचम का श्रृंगार और हास्य, में, स और रे का प्रयोग वीर, रौद्र एवं अद्‌भुत के, ग और नि का करुण में और ध का वीभत्स और भयानक में। संवादवाचन में मन्दस्वर से तार (तीव्र) स्वर तक जाना चाहिये और मध्य में समाप्त करना चाहिये।

उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और कम्पित ये चार वर्ण बतलाये गये हैं, हास्य और श्रृंगार में स्वरित एवं उदात्त, वीर, रौद्र एवं अद्‌भुत में उदात्त एवं कम्पित, तथा करुण, वीभत्स और भयानक में अनुदात्त स्वरित एवं कम्पित से प्रस्तुति करनी चाहिये। स्थान (बोलने के स्थान कठ–वक्ष आदि) के उच्च, नीच, मध्यम उच्चनीचीमय ये चार धर्म हैं। इनके प्रयोग से अभीष्ठार्थ की अभिव्यक्ति की जा सकती है। वाचिक अभिनय में काकु के प्रयोग का बहुत महत्त्व है, काकु के द्वारा एक ही शब्द या वाक्य से अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति की जा सकती है, शब्द वही रहते हैं परन्तु अर्थ बदल जाते हैं। नाट्य–संवाद वाचन में स्वर का उतार–चढ़ाव तथा बालने की शैली का महत्त्व है, इसे अंलकार कहा जाता है। पाठ्य या वाचन संबंधी चर्चा में नाटक के गेय अंश और संवाद अंश की प्रस्तुति की भिन्नता का निर्देश भी दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि भरत के और अभिनव गुप्त के समय में भी वाचिक अभिनय में वाचन और गायन दोनों ही सम्मिलित थे। भरत का विधान है कि व्याकरण की त्रुटियों से युक्त संवाद न बोले जायें और छंद भंग न किया जाये। अर्थ के अनुसार जहाँ विराम देना विहित हो वहीं रूकना चाहिए, छंद के अनुसार नहीं। आनंदमय, वीरतापूर्ण संवादों को उच्चस्वर और तीव्र गति से तथा करुण शब्दों को धीमी गति से बोलना उचित होगा। हस्तमुद्राओं के समय विराम नेत्रगतियों से जुड़ा हुआ और अर्थ के अनुरूप होना चाहिए, इसी प्रकार शस्त्रचालन के समय भी उच्च शैली दूरस्थ व्यक्ति से बोलने आश्चर्य प्रकट करने, भयभीत करने अथक विलाप में होता है, मंद्र निराशा, दुर्बलता, चिंता, आकांक्षा, घायल होने अथवा मूर्च्छित होते समय या रहस्य कथन के लिए प्रयुक्त होती है, नीची शैली मंद्र से धीमी होती है, सामान्य स्थिति में अथवा बीमारी आदि में अपनाई जाती है। द्रुत गले से तेजी से निकलती है, भय सरदी–बुखार की अभिव्यक्ति करती है। विलंबित द्वारा बहुत धीमे गले से प्रेम, करूणा, चिंता, ईर्ष्या प्रकट की जाती है तथा लज्जा आदि भावों की अभिव्यक्ति भी हो सकती है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1.4.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए -
   (क) वाचिक अभिनय से क्या आशय है?
   (ख) वाचिक अभिनय के कितने वर्ण बताए गए हैं?
   (ग) नाट्य-संवाद में किसका महत्त्व है?
2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -
   (क) व्याकरण की त्रुटियों से युक्त संवाद बोले जाएँ। (सही/गलत)
   (ख) वाच्य नाट्य का शरीर है। (सही/गलत)
   (ग) वाचिक अभिनय के चार वर्ण बताए गए हैं। (सही/गलत)
   (घ) वाचिक अभिनय में काकु के प्रयोग का कोई महत्त्व नहीं है। (सही/गलत)
3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -
   (क) नाट्यशब्दों की वाच्य रूप में परिणति.....द्वारा होती है। (अभिनेता/निर्देशक)
   (ख) जहाँ.....देना विहित हो वहीं रुकना चाहिए। (विराम/समय)
   (ग) भरत और .....के समय में भी वाचिक अभिनय में वाचन और गायन दोनों ही सम्मिलित थे। (भट्टाचार्य/अभिनव गुप्त)

1.5 आंगिक अभिनय

भरत ने आंगिक अभिनय का विवेचन अत्यंत विस्तार से चार अध्यायों में किया है। पहले मुखज, शरीर और चेष्टाकृत तीन विभाजन करके अंग, उपांग एवं प्रत्यंग के अभिनयों को विश्लेषित किया है, फिर नृत्तगतियो, चारी एवं गतिप्रचार का वर्णन करते हुए आंशिक अभिनय संबंधी रंगमंच रूढ़ियों को स्पष्ट किया है। अंग छः हैं शिर, हस्त, कटि, वक्षस्थल, पार्श्व एवं चरण। उपांग हैं नेत्र, भ्रू, नासा, अधर, कपोल एवं चिबुक। इनका अभिनय भावस्थितियों एवं रस व्यंजना से जुड़ता है। विवेचन किया गया है कि किस विशिष्ट भावदशा में दुख का रंग कैसा हो, नेत्र की रसदृष्टि क्या हो, भृकुटि, ग्रीवा एवं कपोल आदि के कंपन किस प्रकार के हों, हस्तमुद्रा कैसे हो कितनी हो, वक्षस्थल ऊर्जस्वित हो या नत, पार्श्व की स्थिति कैसी हो चरणों में चंचलता हो या विश्रान्तिभाव। इसके विस्तृत विवरण से सूक्ष्माति–सूक्ष्म भावदशा और संबंधित रस की अभिव्यक्ति का अत्यन्त विस्तृत एवं सूक्ष्म चित्र सामने आता है। भरत के आंगिक अभिनय विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि आंगिक अभिनय में प्रदर्शित समस्त शारीरिक प्रतिक्रियाएँ मानव के मनोभावों की प्रति छवियाँ हैं। भरत के अंगाभिनय वर्णन की विशिष्टता यह है कि एक–एक मुद्रा, चेष्टा, अंगों के मोड़ एवं झुकाव अलग–अलग अंगों का अभिनय न रहकर एक संपूर्ण शरीर चित्र बन जाता है जो उपयुक्त रस और भाव की अभिव्यक्ति करता है। अंगाभिनय को भावदशाओं से जोड़ना भरत के विश्लेषण की विशेषता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

शिर की तेरह गतियाँ बताई गई हैं, और दृष्टियाँ छत्तीस होती हैं। आठ रस से संबंधित आठ स्थायी भावों से और बीस व्यभिचारी भावों से। इसी तरह पुतली, पलक, ग्रीवा, भवों एवं कपोलों ठोड़ी की गतियाँ बताई गई हैं।

शरीर अभिनय में हस्त अभिनय सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। हस्तमुद्राओं के 24 अलग–अलग प्रयोग हैं और 13 सम्मिलित। गतिप्रचार की चर्चा, भी विस्तार से की गई है, अभिनेता के गतिविधान से नाट्य रस, नाट्य पात्र का व्यक्तित्व कथानक की स्थिति और मंच विभिन्न स्थलों का अस्तित्व प्रकट होता है। विवरण से लगता है कि गतिविधान शैलीबद्ध हुआ करता था। चारी के संयोग से मंडल बनते हैं, विभिन्न अंगो–प्रत्यंगों की अभिनय मुद्राओं के मेल से कोण बनते हैं, अनेक कारणों के मेल से अंगहार बनते हैं, करण एक सौ आठ हैं और अंगहार बत्तीस। भरत के अनुसार आंगिक अभिनय के तीन पक्ष हैं– शाखा, अंकुर एवं नृत्त। अंकुर मूकाभिनय के लिए प्रयुक्त है और नृत्त अंगहारों पर निर्भर है। शाखा प्रमुखतः हस्तमुद्राओं से जुड़ता है। आंगिक अभिनय में भरत ने पहले मुखाभिनय का विवेचन किया है क्योंकि मुख, भावों और रसों की अभिव्यक्ति का आधार है।

आंगिक अभिनय का दूसरा पक्ष है शरीर, इसके अन्तर्गत हाथ, वक्षस्थल, पार्श्व, कमर एवं पैरों के अभिनय बताये गये हैं। शरीर अभिनय में हस्त अभिनय सबसे महत्त्वपूर्ण है। हस्तमुद्राओं के 24 अलग–अलग और तेरह सम्मिलित (दोनों हाथों के मिले हुए) प्रयोग बताये हैं। हाथों की तीन प्रकार की गतियाँ और भी हैं उत्तान (ऊपर की ओर), अधिमुख (नीचे की ओर) और पार्श्वग (पार्श्व में) हस्तमुद्राओं के साथ उपयुक्त मुखाभिनय भी होना चाहिए। श्रेष्ठ अभिनय में हाथों की तीव्र गतियाँ कम होती हैं, मध्यम में कुछ अधिक, निम्नस्तर के अभिनय में हस्ताभिनय का बहुत प्रयोग होता है।

चारी : कमर के नीचे की गतियों को चारी कहते हैं, दोनों पैर की सम्मिलित गति को करण कहते हैं, तीन करणों को मिलकर खंड होता है और तीन या चार खंडों से मंडल होता है चारी का उपयोग नृत्त में तो होता ही है नाट्य में भी इसका उपयोग बताया गया है अनेक करणों के मेल से अंग–हार बनते हैं, करण एक सौ आठ हैं और अंगहार बत्तीस। गति–प्रचार की चर्चा विस्तार से की गई है। अभिनेता के गतिविधान से नाट्य रस, नाट्यपात्र का व्यक्तित्व, कथानक की स्थिति और मंच पर अलग–अलग स्थानों को दिखलाया जाता है।

गतिविधान शैलीबद्ध रहता होगा। विभिन्न रस एवं भाव स्थितियों में गति कैसी हो इसका विस्तृत विश्लेषण प्रेमी की गति, कुपित व्यक्ति, योद्धा एवं शोकाकुल की गति सभी के अलग–अलग रूप बताये गये हैं। राजा अथवा संन्यासी, मंत्री एवं व्यापारी की गति के मूल अंतर स्पष्ट किये गये हैं। इसके अतिरिक्त निश्चित शैली बद्ध गतिविधान वर्णित है, जैसे पर्वतारोहण या दोला की गति अर्थात् मंच पर पर्वत या दोला नहीं है और गति से ही उनकी अभिव्यक्ति की जायेगी। स्त्रियों की गतियों का विवरण अलग से दिया गया है, स्त्रियों को तीव्र अंगहार अथवा चारी नहीं करना चाहिये। बैठने की विभिन्न मुद्राएँ भी वर्णित हैं। नाटक दो प्रकार के हैं सुकुमार (नाटक प्रकरण, भाव, वीथी, अंक) एवं आविद्ध (डिम, समवकार व्यायोग, ईहा भृग)। आविद्ध में स्त्री पात्र कम होते हैं, लगभग होते ही नहीं एवं आवेग पूर्ण अंगहारों का प्रयोग होता है और सुकुमार में कोमल गतियों का।

1.5.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए -

   (क) भरतमुनि ने आंगिक अभिनय का विवेचन कितने अध्यायों में किया है?

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(ख) शिर की कितनी गतियाँ बताई गई हैं?

(ग) आंगिक अभिनय के उपांगों के नाम बताएँ।

2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -

(क) नाट्यशास्त्र में अंग, उपांग एवं प्रत्यंग के अभिनयों को विश्लेषित किया गया है। (सही/गलत)

(ख) अंगाभिनय को भावदशाओं से जोड़ना भरत के विश्लेषण की विशेषता है। (सही/गलत)

(ग) हस्तमुद्राओं के पचास अलग-अलग प्रयोग हैं। (सही/गलत)

(घ) आंगिक अभिनय का दूसरा पक्ष है शरीर। (सही/गलत)

3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -

(क) कमर के नीचे की गतियों को.....कहते हैं।(चारी/पारी)

(ख) आविद्ध में.....पात्र कम होते हैं।(स्त्री/पुरुष)

(ग) आंगिक अभिनय में प्रदर्शित समस्त.....प्रतिक्रियाएँ.....के मनोभावों की प्रति छवियाँ हैं। (मानसिक,पशु/शारीरिक,मानव)

1.6 आहार्य अभिनय

अभिनेताओं की विशिष्ट वेशसज्जा अथवा अंगरचना जो उन्हें अपने–अपने पात्र के अनुरूप बनाये, आहार्य कहलाता है। अभिनवगुप्त का कहना है कि आहार्य नाट्य की भित्ति है जैसे चित्र की रचना भित्ति पर होती है, वैसे ही अन्य अभिनयों से युक्त रूपण आहार्य पर निर्भर है। क्योंकि अभिनेता की वेशसज्जा और अंगरचना नाट्य के रसानुसारी वातावरण एवं पात्र की भाव स्थिति को स्पष्ट करने के लिए पहला सोपान है। उदाहरण के लिए शोक में मलिन वेष और श्रृंगार में उज्ज्वल वेश से विभूषित होकर पात्र रंगभूमि पर आते हैं तब वाचिक और आंगिक और सात्त्विक अभिनयों के योग से वांछित रसानुभूति होती है।

वय एवं प्रकृति के अनुरूप वेष विन्यास रूप से सज्जा एवं अलंकरण से अभिनेता को सज्जित करने के अतिरिक्त रंगमंच पर निर्जीव वस्तुओं एवं सजीव जन्तुओं आदि के योग का विधान, भी आहार्य अभिनय के अन्तर्गत किया गया है, इसी से आहार्य के चार विभाग हैं : पुस्त, अलंकार, अंगरचना एवं सजीव।

1.6.1 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक पंक्ति में दीजिए -

(क) आहार्य अभिनय से क्या आशय है?

(ख) आहार्य अभिनय के विभागों के नाम बताएँ।

(ग) अभिनव गुप्त ने आहार्य अभिनय को क्या कहा है?

2. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए -

(क) शस्त्र प्रयोग दिखावे के लिए होना चाहिए। (सही/गलत)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(ख) वाचिक, आंगिक और सात्विक अभिनयों के योग से वांछित रसानुभूति होती है। (सही/गलत)

(ग) आहार्य अभिनय के दस विभाग बताए गए हैं। (सही/गलत)

3. सही शब्दों को रिक्त स्थान में पूर्ति कीजिए -

(क) अभिनव गुप्त का कहना है कि आहार्य.....की भित्ति है।(नाट्य/साहित्य)

(ख) मंचसज्जा की सामग्री को .....कहा है।(स्रोत/पुस्त)

(ग) आहार्य अभिनय के .....विभाग है।(सात/चार)

1.7 सारांश

अभिनय-नाटक, रूपक या दृश्यकाव्य का प्रधान तत्त्व है। समस्त कथा-वस्तु, अर्थों और भावों का प्रकाशन अभिनय द्वारा ही किया जाता है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार अभिनय के साधनों और रूपों में परिवर्तन और विकास होता रहता है। आजकल वैज्ञानिक साधनों के उपलब्ध हो जाने से अनेक अर्थों और स्थितियों का दिग्दर्शन इनके द्वारा कराया जा सकता है और उनके संकेतात्मक साधनों की अब आवश्यकता नहीं। उसी प्रकार अभिनय के रूपों और संकेतों में भी बहुत परिवर्तन हो गया है। उदाहरण के लिए स्वागतभाषण, जनांतिक, अपवारित, आकाशभाषित आदि के अभिनय अब व्यर्थ हो गए हैं, क्योंकि इनको रंगमंच की व्यवस्था या अन्य वैज्ञानिक साधनों के द्वारा प्रकट किया जा सकता है। मुख्य रूप से अभिनय से तात्पर्य उन समस्त क्रियाओं एवं चेष्टाओं से है, जिनसे नाटक का अभिप्रेत अर्थ अत्यंत प्रभावकारी रूप में दर्शकों के समक्ष प्रकट हो जाए। इस प्रकार अभिनय की एक विकट और संगीन शास्त्रीय पद्धति है, जिसके निर्वाह के लिए लंबे अर्से की आवश्यकता है।

1.8 अभ्यास प्रश्न

1. अभिनय का स्वरूप बताते हुए उसके प्रकारों का विवेचन कीजिए।
2. नाटक में अभिनय के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
3. वाचिक तथा आंगिक अभिनय का विश्लेषण करते हुए इसके अंतर को स्पष्ट कीजिए।
4. सात्विक अभिनय से क्या आशय है? इसके महत्त्व को प्रतिपादित कीजिए।

1.9 संदर्भ-ग्रंथ

1. *हिंदी नाट्यशास्त्र* - सुधा रस्तोगी
2. *भरत और उनका नाट्यशास्त्र* - डॉ. ब्रजवल्लभ मिश्र
3. *भरत और भारतीय नाट्यकला* - डॉ. सुरेंद्रनाथ दीक्षित
4. *रंगदर्शन* - नेमिचन्द्र जैन
5. *नाटक और रंगमंच* - डॉ. सीताराम झा 'श्याम'

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

इकाई-4

पाठ-1
आशु अभिनय और थिएटर गेम्स का विस्तृत परिचय

डॉ.प्रतिभा राणा
श्रद्धानन्द कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय,
सम्पादिका-डॉ. सीमा जैन

रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 आशु अभिनय
1.2.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना
1.3 आशु अभिनय : आवश्यक बिंदु
1.3.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना
1.4 थिएटर गेम्स
1.4.1 बोध प्रश्न
1.5 थिएटर गेम्स : प्रकार एवं उपयोगिता
1.5.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना
1.6 सारांश
1.7 निष्कर्ष
1.8 अभ्यास प्रश्न
1.9 सन्दर्भ-ग्रन्थ

1.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी निम्नलिखित करने में सक्षम होंगे:

- अभिनय के प्रकार और उसकी तैयारी से अवगत होंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- अभिनय केवल रिहर्सल के बाद किया गया प्रदर्शन नहीं इसे 'आशु अभिनय' की बनावट के द्वारा जानेंगे।
- आशु अभिनय या 'इंप्रोवाइजेशन' के महत्त्व से परिचित होंगे।
- अभिनय-कला में थिएटर गेम्स की भूमिका और महत्त्व को जानेंगे।
- नाट्य-प्रशिक्षण के समय खेले जाने वाले विभिन्न थिएटर गेम्स से परिचित होंगे।

1.1 प्रस्तावना

सीखने और सिखाने की प्रक्रिया में नाटक का विशेष महत्त्व है।जो बात लाख बताने पर भी ध्यान में नहीं रहती वो देख कर स्थायी रूप से स्मृति पर अंकित हो जाती है। जिसे 'खेल-खेल में नाटक' या 'नाटक में खेल' कह सकते हैं। खेल के द्वारा मन और मस्तिष्क गतिशील होता है। रंगमंच प्रयोग और संभावनाओं का नाम है।आशु नाटक त्वरित सोचकर किया जाने वाला अभिनय है। जब मन-मस्तिष्क स्वस्थ होगा तभी विचारने की क्षमता भी अधिक विकसित होगी। रंगमंच बहुआयामी कलात्मक विधा है जिसके द्वारा शिक्षा भी दी जाती है। थिएटर गेम्स रंगमंच को सीखने और समझने का असरदार जरिया है।

1.2 आशु अभिनय

आशु अभिनय बिना पूर्व तैयारी के प्रस्तुत किए जाते हैं। आशु अभिनय त्वरित रूप में किसी भी पद,भाव या विचार को मुख मुद्राओं एवं शारीरिक गतिविधियों द्वारा प्रस्तुत करना है।आशु अभिनय का मुख्य उद्देश्य भाषा, संचालन गति आदि को कल्पना और भावात्मक स्मृति के माध्यम से ध्यान केंद्रित करते हुए दर्शकों तक पहुँचाना है।जिसमें शरीर के विभिन्न अंग - हाथ, पैर, आँख, पदचाप, भौंह, मुहँ, सिर, कमर, पदचाप आदि का संचालन करते हुए भावों को अभिव्यक्त किया जाता है। इसमें किसी भी विशेष परिस्थिति में अपने मस्तिष्क में उपजे भाव,विचार एवं बुद्धि का संतुलित उपयोग करते हुए अभिनय किया जाता है। कुलमिलाकर अभिनेता द्वारा अभिनेय दक्षता का सही मायनों में प्रदर्शन उसके द्वारा की जाने वाली मस्तिष्क त्वरित क्रिया ही आशु अभिनय है।

आशु अभिनय करते समय अभिनेता को इसके तीन चरणों - आरंभ,विकास और अंत को दिमाग में रखना चाहिए। क्योंकि यह त्वरित बुद्धि और क्रिया का अभिनय है तो उसको करते समय उसी पर ध्यान देने की आवश्यकता रहती है। इसमें भावनाओं की बजाय दृढ़ता

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

की आवश्यकता है। स्तानिस्लावास्की के शब्दों में "सपाट भाव कला का दुश्मन है।" आशु अभिनय के बारे में पी.एम.अरसोव का मानना है- " हमेशा एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य पर काम करो। उद्देश्य की मौजूदगी सरल शारीरिक क्रिया को जटिल मनोवैज्ञानिक क्रिया से जोड़ती है। इस संबंध की खोज सबसे पहले स्तानिस्लावास्की ने अभिनेता की कला की स्थूल प्रकृति के रूप में की थी। जो शुरू से अंत तक, अपने सबसे अच्छे व सबसे बुरे स्वरूप में क्रिया की कला (Art of Action) है।" (*स्टैनिस्लावस्की के अभिनय सिद्धांत,मूल कृति*-सोनिया मूर,अनुवाद-सुरेश शर्मा पृष्ठ-31)

आशु अभिनय को 'प्रेजेंस ऑफ़ माइंड' भी कहा जाता है।जिसमे अभिनेता दी गई परिस्थिति या भूमिका को अपनी त्वरित बुद्धि का इस्तेमाल करके निभाता है। वह उस जादूगर की तरह है जो अपनी बुद्धि और स्मार्टनेस के मेल से जादुई प्रभाव की सृष्टि कर देता है। वह मंच पर किसी पात्र का जब अभिनय करता है तब कल्पना का सहारा भी लेता है। यह कल्पना उसकी 'रचनात्मक शक्ति' है जो मन के चल-अचल बिंबों से कुछ नया रचती है।कल्पना का प्रयोग करते हुए अभिनेता/अभिनेत्री अपने अतीत के अनुभव और भविष्य की सम्भावनाओं को जोड़कर कार्य करते चले जाते हैं।

1.2.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' या 'ना' में दीजिए-

(i) आशु अभिनय में भाव,विचार एवं बुद्धि का संतुलित उपयोग किया जाता है। (....)

(ii) स्तानिस्लावास्की ने इसे अभिनेता की कला की स्थूल प्रकृति माना है। (....)

(ख) कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(i) आशु अभिनय को..... भी कहा जाता है। (प्रेजेंस ऑफ़ माइंड,स्थूल कला,सपाट भाव कला)

(ii) .....की मौजूदगी सरल शारीरिक क्रिया को जटिल मनोवैज्ञानिक क्रिया से जोड़ती है। (क्रिया,उद्देश्य,कल्पना)

(iii) आशु अभिनय करते समय अभिनेता को इसके..... चरणों का ध्यान रखना चाहिए। (चार,सात,तीन)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1.3 आशु अभिनय : आवश्यक बिंदु

आशु अभिनय करने से पहले अभिनेता और अभिनेत्री को अपने मस्तिष्क में कार्य योजना बना लेनी चाहिए तभी वह उसे सबके सामने साकार भी कर पाएगा। एक अच्छे आशु अभिनेता/अभिनेत्री को कुछ बातों का ध्यान रखना जरूरी है :-

1. **दी गई परिस्थिति** - दी गई परिस्थिति अथवा प्रदत्त परिस्थिति का ज्ञान या समझ होनी बहुत ज़रूरी है।क्योंकि जब तक कलाकार को यही नहीं मालूम होगा कि उसे क्या करना है तब तक वह आगे नहीं बढ़ पाएगा। अमूमन यह स्थिति सभी के साथ होती है इसीलिए कार्य,उसकी भूमिका का ज्ञान होना जरूरी है। प्रस्तुति देते समय नाटक एक लय में चलता है,नाटक को धारा-प्रवाह चलाना अभिनेता की जिम्मेदारी है।प्रस्तुति देते समय संवाद भूलने का उसके पास अवकाश नहीं होता लेकिन जब दो या दो से अधिक पात्र अभिनय कर रहे होते हैं तब एक के द्वारा दूसरे की यह गलती 'कवर' की जा सकती है। ऐसे गलती न हो इसके लिए अभिनेता/अभिनेत्री द्वारा अभ्यास आवश्यक है।

2. **कल्पना -** आशु अभिनय का प्राणतत्त्व कल्पना है। इसके अभाव में 'आशु अभिनय' मात्र अभिनय रह जाएगा जो निर्देशक के निर्देशों द्वारा संचालित होता है।इस बारे में प्रसिद्ध रशियन रंग-निर्देशक स्तानिस्लावास्की बहुत महत्त्वपूर्ण विचार रखते हैं- "अभिनेता या तो अपनी स्मृति जगत में या अपनी कल्पना में कुछ देखता है। वह कुछ समय के लिए स्वप्न में जीता है।तभी वह पूछे गए सवाल का ज़वाब दे पाता है। यही प्रक्रिया उस क्षण तक दूसरे,तीसरे और चौथे सवालों तक चलती रहती है।जब तक कि वह प्रसंग के अनुरूप पूर्ण चित्रमाला नहीं बना लेता। एक बार जब यह चित्रमाला निर्मित हो जाती है तो वह उसके बुलाने पर दूसरी बार,तीसरी बार,बार-बार आती रहती है। उसकी स्मृति पटल पर वह उतनी ही गहराई से अंकित हो जाती है और फिर अभिनेता उसे उतनी ही गहराई से रंगमंच पर जीता है।" (*'आशुअभिनय : टेक्स्ट से व टेक्स्ट से परे'* पृष्ठ-164)

   यह कल्पना तीन तरह की होती है और उसी के अनुसार कार्य भी करती है जैसे **अंत:प्रेरित कल्पना** बहुत आसानी से उत्पन्न होकर पूरे अभिनय के समय तक सक्रिय रहती है, **बाह्य प्रेरित कल्पना** पहली से अलग है। वह सहज रूप की बजाय उकसाने

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

या प्रेरित करने पर जागती है। जबकि अभिनय के लिए कल्पना का तीसरा प्रकार **अप्रेरित कल्पना** है। जैसाकि इसके नाम से ही स्पष्ट है यह पूरी तरह से मृत होती है जिसे जगाना संभव नहीं है।

3. **भावात्मक स्मृति**- यह भी कल्पना का ही एक हिस्सा मानी गई है। आशु अभिनय करते समय अभिनेता/अभिनेत्री जब प्रदत्त परिस्थिति पर विचार करते हैं तब भावात्मक स्मृति सक्रिय होती है। कलाकार इस स्मृति के आधार पर अपने जीवन से जुड़ी किसी घटना से पुन: जुड़ता है। फिर उस घटना को दी गई परिस्थिति से जोड़कर वह भाव मंच पर प्रस्तुत कर देता है।

4. **ध्यान केंद्रित करना -** आशु अभिनय के लिए जितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका कल्पना की है उतना ही महत्त्व 'ध्यान केन्द्रीकरण' का है। इसे योग में समाधि या मेडिटेशन कहते हैं लेकिन आशु अभिनय का यह मेडिटेशन थोड़ा सा अलग है।इसमें एक स्थान पर बैठकर ध्यान केन्द्रीकरण नहीं होता। बल्कि मंच से पहले और फिर मंच पर सारी क्रियाओं को ध्यान में रखकर आशु अभिनय को गति दी जाती है।

5. **मंचीय कार्यव्यापार** - आशु अभिनय से पहले मंच पर जो भी कार्यव्यापार होगा उससे सम्बंधित क्रियाओं का ज्ञान और ध्यान आवश्यक है। रंगमंच पर जो भी अभिनय कार्य हो,क्रिया हो वे निरुद्देश्य नहीं होनी चाहिए। इस बारे में स्तानिस्लाव्स्की बहुत जरूरी बात कहते हैं उनके अनुसार -"अभिनय का मूल सूत्र है कि अभिनेता द्वारा मंच पर कुछ न कुछ किया जाय,वह चाहे बाहय हो या आंतरिक। रंगमंच पर दौड़ने के लिए नहीं दौड़ना चाहिए,स्वयं को दुखी दिखाने के लिए नहीं दुखी बनाना चाहिए। रंगमंच पर कुछ भी सामान्य नहीं होता, वहाँ होने वाली सभी गतियों के पीछे,सभी कार्य-व्यापारों के पीछे कोई न कोई उद्देश्य निहित होता है।" आशु अभिनय : (*'टेक्स्ट से व टेक्स्ट से परे'* पृष्ठ-165)

6. **रचनात्मकता -** आशु अभिनय का कलाकार हो,या कोई भी कलाकार हो,निर्देशक हो या नाट्य प्रदर्शन से जुड़ा अन्य व्यक्ति सभी के लिए 'रचनात्मक' ' या 'क्रिएटिव' होना आवश्यक है। एक ही ढंग,एक ही तरीका अक्सर बोरियत को जन्म देने लगता है।प्रस्तुति और अभिव्यक्ति में समय-समय पर सृजनात्मक परिवर्तन करने से रचनात्मकता बनी रहेगी। इससे कलाकार को तो अच्छा लगेगा ही, साथ में दर्शक भी आनंद ले सकेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

7. **आत्मविश्वास -** अभिनेता/अभिनेत्री के पास आत्मविश्वास का संबल होना बहुत आवश्यक है। अपने आप पर यह भरोसा प्रस्तुति को सफल और असफल बनाने की ताकत रखता है। आशु अभिनय में अपनी भूमिका तैयार करने के लिए कलाकार के पास निश्चित समय होता है। उसी समय में उसे चिंतन, मनन , कार्ययोजना सब पर ध्यान केंद्रित करना होता है।तब आत्मविश्वास की संजीवनी ही उसकी प्रस्तुति को किनारे लगाती है। अभिनेता को अभिनय करते समय अपने ऊपर पूरा भरोसा करना होगा तभी दर्शक भी उस पर विश्वास कर पाएगा। चूँकि हम सभी जानते हैं रंगमंच पर जो भी प्रदर्शित हो रहा है वह सत्य तो नहीं लेकिन सत्य का आभास है। फिर यह आभास कलाकार द्वारा ही दर्शक तक पहुंचेगा।

आशु अभिनय मंच पर ही नहीं पूर्वाभ्यास की प्रक्रिया में भी उपयोगी भूमिका निभाता है।यह प्रक्रिया तब अपनाई जाती है जब नाट्य-प्रस्तुति के लिए पर्याप्त समय मिलता है। पूर्वाभ्यास के दौरान आशु अभिनय दो तरह से किया जाता है जिसे **पाठ केंद्रित** और **गैर पाठ केंद्रित** कहा जा सकता है। **पाठ केंद्रित आशु अभिनय** में निर्देशक अभिनेताओं को ऐसा करने के लिए निर्देश देता है जिसे 'इम्प्रोवाइजेशन' कहा जाता है। इसमें अभिनेता/अभिनेत्री पाठ को यथावत रूप में रखते हुए उसमें मौजूद रखते हुए विविध अर्थछवियों को प्रस्तुत करता है। जिसमें संवादों की अलग-अलग तरह से प्रस्तुति होती है। निर्देशक आशु अभिनय की इन प्रस्तुतियों का अवलोकन करके अपनी राय अभिनेता को देता है फिर अभिनेता उस परिस्थिति को मंच पर प्रदर्शित करता है। **गैर पाठ केंद्रित आशु अभिनय** की प्रक्रिया का प्रयोग निर्देशक द्वारा तब किया जाता है जब वह स्क्रिप्ट को अपेक्षित परिवर्तन के साथ पुन: बनाना चाहता है। इसके लिए पाठ नहीं बल्कि कथा में मौजूद परिस्थितियाँ महत्त्वपूर्ण होती हैं। अक्सर लोकनाट्य शैलियों में इसका प्रयोग किया जाता है। आज नाट्य-प्रस्तुति के लिए होने वाले पूर्वाभ्यासों में आशु अभिनय के इन दोनों रूपों का प्रयोग किया जा रहा है।

संक्षेप में आशु अभिनय की जटिल प्रक्रिया को स्तानिस्लावसकी के निम्न शब्दों द्वारा सरलता से समझा जा सकता है - "तुम्हारी अपनी जिंदगी की वैसी ही संवेदना,जहाँ तक संभव हो वैसी ही परिस्थिति आशु-अभिनय के लिए मूल आधार होनी चाहिए। किसी इंप्रोवाइजेशन को अंजाम देने के पहले उस परिस्थिति की कल्पना करो और उस पर अपना ध्यान केंद्रित करो। सोचो कि किस परिस्थिति में ऐसी घटना हो रही है, तुम ऐसा क्यों कर रहे हो ? यह घटना कहाँ और कब हो रही है? प्रत्येक परिस्थिति में सभी संभावित बारीकियों

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

के बारे में सोचो। विभिन्न परिस्थितियों में अपने आप को रख कर देखो।अपनी कल्पना में उन लोगों को लाओ जिन्हें तुम सचमुच जानते हो।उचित परिस्थिति तैयार करने के बाद जो तुम व्यक्त करना चाहते हो उसके अनुरूप शारीरिक क्रिया की तलाश करो। यह शारीरिक क्रिया तुम्हारे अंदर की भावना के संचार को उत्तेजित कर देगी और तुम मनोवैज्ञानिक शारीरिक रूप से व्यवहार करने लगोगे।" (*स्टैनिस्लावस्की के अभिनय सिद्धांत,* मूल कृति-सोनिया मूर,अनुवाद-सुरेश शर्मा,पृष्ठ-30)

1.3.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग एक पंक्ति में दीजिए।

(i) आशु अभिनय के लिए कल्पना कितनी तरह की मानी गई है?

(ii) पूर्वाभ्यास में आशु अभिनय के कितने प्रकार हैं?

(ख) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए।

(i) पाठ केंद्रित आशु अभिनय में कलाकार यथावत रूप में रखते हुए उसमें मौजूद रखते हुए विविध अर्थछवियों को प्रस्तुत करता है। (सही/गलत)

(ii) रंगमंच पर जो भी प्रदर्शित हो रहा है वह सत्य तो नहीं लेकिन सत्य का आभास है। (सही/गलत)

(iii) रंगमंच पर जो भी अभिनय कार्य हो,क्रिया हो वे निरुद्देश्य नहीं होनी चाहिए। (सही/गलत)

1.4 थिएटर गेम्स

रंगमंच और जीवन में खेलों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हैं। बच्चों के स्वाभाविक विकास के लिए ये आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वान फ्रेंज पियाजे ने तो इन्हें सृजनात्मक विकास से जोड़ा है। वह विकासवादी सिद्धांत (१९६८) की व्याख्या में बच्चों के खेल को वास्तविकता से मुक्त करने का तरीका मानते हैं। खेल में बार-बार दोहराने की प्रक्रिया में क्रियात्मक रूप से सोचना, बुद्धि और स्मरण शक्ति पर जोर डालना,खेल-खेल में कुछ बनाना, कोई जीव-जन्तु बनना,अनेक वस्तुओं का इस्तेमाल करना आदि सभी खेल बच्चे के विकास में साधक बन जाते हैं। इसके अलावा खेल के दौरान हँसना, रोना, लड़ना, चिल्लाना, कूदना, भागना, एक जगह बैठ जाना जैसी क्रियाएँ उसे मानसिक और शरीरिक रूप से सबल बनाती हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

नाटक में खेल के साथ एक शैक्षिक दृष्टि भी जुड़ती है। यह दृष्टि नाटक और रंगमंच के छात्रों को वह अनुभव देती हैं जिससे वे रचनात्मक कौशल को निखार सकते हैं। नाटक में खेल की ज़रूरत और महत्त्व पर निर्देशक **पुंज प्रकाश** बहुत जरूरी बात कहते हैं - "नाटक को अंग्रेजी में ड्रामा या प्ले कहते हैं,प्ले का अर्थ खेल भी होता है और खेलना भी। इसीलिए शायद नाटक खेला जाता है।जब हम अमूमन कोई खेल खेलते हैं तो उसमें होता क्या है? किसी भी खेल से इंसान का शारीरिक अभ्यास तो होता ही है साथ ही दिल और दिमाग भी लगता है। कई लोग नाटक और नाट्य-अभिनय को बॉलीबॉल के खेल के समक्ष मानते हैं.....अभिनेता की तैयारी में कई खेलों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कुछ खेल सीधे के सीधे वैसे ही खेले जाते हैं और कुछ में अभिनय और अभिनेता के शारीरिक,मानसिक व आत्मीय ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए कुछ बदलाव भी किए जाते हैं।" (*'पकवाघर' के बहाने रंग अभ्यास और रंग समुदाय पर कुछ बातचीत,* इंटरनेट से साभार)

थिएटर गेम्स का मुख्य उद्देश्य रंगमंच के छात्रों को अनुभवजन्य सक्रियता प्रदान करना है। उन्हें समाज के प्रति जागरूक और संवेदनशील बनाना भी इन गेम्स का लक्ष्य रहता है। इनके आलावा रचनात्मक सोच को बढ़ाना, छात्रों में आपसी विश्वास पैदा करना, सहयोग और सहभागिता की भावना का विकास करना, तनावपूर्ण परिस्थितियों से निपटना आदि शामिल है। थिएटर गेम्स छात्रों को मनोवैज्ञानिक रूप से मजबूत,स्वयं को अभिव्यक्त और परिष्कृत कर प्रस्तुत करने का अवसर देते हैं। इसमें आपसी बातचीत के द्वारा संकोच और झिझक को दूर किया जाता है जो अच्छा कलाकार बनने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन्हें खेलने के समय आपस में संवाद करने से समूह भावना का विकास भी होता है। खेल के लिए सोचना,विभिन्न योजनाएँ बनाना फिर उनका क्रियान्वयन करना सभी सीखने की प्रक्रिया का जरूरी अंग हैं। थिएटर गेम्स कलाकार को बहुत कुछ सीखने के लिए प्रेरित करते हैं, वह कुछ नया करने में झिझके नहीं यह साहस भी देते हैं। नाट्य-खेल निरंतर बातचीत की प्रक्रिया भी हैं, जहाँ छात्र अपने को अभिव्यक्त करता है ।अरस्तू ने इस प्रक्रिया को 'एलेलोपैथी' नाम दिया है। जहाँ छात्र स्वयं को दूसरे के खांचे में फिट करके अपने को अभिव्यक्त करना चाहते हैं।

1.4.1 बोध प्रश्न

(क) पाश्चात्य विद्वान फ्रेंज पियाजे ने किस बच्चों से संबंधित किस सिद्धांत की व्याख्या की है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(i) समाजवादी सिद्धांत

(ii) विकासवादी सिद्धांत

(iii) जनवादी सिद्धांत

(iv) समन्वयवादी सिद्धांत ( )

(ख) थिएटर गेम्स छात्रों में क्या निर्मित करते हैं?

(i) आत्मविश्वास

(ii) रचनात्मक कौशल

(iii) संवेदनशीलता

(iv) उपरोक्त सभी ( )

(ग) अच्छे कलाकार के लिए क्या आवश्यक है?

(i) धन

(ii) निष्ठा एवं परिश्रम

(iii) उपरोक्त सभी

(iv) उपरोक्त में कोई नहीं ( )

1.5 थिएटर गेम्स : प्रकार एवं उपयोगिता

थिएटर गेम्स के अनेक रूप होते हैं। इनकी प्रैक्टिस निर्देशक समय-समय पर करवाता है। कुछ रंगमंचीय खेल नियमित रिहर्सल आरंभ होने से पहले खेले जाते हैं तो कुछ रिहर्सल के अनिवार्य हिस्से रूप में। कुछ थिएटर गेम्स का परिचय निम्न है-

क्र.स.	खेल का नाम	अवधि	प्रतिभागी	तरीका
1.	आप क्या कर रहे हो ?	5-10 मिनट	1 या अधिक	इसमें छात्र कमरे में सब जगह फ़ैल जाते हैं। कोई रस्सी कूदते, कोई चलते हैं, कोई नृत्य करते हैं। यह सभी क्रियाएँ जल्दी-जल्दी की जाती हैं। जब उन्हें रुकने के लिए 'स्टॉप' बोला जाता है तो उन्हें उसी अवस्था

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

				में फ्रीज रहना होगा।
2.	सुरक्षित हाथ	8-10 मिनट	6 या अधिक	एक जैसी कद-काठी के छात्रों का समूह बना दिया जाता है। किसी एक छात्र को सर्किल में खड़ा करके उसे निर्देश दिए जाते हैं।
3.	पीठ को छूना	5-10 मिनट	6 से अधिक	सभी को बैठने के लिए बोला जाता है। बैठने की अवस्था ऐसी हो जिसमें सभी की पीठ से पीठ मिले। फिर उन्हें उसी अवस्था में खड़ा होना है।जब वो खड़े हो जाएँ तो दोबारा बैठने को बोलना है।
4.	आँख-मिचौली	10 मिनट	10 या अधिक	एक जैसी कद-काठी के हिसाब से छात्रों को बांटा जाएगा। फिर उन्हें एक-दूसरे के सामने इस तरह खड़ा होना है कि पैर की आगे की अंगुलियाँ आपस में मिलें। एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए पीछे होना है,फिर धीरे-धीरे पूर्व अवस्था में लौटना है।
5.	ऊपर उठाना	10 मिनट	5 या अधिक	एक छात्र अपने हाथ ऊपर की तरफ सीधे रखकर खड़ा होगा।उसके अन्य साथी उसे उसी अवस्था में उठाने की चेष्टा करेंगे। यह प्रक्रिया लगातार चलती रहेगी।
6.	ताली के बीच संवाद	10-15 मिनट	8 या अधिक	सभी छात्रों को दो ग्रुप में बाँट दिया जाए। दोनों टीमें एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करेंगी। पहली टीम का नेता दूसरी टीम से कोई भी प्रश्न करेगा उसके अन्य सदस्य लय में वही प्रश्न

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

				दोहराएंगे। दूसरी टीम के ज़वाब की भी यही प्रक्रिया रहेगी।
7.	किसे चुना जाए?	10 मिनट	5 या अधिक	इसमें गेम जब तक समाप्त न हो जाए बोलना मना है। इनका प्रमुख किसी एक छात्र से बोलेगा किसी एक को चुनने को जिसे कंधे पर उठा सके। ग्रुप के सारे सदस्य उसके इर्द-गिर्द घेरा लगाएंगे।
8	कुछ करते हुए कुछ कहना	5-10 मिनट	2 से अधिक	छात्र एक वृत्त के अंदर खड़ा होगा। फिर पहला छात्र अजीब सी हरकत में कुछ भी खाता हुआ अभिनय करेगा। इस खेल की अनेक अवस्थाएँ हैं।
9.	आकार बनाना	5-10 मिनट	2 या अधिक	शिक्षक सभी छात्रों को दो समूह में विभाजित करेंगे। सभी जोड़े अलग-अलग भाव के साथ अलग-अलग दिशा में जाएंगे। अजीब तरह मुहँ-हाथ से तरह-तरह की आकृति इनके द्वारा बनाई जाएगी।
10.	रेखा की पहचान करना	5-10 मिनट	15-20	जब निर्देश देने वाला व्यक्ति संकेत करे तो दोनों समूह एक ही समय में, समान मात्रा में अपनी पंक्तियाँ बोलना शुरू कर देंगे। इसके बीच एक-दूसरे के द्वारा व्यवधान भी डाले जाते हैं। जो टीम सबसे पहले स्लोगन को पहचान लेगी वही विजेता मानी जाएगी।
11.	नेता कौन?अनुमान	5-10	5 से अधिक	इसमें यह जाना जाएगा कि आखिर नेता कौन है,पूरा समूह अपने आगे

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

	लगाना	मिनट		वाले का अनुसरण करता है।वृत्त में पता नहीं कौन आगे है। जैसे ही केंद्र में बैठे व्यक्ति को नेता का पता चलता है तभी खेल खत्म हो जाता है।
12.	मैं भूत नहीं हूँ	10 मिनट से अधिक	8 से अधिक	इसमें भूत के रूप में एक जोर से चिल्लाएगा। अगर छात्र भी आपको देख रहा है तो आप दोनों को 'आ' चिल्लाना होगा। अगर चिल्लाते हुए नीचे गिरे समझो दोनों खिलाडी बाहर हैं। अगला राउंड बाकी बचे छात्रों के साथ होगा। यह खेल तब तक चलता रहेगा जब तक एक भी खिलाडी बचा है।
13.	नाम खेल	15 - 20 मिनट	6 से अधिक	इसमें एक छात्र दूसरे छात्र का नाम पुकारकर उसकी तरफ दौड़ेगा,जिस छात्र का नाम बोला गया है वो तुरंत अन्य छात्र का नाम बोलेगा इस क्रम में वे अपने खड़े होने का स्थान भी परिवर्तित करेंगे। अगर समय रहते कोई छात्र नाम पुकार स्थान नहीं ले पाता वो खेल से आउट माना जाएगा।
14.	गिनती गिनना	5-10 मिनट	4 से अधिक	किसी निश्चित संख्या तक गिनती गिनी जाएगी जिसे जल्दी-जल्दी बोल कर पूरा करना है। अन्य खिलाडियों द्वारा व्यवधान भी डाला जा सकता है।

© DDCE, COL, SOL University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

15.	'कुत्ता और हड्डी' का अभिनय करना	15-20 मिनट	10 से अधिक	इसमें दो टीम बना ली जाएँगी,एक जगह बोतल या रुमाल रख दिया जाएगा। प्रत्येक टीम से एक-एक सदस्य दौड़ेगा जहाँ बोतल या रुमाल रखा हुआ है उसके तीन चक्कर लेगा उसके बाद जल्दी से यह सामान लेकर दौड़ेगा। दूसरी टीम का खिलाडी अगर उसे हाथ से छू लेगा तो आउट माना जाएगा अगर वापिस अपनी टीम में लौट आया तो अंक मिल जाएगा।

इनके अलावा भी बहुत से थिएटर गेम्स हैं जैसे- मज़ाकिया चेहरे बनाना, एक-दूसरे को खींचते हुए अलग होने की कोशिश करना, गेंद से बात करना, हम जानवर हैं, किसी चरित्र का निर्माण करना, अन्ताक्षरी, पहचान कौन, हाथ और पैर ऊपर उठाना, मूर्ति और मूर्तिकार, ताली का मिलान, नंबरों का खेल, अपनी जगह जमना (फ्रीज़), कानाफूसी का अभिनय, मैं कौन हूँ?, स्मृति खेल,भावनाओं को अभिव्यक्त, अलग होने की कोशिश, एक चरित्र बनाना, अड़चन, भिन्नता, चैनल बदलना, मशीन आदमी आदि ।

उपयोगिता :

इन थिएटर गेम्स के द्वारा विभिन्न लाभ होते हैं। जो रंगमंच के छात्र के व्यक्तित्व को निखारते हैं एवं उसकी कला को कुशलता प्रदान करते हैं-

1. रंगकर्मी छात्र ध्यान केंद्रित करना सीखता है।
2. त्वरित प्रतिक्रिया देना सीखता है।
3. टीम में काम करना।
4. टीम पर विश्वास करना।
5. आत्मविश्वास अपने पर और अपनी टीम पर।
6. किसी के साथ जुड़ने की क्षमता का विकास।
7. अपने साथी कलाकार को प्रतिउत्तर देने की कला का विकास।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

8. आपसी संयोजन का निर्माण।
9. आगे बढ़कर काम करने की प्रवृति का निर्माण।
10. नए वातावरण से पहचान।
11. अभिव्यक्ति-क्षमता का विकास।
12. निरीक्षण करने की क्षमता का विकास।
13. कैसी भी परिस्थिति हो उसका मुकाबला करने का साहस पैदा होना।
14. अपनी उपस्थिति का ज्ञान कराना।
15. विभिन्न आवाजों को पहचान पाना।
16. अपने में अपने आप को खोज पाना।
17. अपने भावों और भावनाओं की पहचान करना।
18. अपनी आवाज़ को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता का विकास।
19. सृजनात्मकता को बढ़ावा।
20. सतर्कता एवं स्वाभाविकता में तालमेल बैठाना।

संक्षेप में थिएटर गेम्स या रंगमंच के खेल-अभ्यास द्वारा विद्यार्थी के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास होता है। वह मन, बुद्धि, हृदय, शारीरिक गतिविधि के समन्वय को लेकर आगे बढ़ता है।

1.5.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अधिकतम एक पंक्ति में दीजिए-

(i) 'नाम खेल' में कितने प्रतिभागी हो सकते हैं?

(ii) 'मैं भूत नहीं हूँ' खेल की अधिकतम अवधि कितनी है?

(ख) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए-

(i) 'गिनती गिनना' खेल में गिनती के दौरान साथी खिलाडियों द्वारा व्यवधान डाला जाता है। (सही/गलत)

(ii) थिएटर गेम्स के द्वारा अभिव्यक्ति क्षमता का विकास नहीं होता? (सही/गलत)

(iii) थिएटर गेम्स द्वारा आपसी तालमेल का निर्माण होता है। (सही/गलत)

(iv) रंगकर्मी छात्र ध्यान केंद्रित करना सीखता है। (सही/गलत)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1.6 सारांश

आशु अभिनय में शरीर के विभिन्न अंगों हाथ, पैर आँख, पदचाप, भौंह, मुहँ, सिर, कमर, पदचाप आदि का संचालन करते हुए भावों की अभिव्यक्त की जाती है। आशु अभिनय को 'प्रेजेंस ऑफ़ माइंड' भी कहा जाता है। जिसमे अभिनेता दी गई परिस्थिति या भूमिका को अपनी त्वरित बुद्धि का इस्तेमाल करके निभाता है। इसमें अभिनेता और अभिनेत्री को अपने मस्तिष्क में कार्य-योजना बना लेनी चाहिए तभी वह उसे सबके सामने साकार भी कर पाएगा जैसे प्रदत्त परिस्थिति का ज्ञान या समझ,कल्पना का सृजनात्मक प्रयोग, भावात्मक स्मृति, ध्यान केन्द्रीकरण आशु अभिनय को गति देता है, मंचीय कार्यव्यापार संबंधी क्रियाओं का ज्ञान और ध्यान आवश्यक है। रंगमंच पर जो भी अभिनय कार्य हो, क्रिया हो वे निरुद्देश्य नहीं होनी चाहिए, प्रस्तुति और अभिव्यक्ति में रचनात्मकता होना, आत्मविश्वास का संबल होना बहुत आवश्यक है। अपने आप पर यह भरोसा प्रस्तुति को सफल और असफल बनाने की ताकत रखता है। पाठ केंद्रित और गैर पाठ केंद्रित आशु अभिनय रिहर्सल में सहायक बनता है।

नाटक में खेल के साथ एक शैक्षिक दृष्टि भी जुड़ती है। यह दृष्टि नाटक और रंगमंच के छात्रों को वो अनुभव देती हैं जिससे वे रचनात्मक कौशल को निखार सकते हैं। थिएटर गेम्स का मुख्य उद्देश्य रंगमंच के छात्रों को अनुभवजन्य सक्रिय करना है। उन्हें समाज के प्रति जागरूक और संवेदनशील बनाना भी इनका कार्य है। थिएटर गेम्स के द्वारा छात्रों को मनोवैज्ञानिक रूप से मजबूत, स्वयं को अभिव्यक्त और परिष्कृत कर प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाता है। ये कलाकार को बहुत कुछ सीखने के लिए प्रेरित करते हैं, वह कुछ नया करने में झिझके नहीं यह साहस भी देते हैं। इन गेम्स के अनेक प्रकार हैं उन्हें तरह-तरह से खेला जा सकता है।

1.7 निष्कर्ष

आशु अभिनय अभिव्यक्ति का त्वरित रूप है जो पूरी तरह तत्काल की प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है। इसके द्वारा कलाकार बहुत कुछ सीखता और निखारता है। इसे एक अभिनेता की कसौटी भी माना जा सकता है। आशु अभिनय की क्रिया प्रदत्त परिस्थितियों की कल्पना के द्वारा साकार अभिव्यक्ति है। थिएटर गेम्स के द्वारा रंगकर्मी छात्र ध्यान केंद्रित करना सीखता है,त्वरित प्रतिकिया देना सीखता है, टीम में काम करना उस पर विश्वास करना,

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

अपने आत्मविश्वास को बढ़ाना, किसी के साथ जुड़ने की क्षमता का विकास, अपने साथी कलाकार को सहयोग करना, आपसी संयोजन का निर्माण, आगे बढ़कर काम करने की प्रवृति का निर्माण, नए वातावरण से पहचान अभिव्यक्ति क्षमता का विकास होता है। कुल-मिलाकर उसका सर्वांगीण विकास होता है।

1.8 अभ्यास प्रश्न

1. आशु अभिनय से आप क्या समझते हैं?
2. आशु अभिनय कल्पना को उड़ान देता है- स्पष्ट कीजिए।
3. पाठ केंद्रित पूर्वाभ्यास किसे कहते हैं?
4. नाट्य प्रशिक्षण में 'थिएटर गेम्स' की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
5. थिएटर गेम्स के द्वारा आत्मविश्वास कैसे बनता है?

1.9 सन्दर्भ-ग्रन्थ

- देवेन्द्रराज 'अंकुर': *रंगमंच का सौन्दर्यशास्त्र*
- *रंगकर्म*: वीरेंद्र नारायण
- गोविन्द चातक : *रंगमंच कला और दृष्टि*
- लक्ष्मीनारायण लाल : *रंगमंच देखना और जानना*
- रमेश राजहंस : *नाट्य प्रस्तुति एक परिचय*
- सोनिया मूर, हिंदी अनुवाद-सुरेश शर्मा : *स्टैनिस्लावस्की के अभिनय सिद्धांत*
- दिनेश खन्ना : *अभिनय चिन्तन* –स्तानिस्लावास्की, ग्रोतोव्सकी, आर्तो
- *रंग प्रसंग* –अंक 51,अंक 52
- TERRY SCHREIBER : *ACTING*
- Georgios Lykesas,Douka Styliani,Maria Koutsouba,Panteleimon Bakirtzoglou,Giosos Ioannis and Dimitrios Chatzopoulos : *Theatre and the Theatrical Game as Teaching Methods for Greek Traditional Dances*

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

पाठ-2

संवाद वाचन,शारीरिक अभ्यास और सीन वर्क का विस्तृत परिचय

डॉ.प्रतिभा राणा
श्रद्धानन्द कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय,
सम्पादिका-डॉ. सीमा जैन

रूपरेखा

2.0 अधिगम का उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 संवाद वाचन
2.2.1 बोध प्रश्न
2.2 शारीरिक अभ्यास
2.2.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना
2.3 सीन वर्क
2.4.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना
2.4 सारांश
2.5 निष्कर्ष
2.6 अभ्यास प्रश्न
2.7 सन्दर्भ-ग्रन्थ

2.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढकर विद्यार्थी निम्नलिखित करने में सक्षम होंगे:

- लिखित नाटक से मंच पर साकार होने तक की प्रस्तुति प्रक्रिया को जानेंगे।
- प्रस्तुति प्रक्रिया के अंतर्गत संवाद-वाचन बहुत महत्त्वपूर्ण चरण होता है, उसकी प्रक्रिया को समझेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- नाट्य प्रस्तुति अभ्यास से संभव होती है। इसमें कलाकार के शारीरिक अभ्यास से संबंधित जानकारी प्राप्त करेंगे।
- दृश्यबंध और उसके निर्माण की जानकारी 'सीन वर्क' के द्वारा परिचित हो पाएँगे।
- किसी भी नाटक की प्रस्तुति से पहले संवाद वाचन,शारीरिक अभ्यास और सीन वर्क की जानकारी क्यों होंनी चाहिए, ये भी समझ पाएँगे।

2.1 प्रस्तावना

नाटकीय क्रियाकलाप में और प्रस्तुति आलेख (स्क्रिप्ट) के बीच रचनात्मक संबंध ही उसे विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण बनाता है। नाटक को केवल पठित रूप का नाटक न माना जाए अथवा ऐसा माध्यम भी न माना जाए जो कुछ विशेष जन तक सीमित ही हो। एक रचना के रूप में नाटक तभी सफल माना जाता है और; जब उसका मंचन हो। मंच पर साकार होने से पहले नाटक अनेक पड़ावों से गुजरता है। जैसे प्रस्तुति प्रक्रिया की बात होगी तो बात मानव और उससे जुड़ी तैयारी की बात भी होगी। अभिनय ,अभिनेताओं और पार्श्वकर्मियों की तैयारी और जानकारी भविष्य के रंगकर्मियों और रंग-अध्येताओं के लिए लाभकर होगी।

2.2 संवाद-वाचन

नाटक एक दृश्यविधा है और वह तभी सार्थक माना जाता है जब वह रंगमंच पर अभिनीत हो। उसका रंगमंच पर साकार होना ही सार्थकता का मापदंड है। जब तक नाटक अपने लिखित रूप में होता है तब तक वह नाटककार की रचना है। उसको पढ़ने के पश्चात् आने वाली प्रतिक्रिया नाटककार के लिए है, लेकिन जब नाटक नाट्यालेख से प्रस्तुति-आलेख में बदलता है तब नाटककार के साथ-साथ निर्देशक की भूमिका महत्त्वपूर्ण बन जाती है। वह नाटक के चुनाव से लेकर प्रस्तुति के अंतिम दिन तक निरन्तर रंग-प्रस्तुति के सन्दर्भ में कार्यरत रहता है। उसका एक महत्त्वपूर्ण कार्य उचित पात्रों का चुनाव एवं उनकी भूमिकाओं का निर्धारण भी है। जब यह कार्य हो जाता है तब अभिनेता का मुख्य काम संवाद याद करके उनका वाचन करना होता है।

संवाद नाटक को एक विशिष्ट विधा का रूप देते हैं। साहित्य की अन्य विधाओं से नाटक इसीलिए अलग है क्योंकि वह पाठ्य,दृश्य और श्रव्य तीनों रूप में उपलब्ध रहता है। संवादों अर्थात् साथ में बातचीत या सम्भाषण, की अपनी शैली होती है। इस शैली से अभिनेता प्रेक्षक

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

वर्ग को प्रभावित करता है। आदि आचार्य भरतमुनि ने अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में अभिनय पर विस्तार से चर्चा की है और अभिनय के चार प्रकार–आंगिक,वाचिक,सात्विक व आहार्य बताए हैं। भरतमुनि नाट्यशास्त्र के सोलहवें अध्याय में वाचिक अभिनय की विस्तार से चर्चा करते हैं। उनके अनुसार "पाठ्य के प्रयोग में उदात्त,अनुदात्त,स्वरित तथा कम्पित-ये चार प्रकार के वर्ण काम में आते हैं। इनमें से हास्य और श्रृंगार में स्वरित और उदात्त वर्णों के द्वारा पाठ्य का प्रयोग करे। वीर,रौद्र और अद्भुत में उदात्त और कम्पित का प्रयोग करें।"(*'संक्षिप्त नाट्यशास्त्रम'*, हिंदी अनुवाद-राधाबल्लभ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण,पृष्ठ-177) यहाँ वाचिक अभिनय का संबंध संवाद-वाचन से ही है। वह बताते हैं कि संवाद बोलते समय भाव,शब्द और वाणी का तालमेल आवश्यक है। तभी परिस्थितिजन्य रस की उत्पत्ति संभव है। संवाद वाचन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है कि अभिनेता को अपने किरदार और स्थिति का भली-भाँति ज्ञान हो चाहिए। उन्होंने 'नाद' अर्थात् स्वर को विशेष स्थान दिया है, चूँकि इन्हीं के द्वारा भाव-प्रदर्शन संभव बन पाता है। स्वरों के उतार-चढ़ाव की यह प्रक्रिया नियमित अभ्यास के द्वारा ही संभव है। जिसके हेतु पात्र को आरोह-अवरोह,उच्चारण की शुद्धता,पात्र के अनुसार भाषा का प्रयोग एवं नाद का ध्यान रखना आवश्यक है। यह सत्य है कि अभिनेता/अभिनेत्री कितने ही कुशल क्यों न हों लेकिन यदि उनका संवाद-वाचन सुस्पष्ट नहीं है तो प्रेक्षकों को प्रभावित नहीं कर पाएगा। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध रशियन रंग-निर्देशक स्टैनिस्लावस्की विस्तार से बात रखते हैं उनके अनुसार टूटा-फूटा शब्द, जिस शब्द का अंत न हो, ध्वनि और अक्षरों का गलत उच्चारण अधूरे व्यक्ति के समान ही होता है। उन्होंने "बोले गये शब्दों का संग्रह करो" की हिमायत की है। उनके अनुसार "बोलना अभिनय करना है"। क्योंकि हम जब वाचन करते हैं या बोलते हैं तो उससे पहले किसी अन्य की जिससे संवाद कर रहे होते हैं, उसके शब्दों को पहले ग्रहण करते हैं। उसके बाद ही एक बिंब बनाकर बातचीत के क्रम को आगे गति देते हैं। "स्टैनिस्लावस्की ने शब्द (Word) को मनो-शारीरिक क्रिया का शारीरिक पहलू माना है। हमारे मस्तिष्क के बिंब और उपपाठ (Sub-text)-क्रियाओं का मनोवैज्ञानिक पहलू हैं। स्टैनिस्लावस्की के अनुसार, उपपाठ "मानव-भावना का आंतरिक जीवन" है,जो किसी भूमिका के शब्दों के अंदर लगातार प्रवाहित होता रहता है। संवाद में इसका वही काम है जो क्रियाओं में उद्देश्यपूर्ण क्रिया (The through line of actions) का है। शब्द मंच पर किसी लिए गये क्षण का एक हिस्सा भर होते हैं जो इन आंतरिक प्रक्रियाओं के

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

विचार, बिम्ब और शारीरिक अभिव्यक्ति के द्वारा पैदा होते हैं।" (*स्टैनिस्लावस्की के अभिनय सिद्धांत* : सोनिया मूर, हिंदी अनुवाद-सुरेश शर्मा, पृष्ठ-66)

संवादों के नियमित अभ्यास से, अनुकरण करते हुए वाचन से, अभिनय को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। अच्छी आवाज कला और कलाकार दोनों के लिए वरदान है। लेकिन आवाज अच्छी होना ईश्वरीय वरदान हो सकता है पर उसका किस तरह,कब,कैसे प्रयोग करना है यह मानव पर निर्भर है। एक अभिनेता/अभिनेत्री का वाचन पर नियंत्रण होना बहुत आवश्यक है। रंगशाला में प्रस्तुति देते समय उसकी यही कला उसे प्रभावी या अप्रभावी बना सकती है। अन्तिम सीट पर बैठे दर्शक तक आवाज पूरी तरह स्पष्ट और भाव के साथ पहुँचाना कलाकार के लिए चुनौती है। जब अभिनेता/अभिनेत्री प्रेक्षागृह में संवाद बोल रहे होते हैं तब उनका मुख्य ध्येय संवाद में छिपा संदेश और अर्थ सम्प्रेषित करना होता है। संवाद-अदायगी की इस प्रक्रिया को अधिक संप्रेषणीय बनाने के लिए वाचन कला का निरंतर अभ्यास आवश्यक है। इस लगातार अभ्यास से संवाद-वाचन में निखार आता है।

कलाकार संवाद के द्वारा नाटककार और निर्देशक की परिकल्पना को मंच पर साकार करता है। प्रेक्षकों तक नाटक को पहुँचाने का माध्यम अभिनेता है तो उसे संप्रेषणीय बनाने का माध्यम अभिनेता/अभिनेत्री का संवाद-वाचन ही है। संप्रेषण दो तरह से कार्य करता है-शाब्दिक रूप और गैरशाब्दिक, जिसे अशाब्दिक भी कहते हैं। संवाद-वाचन में संप्रेषण के ये दोनों प्रकार मिश्रित रूप में कार्य करते हैं। शाब्दिक रूप में अभिनेता/अभिनेत्री अपनी आवाज के द्वारा संवादों को बोलता है तथा अशाब्दिक माध्यम से संवादों के अनुसार शारीरिक-भाव-भंगिमाएँ तथा क्रियाव्यापार करता है।संवाद-वाचन की प्रक्रिया चार तरह से प्रयोग में लाई जाती है-

1. **तात्कालिक वाचन** : इस विधि का प्रयोग संवाद-वाचन के दौरान सुधार करते रहने की प्रक्रिया में किया जाता है। इसमें अभिनेता/अभिनेत्री निर्देशक के द्वारा दिए गए निर्देशों और अवस्थाओं में चरित्र के अनुसार बोलने का अभ्यास करते हैं।
2. **सुनियोजित वाचन**: इसमें अभिनेता/अभिनेत्री नाटक के पाठ का सुनियोजित तरह से वाचन करते हैं। इसमें नाटक की स्क्रिप्ट के अनुसार ही संवाद-वाचन की प्रक्रिया को तैयार किया जाता है।
3. **पाण्डुलिपि वाचन**: इस प्रक्रिया का केंद्रबिंदु नाटक की पाण्डुलिपि होती है। वाचिक अभिनय हेतु अभिनेता/अभिनेत्री नाटक के पाठ की कॉपी लेकर वाचन का अभ्यास करते हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

4. **स्मृति-वाचन** : इस विधि में अभिनेता स्क्रिप्ट में लिखित अपने संवादों को अच्छी तरह याद करता है। याद करने के पश्चात् प्रदर्शन पूर्व अभ्यास और प्रस्तुति के दिन अपनी स्मृति के आधार पर वाचन करता है।

इस तरह संवाद-वाचन अभ्यास उपरोक्त विधियों द्वारा किया जाता है। लेकिन इन विधियों का प्रयोग करते समय नाट्यपाठ की समझ जरूरी है। प्रभावशाली अभिनय के लिए संवादों को समझना और स्वयं से जोड़ना आवश्यक है। संवाद-अदायगी में दूसरे चरित्र को आरोपित करना होता है। इसके लिए जो चरित्र निभाया जा रहा है संबंधित जानकारी होनी चाहिए। प्रस्तुति शैली की समझ और संवाद-वाचन की कला दोनों मिलकर अभिनय को यादगार बनाते हैं। इस बारे में रंग-निर्देशक दानिश इक़बाल का कथन उल्लेखनीय है-

"अभिनेता की आवाज ऐसी होनी चाहिए कि लोग वाचन और विचारों की अभिव्यंजना के नए स्वरूप को देखकर आश्चर्य चकित हो उठें।अभिनेता को स्वयं अपने वाचन के ध्वनि-विन्यास से संतुष्ट नहीं होना चाहिए,वरन उसे यह भी ध्यान देना चाहिए कि दर्शक समुदाय उसे भली प्रकार सुन रहा है,और जो कुछ भी ध्यान देने योग्य है, उसे ग्रहण कर रहा है। शब्दावली और स्वर-माधुरी का दर्शकों के कानों तक आनायास पहुँचाना अनिवार्य है। रंगमंच पर यदि सफल होना है तो अभिनेता को वाक्-कौशल पर बल देना चाहिए। इसके बाद उन्हें शब्दों की अनुभूति को पहचानना चाहिए।" (*'अभिनेता और वागाभिनय'* : दानिश इक़बाल,रंग प्रसंग,रंग प्रशिक्षण विशेषांक-I, अंक-51,पृष्ठ-110)

संवाद-वाचन पर समुचित ध्यान देना ज़रूरी है। अभिनेता/अभिनेत्री को अपने स्वर की क्षमता का ज्ञान होना परम आवश्यक है क्योंकि इसी के द्वारा वह दर्शक से संबंध स्थापित कर सकेगा। उसे अपने बोलने की पिच,टोन,आवाज की क्षमता,दूरी और अभिव्यक्ति का ज्ञान होना जरूरी है। उपलब्ध साधनों का संवाद-वाचन में कैसे प्रयोग किया जाए इसकी जानकारी अभिनेता को होनी चाहिए, साथ ही किसी भी भटकाव से बचना चाहिए इसके लिए ध्यान का केन्द्रीकरण जरूरी है। ध्यान केन्द्रीकरण से जुड़ी एक आवश्यक बात और भी है कि अभिनेता/अभिनेत्री संवाद-वाचन के दौरान मन को हावी न होने दें बल्कि वाचन की निरंतरता को बनाए रखें तभी वह प्रभावशाली बन पाएगा। यहाँ इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि संवाद-वाचन का अर्थ केवल 'डायलॉग' बोलना या भाषण देना नहीं है। इसका सही अर्थ एक चरित्र को जीना और उसे जीवंत करना है। यह तभी संभव है जब आवाज का सही संतुलन होगा।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

2.2.1. बोध प्रश्न

(क) निर्देशक का संबंध किससे है?

(i) नाट्यालेख

(ii) प्रस्तुति आलेख

(iii) निबंध लेखन

(iv) कहानी लेखन ( )

(ख) संवाद नाटक में क्यों आवश्यक हैं?

(i) गतिशील बनाने के लिए

(ii) पात्रों के चरित्र निर्धारण के लिए

(ii) उपरोक्त सभी

(iii) उपरोक्त कोई नहीं ( )

(ग) संवाद-वाचन में संप्रेषण की कौन सी क्रिया कार्य करती है?

(i) शाब्दिक संप्रेषण

(ii) गैर शाब्दिक संप्रेषण

(iii) उपरोक्त सभी

(iv) उपरोक्त कोई नहीं ( )

(घ) संवाद-वाचन की कौन सी अवस्था में अभिनेता स्क्रिप्ट रखना बंद कर देता है?

(i) पाण्डुलिपि वाचन

(ii) सुनियोजित वाचन

(iii) स्मृति वाचन

(iv) तात्कालिक वाचन ( )

2.3 शारीरिक अभ्यास

भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में अभिनय के जो चार प्रकार बताए हैं उनमें से एक आंगिक अभिनय है। उन्होंने इस अभिनय को छः अंगों वाला माना है। जिसमें सिर, हाथ, कटि, वक्ष, पार्श्व और चरण इन अंगों का उल्लेख है जो छः उपांग के साथ मिलकर आगिंक अभिनय को

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तुत करते हैं। आचार्य भरतमुनि ने अच्छे अभिनेता के लिए शरीर, वाणी और मस्तिष्क ये तीन तत्त्व बताये हैं। शरीर को सबसे पहले साधना है इसलिए स्वाभाविक है कि हम अपने शरीर की भाषा या जिसे देह भाषा भी कहते हैं, के लिए अभ्यास करें। नृत्य में देह भाषा ही है लेकिन निश्चित है। नाटक में एक अभिनेता के पास खुला स्पेस होता है, वो अपनी कल्पनाशीलता से कुछ भी गढ़ पाने में समर्थ होता है किंतु उसके लिए अभ्यास जरूरी है। इनमें सबसे पहला योग है। अभिनेता का शरीर लचीला होना चाहिए जिससे वह चरित्र के अनुसार अपने शरीर को ढाल ले।

भारतीय सन्दर्भों में योग से बढ़कर कोई वॉर्म-अप नहीं हो सकता जो मन और शरीर के अंग सभी को गतिशीलता प्रदान करता है। इस सन्दर्भ में लोकेन्द्र त्रिवेदी का अनुभव पढ़ना और समझना आवश्यक है -"1978 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय आने पर देखा कि यहाँ भी योग कक्षाएँ सुबह-सवेरे दैनिक पाठ्यक्रम का हिस्सा हैं। तब भी यह सोचता था कि हम यहाँ अभिनेता बनने आए हैं तो फिर, वही योग-संगीत का ककहरा क्यों दोहराया जा रहा है।.....उधर कक्षाओं में प्रो. रानाडे, बैरी जॉन, सिसली बैरी ने ध्वनि-उच्चारण के लिए श्वास-प्रश्वास व 5 रेजोनेटर्स पर जब ध्यान केंद्रित करने की सीख दी, तब कुछ-कुछ प्राणायाम का महत्त्व समझ आने लगा। बर्नरखूँ (स्विट्ज़रलैंड के कथकलि-प्रशिक्षु) कथकलि सिखाते समय साँस से, ताल को जोड़कर समझाते तो साँस की गहरी दुनिया थोड़ी-थोड़ी समझने व अभ्यास में लाने की चुनौतियाँ दीखने लगीं, पर तब भी ध्यान केंद्रित नहीं हो पाता था। फिर पीटर ब्रूक के अभिनेताओं के साथ काम करने का अवसर मिला। वो हमारी ही यौगिक तकनीक का प्रयोग कर, हम से बहुत आगे थे।" *('अभिनेता का यौगिक अभ्यास'*, लोकेन्द्र त्रिवेदी, रंग प्रसंग, रंग-प्रशिक्षण विशेषांक-। अंक-51 अप्रैल-जून 2019, पृष्ठ-59)

पाश्चात्य दृष्टि से अभिनय के पाँच अंग स्वीकार किए गए हैं—मुखाभिनय, शरीर अभिनय, गति, वेग और वाणी के द्वारा अभिनय। स्टैनिस्लावस्की के अनुसार मनुष्य की आत्मा के तत्त्वों और शरीर के तत्त्वों को विभाजित नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार "भाव, इच्छाएँ, संवेदना, ध्येय, महत्त्वाकाँक्षा तो साधारण शारीरिक भाव-भंगिमाओं के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।" (*स्टैनिस्लावस्की के अभिनय सिद्धांत* : सोनिया मूर, हिंदी अनुवाद-सुरेश शर्मा, पृष्ठ-24)

आंगिक या कायिक अभिनय की भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि से समीक्षा करें तो दोनों का समाहार सिद्ध होता है। आंगिक अभिनय के लिए, उसकी सफलता के लिए अभिनेता का

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ, सुगठित और आकर्षक होना आवश्यक है। इसके लिए अनेक तरह के शारीरिक अभ्यास योगासन, तैरना, कुश्ती दौड़ना, घुड़सवारी, प्राणायाम जिम्नास्टिक आदि का नियमित अभ्यास आवश्यक है। मन को शांत और एकाग्र रखने के लिए और शारीरिक रूप से गतिमान बने रहने के लिए उपरोक्त शारीरिक अभ्यास आवश्यक हैं।

नाटक में अभिनय के लिए शारीरिक अभ्यास जरूरी है। लगातार अभ्यास और उचित मार्गदर्शन एक अभिनेता को निखारने के प्रेरक तत्त्व हैं। इस बारे में रंग-निर्देशक पुंज प्रकाश कहते हैं–"रंगमंच की दुनिया में जो अनाड़ी है, वह कठिन अभ्यास और उचित मार्गदर्शन के माध्यम से खिलाड़ी की श्रेणी में आ सकता है। लगभग सभी यह मानते हैं कि अभ्यास का कोई विकल्प नहीं है। प्रतिभावान अभिनेता/अभिनेत्री भी अभ्यास के माध्यम से अपनी प्रतिभा को लगातार निखारते हैं। केवल नाटकों के अभ्यास मात्र से किसी भी सजग अभिनेता/अभिनेत्री का काम न तो चला है और ना ही चलेगा।" ('पकवाघर' के बहाने रंग अभ्यास और रंग समुदाय पर कुछ बातचीत, इंटरनेट से साभार) यहाँ पुंज प्रकाश जी का आशय रंगमंचीय अभ्यास से है जिसका महत्वपूर्ण हिस्सा शारीरिक अभ्यास भी है। ये शारीरिक अभ्यास विविध तरह से करवाए जाते हैं जिनमें कुछ व्यक्तिगत और कुछ सामूहिक होते हैं। इन अभ्यासों के द्वारा अभिनेता/अभिनेत्री प्रस्तुति की तैयारी से पहले अपने को तैयार करते हैं। यह उनके लिए 'वॉर्म-अप' की क्रिया है जिससे वे गतिशील होकर अभिनय की तैयारी करें। जॉय मिताई के अनुसार एक तनावयुक्त अभिनेता अपनी रचनात्मक छूट से वंचित हो जाता है। उनके अनुसार शारीरिक अभ्यास में 'वॉर्म अप' का बहुत महत्त्व है जिसे वह व्यक्ति और समूह में बाँटकर करवाते हैं।

पात्र को विभिन्न चरित्रों में स्वयं को ढालने का अभ्यास अभिनय कला का महत्त्वपूर्ण चरण हैं। जिसमें वह नेत्रहीन, बधिर, नशेड़ी, अपाहिज जैसी भूमिकाओं में भी हो सकता है। तब अभिनेता/अभिनेत्री के लिए यह चुनौती होगी कि ऐसी परिस्थिति में उसका कायिक अभिनय कैसा रहेगा। शारीरिक अभ्यास ऐसी ही चुनौतियों से निपटने का कारगर तरीका है। ये अभ्यास के तरीके कलाकार को अभिनय की हर चुनौती से निपटने के लिए तैयार करते हैं। अभ्यास की कुछ क्रियाएँ हैं–

- जहाँ प्रैक्टिस कर रहे हैं वहाँ एकाएक टहलना। अपने साथ कार्य कर रहे अभिनेताओं पर ध्यान देते रहना।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

इस बीच सभी के मध्य कम से कम 4-5 फुट की दूरी भी रहनी चाहिए।

- शारीरिक संतुलन बनाने के अभ्यास करना।इसके लिए हवा में टाँग उठाना, एक टांग पर खड़ा होना, घुटने की तरफ झुकना-मोड़ना, शरीर को आगे की तरफ झुकाना, चक्कर लगाना आदि शामिल हैं।
- कल्पना करना फिर उस कल्पना के अनुसार अभ्यास करना। काल्पनिक विषय के अनुसार अपनी दैहिक स्थिति पर स्वयं को एकाग्र करना।
- सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर को जागृत करने हेतु शरीर के हर भाग को लगातार मोड़ना, झुलाना आवश्यक है। श्वास प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित करते हुए क्रम से गर्दन, कंधा, कमर, कोहनी, घुटना और पैर के जोड़ो पर ध्यान को लगाना।
- शक्ति के लिए कलाबाजी जैसे अभ्यास करवाना।
- स्ट्रेचिंग अभ्यास करवाना।
- ग्रुप में बिना बात किए एक साथ उछलना और कूदना।
- दर्पण क्रीड़ा करना।
- अपनी पाँचों इन्द्रियों को नियंत्रित करने का प्रयास करना।
- सूर्य नमस्कार।
- मन, हृदय, आत्मा और शरीर को बहुमुखी बनाने के प्रयास।
- शरीर में लचीलापन लाने हेतु विविध क्रियाएँ करना।

उपरोक्त बिंदु शारीरिक अभ्यास की कुछ क्रियाएँ हैं। इनके अलावा भी अन्य क्रियाएँ शामिल हैं। इन शारीरिक अभ्यास की ज़रूरत और महत्त्व तथा भारतीय और पाश्चात्य चरण पर रंगकर्मी मुनमुन सिंह बहुत महत्त्वपूर्ण विचार रखती हैं। उनके अनुसार– "वेस्ट अब जिन टॉपिक्स को खंगाल रहा है, वे तो हमारे समक्ष पहले से प्रस्तुत थे।.....क्या भारतीय रंगमंच के लिए यह डिपार्टमेंटलाईजेशन लाभदायक है?....मैं अपने छात्रों को एकाग्र करके सब कुछ बताने में विश्वास रखती हूँ। इससे हम छात्रों की इंटेलीजेंस को अंडरमाइन नहीं करते और उसकी सोच को खुली छूट देते हैं–किसी भी दिशा में इसे इस्तेमाल करने की।" (*देह भाषा से संवाद:* मुनमुन सिंह, रंग प्रसंग, रंग-प्रशिक्षण विशेषांक-। अंक-51 अप्रैल-जून 2019, पृष्ठ-82) वह पश्चिम के 'फिजिकल थिएटर' को अलग नहीं मानती, उनकी राय में थिएटर हमेशा से

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

फिजिकल ही रहा है। उनका यह मानना सही भी है क्योंकि रंगमंच तो मानवीय क्रियाओं का ही रूप है जो मनुष्य द्वारा ही मंच पर आकार पाता है।

कुल-मिलाकर शारीरिक अभ्यास अभिनय के लिए अभिनेता/अभिनेत्री को मानसिक और शारीरिक रूप से मजबूत बनाने की प्रक्रिया है। जिससे वे एकाग्रता संतुलन चरित्रों को ढालना और उनमें ढलना सीखते हैं। वे आने वाली चुनौतियों के लिए सतर्क और अपने को उनका सामना करने के लिए तैयार भी करते हैं।

2.3.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना

(क) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए।

(i) आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में अभिनय के चार प्रकार बताए हैं। (सही/गलत)

(ii) स्टैनिस्लावस्की के अनुसार मनुष्य की आत्मा के तत्त्वों और शरीर के तत्त्वों को विभाजित नहीं किया जा सकता। (सही/गलत)

(iii) शारीरिक संतुलन बनाने के अभ्यास करना आवश्यक नहीं है। (सही/गलत)

(ख) निम्नलिखित शब्दों से रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

(i) आचार्य भरत मुनि ने अच्छे अभिनेता के लिए तीन आवश्यक तत्त्व.....वाणी और मस्तिष्क बताए हैं। (शरीर, व्यवहार, चरित्र)

(ii) रंगमंचीय अभ्यास का महत्त्वपूर्ण हिस्सा.....भी है। (वाचिक, सात्विक, शारीरिक)

(iii) रंगमंच तो ..... क्रियाओं का रूप ही है। (दैवीय, मानवीय, असुरी)

2.4 सीनवर्क

'सीन वर्क' से आशय दृश्य अध्ययन एवं उसकी तैयारी से है। यह नाटक के दृश्य पक्ष यानि प्रस्तुति से जुड़ी वह प्रक्रिया है जिसका संबंध निर्देशक और अभिनेता /अभिनेत्री से है। सीन वर्क में पात्र की भूमिका से संबंधित स्थितियों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है। उसके अनुसार दृश्य निर्माण की तैयारी भी की जाती है। इसे दृश्य बंध का मिला-जुला रूप भी कहा जा सकता है।जैसे दृश्य बंध में दृश्य सज्जा के द्वारा एक सीन को निर्धारित किया जाता है

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उसी तरह दृश्य अध्ययन द्वारा अभिनेता/अभिनेत्री दृश्य का निर्माण करते हैं। दृश्य का यह निर्माण उनकी अभिनय कला द्वारा होता है इसीलिए रिहर्सल या पूर्वाभ्यास की प्रक्रिया सीन वर्क के अंतर्गत ही मानी जा सकती है।

अभिनेता/अभिनेत्री को निर्देशक द्वारा भूमिकाएँ जब वितरित की जाती हैं तब दृश्य के अनुसार अभिनय की परिस्थिति के बिंदु भी दिए जाते हैं। निर्देशक उनके मार्गदर्शक के रूप में उपस्थित रहता है लेकिन पेशेवर अभिनेता/अभिनेत्री के रूप में पहचान बनाने के लिए कलाकार को स्वयं भी बहुत अभ्यास करना चाहिए। दृश्य का निरंतर अध्ययन और अभ्यास उसे स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैसा कि पहले बताया गया कि निर्देशक के द्वारा ही नाटक लिखित से मंचित रूप में आकार पाता है। इसमें निर्देशक हर मोड़ पर मार्गदर्शन करता हुआ कलाकार की प्रतिभा को निखारता है। उसमें यह आत्मविश्वास पैदा करता है कि आप बहुत कुछ कर सकते हैं।

सीन वर्क की प्रक्रिया में अभिनेता/अभिनेत्री को संवाद की परिस्थिति अनुसार अलग-अलग दृश्य तैयार करने को कहा जाता है। अपने साथी अभिनेताओं के संग मिलकर दृश्य विश्लेषण किया जाता है। यह पक्ष सीधे-सीधे अभिनेता/अभिनेत्री को दी गई भूमिका से जुड़ा है। वह स्वयं उसमें क्या जोड़ सकता है, क्या छोड़ सकता है यह उसकी सृजनात्मक प्रतिभा पर निर्भर करता है। निर्देशक द्वारा उनकी अभिनय कला को निखारने का प्रयास किया जाता है लेकिन प्राथमिक और महत्त्वपूर्ण प्रयास अभिनेता/अभिनेत्री का ही होगा। जिसे वे होमवर्क, दृश्य विश्लेषण और पूर्वाभ्यास के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।

प्रस्तुति-प्रक्रिया में जब निर्देशक द्वारा कलाकारों का चयन कर लिया जाता है उसके बाद उन्हें उनकी भूमिका दी जाती है। इसके बाद रिहर्सल की प्रक्रिया चलती है। रिहर्सल सीन-वर्क का अनिवार्य हिस्सा है, यह बात निर्देशक समझता है और वो चाहता है अभिनेताओं/अभिनेत्रियों द्वारा भी यह बात समझी जाए। पूर्वाभ्यास का पहला दिन विशेष महत्त्व रखता है, इस दिन निर्देशक सभी पात्रों को स्क्रिप्ट की एक-एक कॉपी भी देता है। उसे यह भी बताना चाहिए कि किस पात्र को किस स्थिति में रुकना और चलना है। जब वह (अभिनेता/अभिनेत्री) मंच पर आएगा तब कहाँ खड़े होना है, कैसे खड़े होना है, कौन सी रंग-सामग्री का प्रयोग करना है आदि। निर्देशक द्वारा संवाद अदायगी की स्थिति पर भी निर्देश देना आवश्यक है। संवाद-वाचन की तैयारी को देखना, जब संवाद पूरी तरह याद हो जाए और अभिनेता द्वारा स्क्रिप्ट हाथ में रखना छूट जाए तब दृश्य संयोजन की प्रक्रिया आगे बढ़ती

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

है। निर्देशक यह भी ध्यान रखता है पात्रों को अभी जो चरित्र अभिनय के लिए दिया गया है वह उसका सही-सही निर्वाह कर रहा है या नहीं। कही उसके अभिनय में नकलीपन तो नहीं आ रहा। इसके लिए पात्र को दृश्य के अनुसार बहुत अभ्यास करना चाहिए। दृश्य का व्यक्तिगत होना आवश्यक है क्योंकि तभी पात्र अपनी कला में अपेक्षित जोड़-तोड़ करके अपना सर्वोत्तम प्रस्तुत कर पाएगा। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है– जैसे कक्षा में अनेक विद्यार्थीगण होते हैं लेकिन कोई प्रथम,कोई द्वितीय, कोई उत्तीर्ण तो कोई असफल हो जाता है। इसके पीछे छात्र का व्यक्तिगत अभ्यास निर्णायक भूमिका निभाता है। क्योंकि शिक्षक ने तो कक्षा में सभी को समान पढ़ाया होता है। इस तरह सीन-वर्क के दौरान पात्र और उसका व्यक्तिगत अभ्यास ही कुशल अभिनेता/अभिनेत्री बनने के प्रेरक चरण हैं। एक मेहनती अभिनेता जितनी तैयारी अपने सेट पर करता है उससे अधिक अपने घर पर करेगा तभी कुशल अभिनेता/अभिनेत्री दर्जा पाएँगे।

दृश्य अभ्यास में एक दृश्य के अनेक अलग-अलग ड्राफ्ट भी बना लिए जाते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इन वर्गों का आपस में कोई मेल न हो। एक दृश्य के क्या-क्या रूप हो सकते हैं, पात्र अपने अभिनय के द्वारा उसे कितना बेहतर बना सकता है यह अभ्यास से ही पता चलेगा। इमोशनल दृश्य में वह अपनी आँखों के द्वारा क्या वास्तव में संवेदनापूर्ण दृश्य रच पाएगा जिससे दर्शकों की आँखें भी भर आएँ यह अभिनेता के दृश्य अभ्यास पर ही निर्भर करेगा। किसी भी अभिनेता को निश्चित चरित्र या भूमिका की तलाश नहीं करनी चाहिए बल्कि उसे हर किरदार में अपनी सम्भावनाएँ तलाशनी चाहिए। उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि 'दृश्य विकास' कैसे होगा। प्रत्येक संवाद के साथ नया दृश्य बनता है फिर उस दृश्य को प्रस्तुत करना और भी चुनौतीपूर्ण होता है। लेकिन अभिनेता का दृश्य अभ्यास उसे इसका सामना करने के लायक बना देता है। उसे 'स्टीरियोटाइप' भूमिकाओं से बचना चाहिए। योग्य सीन-वर्क के दौरान पात्र और उसका व्यक्तिगत अभ्यास ही कुशल अभिनेता/अभिनेत्री बनने के प्रेरक चरण हैं। विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं के लिए कलाकार के अंदर विश्वास का होना ज़रूरी है। एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के द्वारा भी वह अपने को निखारने का प्रयास कर सकता है।

जैसाकि पहले भी बताया जा चुका है पूर्वाभ्यास, सीन वर्क का आवश्यक चरण हैं। स्क्रिप्ट मिलने के पश्चात् अभिनेता के लिए आवश्यक है कि वह सबसे पहले पूरे नाटक की स्क्रिप्ट को पढ़ ले। अपने चरित्र की पूरी जानकारी उसे हो तथा साथी कलाकारों की भूमिका का ज्ञान

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भी उसे होना चाहिए। स्क्रिप्ट के पूर्व ज्ञान के बिना सीन पार्टनर मिलना सही नहीं है, क्योंकि कभी-कभी यह अधूरा ज्ञान सीन पार्टनर के साथ नाराजगी का कारण भी बन जाता है। किसी दृश्य को प्रस्तुत करने से पहले अभिनेता/अभिनेत्री के लिए आवश्यक है कि वह कम से कम चार बार उस दृश्य की रिहर्सल करे और एक बार उसके विविध पक्षों को लेकर निर्देशक के साथ मीटिंग करे। मंच पर प्रस्तुत होने से पूर्व दृश्यों की व्याख्या और विश्लेषण आवश्यक है। क्योंकि अधिकांश दृश्यों में पात्र मंच पर या तो 'देने' आते हैं या फिर 'प्राप्त' करने-इसी से नाटकीय व्यापार गति लेता है। दृश्य अभ्यास में संवाद याद रखना बहुत आवश्यक है इसके लिए कुछ विधियाँ बताई जाती हैं। समय का पाबन्द होना हर किसी के लिए ज़रूरी है, रिहर्सल के दौरान इसकी अवहेलना नहीं होनी चाहिए। यहाँ अभिनेता/अभिनेत्री को यह ज्ञान या भान लगातार रहना चाहिए कि वह निर्देशक नहीं है। उसे अपनी कार्ययोजना बनाकर लगातार अभ्यास करना ही होगा। यह अभ्यास दृश्य के अनुसार अकेले और समूह दोनों में हो सकता है। सीन वर्क के लिए कुछ निर्देशक घर से अलग रहने का भी सुझाव देते हैं। उनका मानना है अभिनय के अभ्यास के दौरान अलग-अलग स्थितियाँ होती हैं जिससे घरवाले असहज महसूस करने लगते हैं जैसे–युद्ध, हिंसा और अंतरंगता के दृश्य। कुल मिलाकर सीन वर्क या दृश्य अभ्यास और दृश्य अध्ययन नाट्य प्रस्तुति से पहले की कार्ययोजना है, जिसमें अभिनेता/अभिनेत्री द्वारा पूर्वाभ्यास के द्वारा अपने चरित्र की सम्भावनाएँ खोजी जाती हैं। यह सम्भावनाएँ संवाद वाचन और शारीरिक अभिव्यक्ति के साथ मिलकर कार्य करती हैं।

2.4.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना-

(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक पंक्ति में दीजिए–

(i) 'सीन वर्क' किससे जुड़ी प्रक्रिया है ?

(ii) दृश्य-सज्जा द्वारा क्या किया जाता है?

(ख) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए–

(i) 'सीन वर्क' में पात्र की भूमिका से संबंधित स्थितियों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है। (सही/गलत)

(ii) व्यक्तिगत अभ्यास ही कुशल अभिनेता /अभिनेत्री बनने का प्रेरक चरण है। (सही/गलत)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(iii) रिहर्सल 'सीन-वर्क' का अनिवार्य हिस्सा नहीं है। (सही/गलत)

2.5 सारांश

संवाद नाटक को विशिष्ट विधा बनाते हैं। साहित्य की अन्य विधाओं से नाटक तभी अलग भी है क्योंकि वह पाठ्य,दृश्य और श्रव्य तीनों रूप में उपलब्ध रहता है। संवादों अर्थात् साथ में बातचीत या सम्भाषण को बोलने या कहने की अपनी शैली होती है। इस शैली से अभिनेता प्रेक्षक वर्ग को प्रभावित करता है। वाचिक अभिनय का संबंध **संवाद-वाचन** से ही है। वह बताते हैं कि संवाद बोलते समय भाव, शब्द और वाणी का तालमेल आवश्यक है तभी परिस्थितिजन्य रस की उत्पत्ति संभव है। अच्छी आवाज कला और कलाकार दोनों के लिए वरदान है। लेकिन आवाज अच्छी होना ईश्वरीय वरदान हो सकता है पर उसका किस तरह, कब, कैसे प्रयोग करना है यह मानव पर निर्भर है। वाचन कला का निरंतर अभ्यास आवश्यक है। इस लगातार अभ्यास से संवाद-वाचन में निखार आता है। संवाद-वाचन की प्रक्रिया चार तरह से प्रयोग में लाई जाती है–तात्कालिक वाचन सुनियोजित वाचन, पाण्डुलिपि वाचन और स्मृति-वाचन। इन विधियों का प्रयोग करते समय नाट्यपाठ की समझ जरूरी है। प्रभावशाली अभिनय के लिए संवादों को समझना और स्वयं से जोड़ना आवश्यक है। प्रस्तुति शैली की समझ और संवाद-वाचन की कला दोनों मिलकर अभिनय को यादगार बनाने का कारगर तरीका है। अभिनेता/अभिनेत्री को अपने स्वर की क्षमता का ज्ञान होना परम आवश्यक है क्योंकि इसी के द्वारा वह दर्शक से संबंध स्थापित करेगा। उसे अपने बोलने की पिच, टोन, आवाज की क्षमता, दूरी और अभिव्यक्ति का ज्ञान होना जरूरी है। उपलब्ध साधनों का संवाद-वाचन में कैसे प्रयोग किया जाए इसकी जानकारी होनी चाहिए। साथ में किसी भी भटकाव से बचना चाहिए इसके लिए ध्यान का केन्द्रीकरण जरूरी है।

शारीरिक अभ्यास अभिनय के लिए अभिनेता/अभिनेत्री को मानसिक और शारीरिक रूप से मजबूत बनाने की प्रक्रिया है। जिससे वे एकाग्रता संतुलन चरित्रों को ढालना और उनमें ढलना सीखते हैं। पात्र को विभिन्न चरित्रों में स्वयं को ढालने का अभ्यास अभिनय कला का महत्त्वपूर्ण चरण हैं। मन, हृदय, आत्मा और शरीर को बहुमुखी बनाने के प्रयास इसके द्वारा साधे जाते हैं। जिसमें सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर को जागृत करने हेतु शरीर के हर भाग को लगातार मोड़ना, झुलाना आवश्यक है। श्वास प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित करते हुए क्रम से गर्दन, कंधा, कमर, कोहनी, घुटना और पैर के जोड़ो पर ध्यान लगाया जाता है। इन अभ्यासों के द्वारा अभिनेता/अभिनेत्री प्रस्तुति की तैयारी से पहले अपने को तैयार करते हैं। यह उनके

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

लिए 'वॉर्म-अप' की क्रिया है जिससे वे गतिशील होकर अभिनय की तैयारी करें। आचार्य भरतमुनि ने अच्छे अभिनेता के लिए तीन आवश्यक तत्व-शरीर,वाणी और मस्तिष्क बताये हैं। शरीर को सबसे पहले साधना है तो स्वाभाविक है कि हम अपने शरीर की भाषा या जिसे देह भाषा भी कहते हैं के लिए अभ्यास करें। नृत्य में देह भाषा ही है लेकिन निश्चित है। नाटक में एक अभिनेता के पास खुला स्पेस होता है वो अपनी कल्पनाशीलता से कुछ भी गढ़ पाने में समर्थ होता है। किंतु उसके लिए अभ्यास जरूरी है। इनमें सबसे पहले योग है क्योंकि अभिनेता का शरीर लचीला होना चाहिए जिससे वह चरित्र के अनुसार अपने शरीर को उसके मुताबिक ढाल ले। शारीरिक अभ्यास में योग से बढ़कर कोई वॉर्म-अप हो नहीं सकता जो मन और शरीर के अंग सभी को जागृत करता है। पाश्चात्य दृष्टि से अभिनय के पाँच अंग स्वीकार किए गए हैं–मुखाभिनय, शरीर अभिनय,गति, वेग और वाणी के द्वारा अभिनय। स्टैनिस्लावस्की के अनुसार मनुष्य की आत्मा के तत्त्वों और शरीर के तत्त्वों को विभाजित नहीं किया जा सकता। आंगिक या कायिक अभिनय की भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि से समीक्षा करें तो दोनों का समाहार सिद्ध होता है।

सीन वर्क नाट्य प्रस्तुति से जुड़ी वह प्रक्रिया है जिसका संबंध निर्देशक और अभिनेता /अभिनेत्री से है। सीन वर्क में पात्र की भूमिका से संबंधित स्थितियों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है। उसके अनुसार दृश्य निर्माण की तैयारी भी की जाती है। पेशेवर अभिनेता/अभिनेत्री के रूप में पहचान बनाने के लिए कलाकार को स्वयं भी बहुत अभ्यास करना चाहिए। एक मेहनती अभिनेता जितनी तैयारी अपने सेट पर करता है उससे अधिक अपने घर पर करेगा तभी कुशल अभिनेता/अभिनेत्री कहलाया जाएगा। मंच पर प्रस्तुत होने से पूर्व दृश्यों की व्याख्या और विश्लेषण आवश्यक है। क्योंकि अधिकांश दृश्यों में पात्र मंच पर या तो 'देने' आते हैं या फिर 'प्राप्त' करने–इसी से नाटकीय व्यापार गति लेता है। दृश्य अभ्यास में संवाद याद रखना बहुत आवश्यक है इसके लिए कुछ विधियाँ बताई जाती हैं। समय का पाबन्द होना हर किसी के लिए ज़रूरी है, रिहर्सल के दौरान इसकी अवहेलना नहीं होनी चाहिए। इसी तरह सीन-वर्क के दौरान पात्र और उसका व्यक्तिगत अभ्यास ही कुशल अभिनेता/अभिनेत्री बनने के प्रेरक चरण हैं।

2.6 निष्कर्ष

एक पुस्तक रूप से अलग जब नाटक प्रदर्शन के स्तर की तरफ बढ़ता है तभी वह सफल माना जाता है। नाटक का प्रदर्शन एक सामूहिक कार्य है जिसे निर्देशक, अभिनेता/अभिनेत्री

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

और पार्श्वकर्म मिलकर गति देते हैं। प्रस्तुति प्रक्रिया के विविध घटक आपसी संयोजन से इसे आकार प्रदान करते हैं।

संवाद और संवाद-वाचन का संबंध केवल अभिनेता/अभिनेत्री से नहीं उसे देखने वाले दर्शक से भी है। उसमें स्वाभाविकता आनी चाहिए जो अभ्यास द्वारा ही संभव है। अभ्यास के दौरान संवाद का चुनाव, स्तुत करने का तरीका, उसको याद करना, स्मृति में रखना आवश्यक है। इसके लिए शारीरिक अभ्यास अनिवार्य है। शारीरिक अभ्यास मन, हृदय, मस्तिष्क और शरीर को स्फूर्ति देता है और गतिशील भी बनाता है। जिससे पात्र सीन वर्क के समय पूरा ध्यान केंद्रित कर सके और अपनी अभिनय क्षमता का सुंदर प्रयोग कर सके। इस अध्याय में वर्णित संवाद-वाचन,शारीरिक अभ्यास और सीन वर्क सभी एक दूसरे से जुड़कर प्रस्तुति प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं। रंगकर्मी के द्वारा इनका सम्मिलित प्रयोग अनिवार्य है।

2.7 अभ्यास प्रश्न

1. रंग-प्रस्तुति में संवाद-वाचन के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. आदि रंगआचार्य भरतमुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्रम' में वाचिक अभिनय से क्या अर्थ है?
3. शारीरिक अभ्यास, अभिनेता की प्रस्तुति में बहुत सहायक है–स्पष्ट कीजिए।
4. नाट्य प्रस्तुति में 'सीन वर्क' की उपयोगिता को रेखांकित कीजिए।
5. 'सीन वर्क' से क्या आशय है?
6. पूर्वाभ्यास और 'सीन वर्क' का क्या संबंध है ?

2.8 सन्दर्भ-ग्रन्थ

- राधाबल्लभ त्रिपाठी : *संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम्*
- बलवंतगार्गी : *रंगमंच*
- गोविंद चातक: *रंगमंच: कला और दृष्टि*
- लक्ष्मीनारायण लाल : *रंगमंच देखना और जानना*
- देवेन्द्रराज 'अंकुर' : *रंगमंच का सौन्दर्यशास्त्र*
- वीरेन्द्र नारायण : *रंगकर्म*

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- रमेश राजहंस : *नाट्य प्रस्तुति एक परिचय*
- नेमीचंदजैन: *रंगदर्शन*
- *हे सामाजिक* : सुरेश अवस्थी
- *स्टैनिस्लावस्की के अभिनय सिद्धांत :* सोनिया मूर, हिंदी अनुवाद-सुरेश शर्मा
- *रंग प्रसंग* -अंक 51, अंक 52

© DDCE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

इकाई-5

मंच-प्रबंधन:सेट, रंग-सामग्री, प्रचार-प्रसार, ब्रोशर-निर्माण

डॉ.प्रतिभा राणा
श्रद्धानन्द कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय,
सम्पादिका-डॉ. सीमा जैन

रूपरेखा

1.0 अधिगम का उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 मंच प्रबंधन
1.2.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना
1.3 सेट
1.3.1 बोध प्रश्न
1.4 रंग सामग्री
1.4.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना
1.5 प्रचार-प्रसार
1.5.1 बोध प्रश्न
1.6 ब्रोशर निर्माण
1.6.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना
1.7 सारांश
1.8 निष्कर्ष
1.9 अभ्यास प्रश्न
1.10 सन्दर्भ-ग्रन्थ

1.0 अधिगम का उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर विद्यार्थी निम्नलिखित को करने में सक्षम होंगे:

- मंच-प्रबंधन के द्वारा नाटक की प्रस्तुति-व्यवस्था का ज्ञान होगा।

© DECE, COL, SOL, University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- मंच-प्रबंधन किसी भी नाट्य-प्रस्तुति में कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है ये भी ज्ञात होगा।
- मंच-प्रबंधन में सेट की भूमिका,उसके महत्त्व की जानकारी प्राप्त होगी।
- मंच-प्रबंधन में प्रयोग आने वाली रंग-सामग्री से परिचित हो सकेंगे।
- नाट्य-प्रस्तुति की तैयारी के साथ प्रचार-प्रसार की आवश्यकता को जान पाएंगे।
- नाट्य-प्रस्तुति की जानकारी देने में ब्रोशर का महत्त्व जानेंगे।
- रंग-अध्येता और रंग-कर्मी के लिए ये जानकारी शोध-विचार के नए बिंदुओं को प्रस्तुत करेगी।

1.1 प्रस्तावना

रंगमंच सामूहिक कला है। इसमें प्रस्तुति-प्रक्रिया अनेक चरणों में कार्य करती है। निर्देशक,अभिनेता,अभिनेत्री,पार्श्वकर्मी उल्लेखनीय भूमिका में होते हैं। निर्देशक इस सारी प्रक्रिया का सूत्रधार होता है। वह नाट्यकृति का चुनाव करता है,उसका अर्थ-निर्धारण करके,नाटक का पाठ और मानसिक तैयारी करता है। इसके बाद पात्रों का चयन और उनकी भूमिका तय करके रिहर्सल और प्रस्तुति को फलीभूत करता है। लेकिन प्रस्तुति-प्रक्रिया यही नहीं है साथ में रंग-सामग्री, रंग-उपकरण, प्रेक्षागृह की व्यवस्था भी उसके द्वारा की जाती है। निर्देशक और मंच-प्रबंधक मिलकर एक प्रस्तुति को सफल बनाने का कार्य करते हैं। जिसमें सेट, रंग-सामग्री, ब्रोशर और प्रचार-प्रसार के द्वारा प्रस्तुत होने वाले नाटक को सफलता के शिखर पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया जाता है।

1.2 मंच-प्रबंधन

भारतीय रंग परम्परा में सूत्रधार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है जो कालान्तर में निर्देशक का स्थान लेती है। जब आधुनिक काल में मंच और रंगमंच को लेकर कार्य-विभाजन हुआ तो निर्देशक के कार्य और भूमिका भी सुनिश्चित कर दी गई। भारतीय नाट्य रंग परम्परा में सूत्रधार एक परिकल्पक,निर्देशक के साथ प्रबंधक की जिम्मेदारी भी निभाता है।एक नाटक की तैयारी योजनाबद्ध तरीके से होनी आवश्यक है। प्रबंधन का प्रभाव नाटक की सफलता और असफलता दोनों पर पड़ता है। इसीलिए नाट्य-प्रस्तुति की तैयारी में प्रबंधन जरूरी है जिससे नाटक सहज और सुलभ बन पाए।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मंच प्रबंधन के कार्यक्षेत्र में नाटक का पूर्वाभ्यास, बजट, सेट,कारपेंटर से सम्बंधित रंग सज्जा, संगीत, वस्त्र सज्जा की व्यवस्था आदि हैं। मंच प्रबंधन से जुड़ा व्यक्ति मंच प्रबंधक कहलाता है जो पूर्वाभ्यास के समय से लेकर शो तक की जिम्मेदारी का वहन करता है। मंच व्यवस्था से सम्बंधित सभी कार्य मंच व्यवस्थापक की देखरेख में होते हैं। इस बारे में रंगकर्मी गोविंद सिंह यादव लिखते हैं- "मंच-व्यवस्थापक रंगमंच पर घटित होने वाले कार्यों एवं गतिविधियों की योजनाओं का संचालन करता है।जब एक नाट्य-संगठन या नाट्य-दल नई नाट्य-प्रस्तुति के लिए योजना बनाता है,तो तभी से मंच व्यवस्थापक की आवश्यकता होती है। मंच-व्यवस्थापक नाट्य-प्रस्तुति को अनुशासित तरीके से एक रूप प्रदान करता है।वह एक प्रस्तुति के आरंभ से निर्देशक एवं प्रस्तुति-व्यवस्थापक के साथ अपनी भागीदारी रखते हुए होने वाली प्रस्तुति में अपना योगदान देता है। तथा अभिनेताओं के चयन एवं पूर्वाभ्यास के लिए स्थान की व्यवस्था भी करता है।" (*मंच प्रबंधन-गोविन्द सिंह यादव*,रंग प्रशिक्षण विशेषांक-I,अंक 51,पृष्ठ-293) दरअसल मंच-प्रबंधक की भूमिका निर्देशक के सहयोगी की रहती है। वह पूरी तरह नेपथ्य का प्रबंधन देखता और संभालता है वह - "नाट्य-प्रस्तुति के सभी अभिकल्पकों के साथ तारतम्य (ताल-मेल) बनाते हुए उन पर निर्देशक की काल्पनिक-दृष्टि को पहुँचाता है और साथ ही अभिकल्पकों के विचारों को निर्देशक तक व्यक्त करता है।....अभिकल्पकों को अपनी देखरेख में नाटक से सम्बन्धित बने 'संकेत-पत्रों' (क्यू-शीट) को अपने पास एकत्रित करता है,जिससे कि जब नाटक की भविष्य में प्रस्तुतियाँ हों,तो अभिकल्पकों के बिना ही सुचारू रूप से वह प्रस्तुति को करा सके।" (*मंच प्रबंधन*-गोविन्द सिंह यादव,रंग प्रशिक्षण विशेषांक- I अंक 51,पृष्ठ-293)

कुल-मिलाकर मंच-प्रबंधन की भूमिका नाटक के तय होने से पहले ही आरंभ हो जाती है। पूर्वाभ्यास का स्थान,समय निर्धारित करना, निर्देशक को सभी जानकारी देना, अभिनेता-अभिनेत्री को देखना, मंच निर्माण की व्यवस्था देखना ,इस व्यवस्था से जुड़े अभिकल्पकों-स्टेज,वस्त्र,पोस्टर,ब्रोशर्स,रंग सामग्री के बजट की व्यवस्था इसी का हिस्सा है। कम शब्दों में कहें तो मंच-प्रबंधन को सम्भालने वाला मंच प्रबंधक नाटक के निर्माता, निर्देशक, कलाकारों,विभिन्न अभिकल्पकों के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। एक नाटक की प्रस्तुति को लेकर बनी कार्ययोजना में निर्देशक के बाद मंच-प्रबंधक ही मुख्य भूमिका में होता है।

पाठ के अगले चरण में हम मंच-प्रबंधन से जुड़े स्टेज,रंग सामग्री,ब्रोशर्स का निर्माण और महत्त्व तथा नाटक के प्रचार-प्रसार की अनिवार्यता से जुड़े बिन्दुओं पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

1.2.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना

1. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए ।

(क) भारतीय नाट्य रंग-परम्परा में सूत्रधार एक परिकल्पक,निर्देशक के साथ प्रबंधक की जिम्मेदारी भी निभाता है। (सही/गलत)

(ख) मंच-प्रबंधन से जुड़ा व्यक्ति मंच प्रबंधक कहलाता है। (सही/गलत)

(ग) मंच-व्यवस्थापक नाट्य-प्रस्तुति को एक अनुशासित तरीके से रूप प्रदान करता है। (सही/गलत)

(घ) मंच-प्रबंधन की भूमिका नाटक के तय होने से पहले ही आरंभ हो जाती है। (सही/गलत)

1.3 सेट

सेट या मंच का निर्धारण,उसकी व्यवस्था नाट्य-प्रस्तुति का महत्त्वपूर्ण चरण हैं। जैसाकि पूर्व में बताया इसकी व्यवस्था मंच-प्रबंधक के द्वरा ही की जाती है। मंच वह स्थान है जहाँ नाटक का प्रदर्शन होना है और उस प्रस्तुति को किस तरह दिखाया जाए यह मंच-परिकल्पक के कार्य में आता है। मंच-परिकल्पक सेट का डिजायन नाटक के अनुसार करता है। इस कार्य को करने में उसके साथ सहायक,कारपेंटर और पेंटर रहते हैं। वैसे तो यह सभी उसके सहायक ही हैं जो उसकी परिकल्पना को मंच पर साकार कर रहे हैं।

नाट्य प्रस्तुति में सेट की भूमिका उल्लेखनीय है क्योंकि प्रेक्षागृह में पर्दा उठते ही अथवा लाइट्स ऑन होते ही दर्शक का पहला ध्यान सेट पर ही जाता है। जो पात्रों के मंच पर आने से पहले ही दर्शकों को बहुत कुछ बता देता है। सेट नाटक के वातावरण और उसकी पृष्ठभूमि को एक निश्चित सीमा तक प्रभावित भी करता है। नाटक में सेट-डिजाईन और स्टेज सेटिंग का महत्व आज बढ़ गया है। फिल्मों के बड़े-बड़े महंगे सेट की चर्चा हम गाहे-बगाहे सुनते रहते हैं। नाट्य प्रस्तुति के लिए मंच का चुनाव सबसे पहली चुनौती है। वह कहाँ हो, कैसा हो,उसमें क्या-क्या शामिल किया जाए आदि बहुत से प्रश्न मन में रहते हैं। सेट का डिजाईन करते समय अभिकल्पक के मस्तिष्क में बहुत-सी बनावट चलती है।

अगर मुक्ताकाशी नाटक प्रदर्शित करना है तो सेट का रूप अलग होगा। पुराने किले में अँधा युग नाटक की प्रस्तुति बहुत चर्चित प्रस्तुति थी। 'अँधा युग' और '1857 एक सफ़रनामा' नाटक की प्रस्तुति फिरोजशाह कोटला में देखने का अवसर मिला था। इन नाटकों के सेट

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

खुले आसमान के नीचे बने थे और नाटक के एक से अधिक प्रदर्शन भी होने थे। तब सेट की मजबूती पर जरुर ध्यान दिया गया होगा। क्योंकि बड़े-बड़े स्तम्भ खड़े करके राजमहल के परिदृश्य को उभारा गया था ।सेट की मजबूती से आशय कलाकारों द्वारा उसके प्रयोग से है।

अधिकतर नाटकों की प्रस्तुति चारदीवारी मंच जिसे प्रोसीनियम कहा जाता है में होती है। मंच अभिकल्पक भी अक्सर इसे ही ध्यान में रखकर अभिकल्पना करते हैं। हालाँकि नाट्य प्रस्तुति का स्थान नाट्य की योजना से ही आरंभ हो जाता है। मई 2022 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के तृतीय वर्ष के छात्रों द्वारा हेनरिक इब्सन के चर्चित नाटक 'डॉल्सेज़ हाउस' का मंचन अमितेश ग्रोवर के निर्देशन में हुआ।इस नाटक का सेट बहुत प्रभावशाली था और नाटक के कथ्य पर कहीं न कहीं हावी भी। मंच के ऊपर एक और मंच,एक बड़ा सा बोर्ड और उस बोर्ड पर कुर्सी, टेबल, सीढियाँ,कपड़े आदि बहुत कुछ। यह बोर्ड जमीन से तिकोने आकार में खड़ा हुआ और नाटक के सभी पात्र इस सेट का पूरा प्रयोग करते हुए।

यहाँ यह बात ध्यान रखना जरूरी है कि "इब्सन से लेकर आज तक के सभी नाटकों के प्रदर्शन में ऐसे दृश्यबन्ध की तो भरमार है जो सोलह आने यथार्थवादी है।कमरा है तो दीवारें हैं, सीढियाँ हैं, खिड़कियाँ और दरवाजे हैं,खिड़की से बाहर दिखायी पड़ने वाली दृश्यावली भी है आदि-आदि।" (वीरेन्द्र नारायण : *रंगकर्म*, पृष्ठ-23)

सेट का निर्माण और उसकी परिकल्पना की अनेक सम्भावनाएँ हैं तो कुछ सीमाएँ भी हैं। जैसे अगर रंगमंच की ही बात की जाए तो उसकी लम्बाई-चौड़ाई सीधे-सीधे सेट की लम्बाई-चौड़ाई पर असर डालेगी। क्योंकि दृश्य सज्जा में थोड़ी कोताही की जा सकती है लेकिन सेट निर्माण में नहीं। इस दौरान प्रयोग में आने वाली मेज,कुर्सी या फिर अलमारी को एक निश्चित आकार के बाद छोटा या सीमित नहीं किया जा सकता। सेट में उन्हीं वस्तुओं को रखा जाता है जिनका पात्रों द्वारा मंच पर प्रयोग होगा। जैसे अगर ऊपर उल्लिखित इब्सन के नाटक में सीढ़ी थी तो कलाकार बार-बार उसका प्रयोग भी कर रहे थे। कहने का अर्थ है मंच-निर्माण में अनावश्यक सजावट की वस्तुओं को नहीं रखा जाता है। तभी जो भी वस्तु सेट पर होगी वो अर्थवान रहेगी ।

सेट अथवा दृश्य बंध द्वारा नाटक के वातावरण से परिचित करवाया जाता है। जो नाटक के आरंभ से लेकर अंत तक रहता है।जैसे ही मंच पर रोशनी होती है या पर्दा हटता है तो स्टेज पर मौजूद,अंकित,निर्मित या अन्य किसी भी रूप में जो दर्शक को सबसे पहले नज़र आता है वही सेट अथवा दृश्य बंध है। सेट का निर्माण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

उसमें कुछ परिवर्तन करते रहना है या पूरे नाटक में एक जैसा ही वातावरण रखना है। इसे दृश्य सज्जा के नाम से जाना जाता है। प्रमुखत: दृश्य -सज्जा के दो रूप होते हैं–समस्त दृश्य सज्जा और आंशिक दृश्य सज्जा।

समस्त दृश्य सज्जा में सब तरफ से दृश्य विशेष के तत्वों को ही महत्त्व दिया जाता है। सीन के समाप्त हो जाने पर अगले सीन का निर्माण कर दिया जाता है। जबकि आंशिक दृश्य-सज्जा के अंतर्गत मंच पर दृश्य बंध के कुछ स्थाई रूपों को निर्धारित कर दिया जाता है। ये रूप पूरी नाट्य प्रस्तुति में किसी न किसी रूप में मंच पर मौजूद रहते हैं।

सेट का मुख्य कार्य नाटक के अनुसार वातावरण का निर्माण करना है। यह नाट्य क्रिया को स्थान प्रदान करता है और नाटक में चल रही घटनाओं के स्थल की स्पष्ट पहचान भी स्थापित करता है। तभी पर्दा उठते ही दर्शक को नाटक की पृष्ठभूमि और घटित स्थल-घर,युद्धभूमि,ऑफिस, पार्क,राजमहल आदि का आभास हो जाता है। सेट के द्वारा नाटक को गति भी मिलती है जिसे रंगमंच की भाषा में 'पुनर्पुष्टिकरण कहा जाता है।यह नाटक के पात्रों उनके चरित्रों को प्रतिबिंबित करके नाट्य-क्रिया को घनीभूत कर देता है। उनके उठने-बैठने के तरीके, सामान बिखरा हुआ है या करीने से लगा हुआ,दीवार के चित्र, रंग सभी पात्र के चरित्र को उदघाटित करने के सहायक कारक बन जाते हैं। जैसे 'आधे-अधूरे' नाटक का टूटा टी-सेट, कुर्सी, उसपर झूलता पजामा, घर और उस घर में रहने वालों के आधे-अधूरेपन को रेखांकित करते हैं। सेट के द्वारा दृश्य को आकर्षक और अर्थपूर्ण बनाया जाता है।

नाट्य-प्रस्तुति के वातावरण को सेट सजीवता देता है। इसे तैयार करते समय कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है-

- नाट्य प्रस्तुति के स्थान के अनुकूल हो।
- नाटक के मूल भाव को अभिव्यक्त करने में सक्षम हो।
- दर्शकों को समझ में आने वाली हो।
- आकर्षक और विन्यास में सरल हो।
- मंच पर लगाने में कठिनाई न हो।
- अभिनेता-अभिनेत्रियों द्वारा मंच निरंतर प्रयोग में आ सके।
- लागत कम हो।
- आसानी से और जल्दी से निर्मित हो सके।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

- बिना शोर-शराबे के सरलता से बदला जा सके।
- भली प्रकार जुड़ा हुआ हो।
- मजबूत हो।
- मंच का वह भाग जो दर्शकों को नहीं दिखाना, वो सेट पर ओझल रखा जाए।
- दर्शकों की सीट से मंच तक की दृष्टि-रेखा स्पष्ट होनी चाहिए।
- जिस सामग्री का प्रयोग मंच पर होना है, उसके रखने की उचित व्यवस्था हो।
- मंच सामग्री,प्रकाश उपकरण और कलाकारों के चलने के लिए पर्याप्त जगह हो।

कुल मिलाकर सेट का मुख्य कार्य नाटक के अनुसार वातावरण का निर्माण करना है। यह नाट्य क्रिया को स्थान प्रदान करता है और नाटक में चल रही घटनाओं के स्थल की स्पष्ट पहचान भी स्थापित करता है।

1.3.1 बोध प्रश्न

(क) नाट्य प्रस्तुति में सेट का प्रमुख कार्य क्या है?

(i) वातावरण निर्मित करना

(ii) नाटक का प्रचार करना

(iii) दर्शकों के बैठने की व्यवस्था करना

(iv) अभिनेताओं का चयन ( )

(ख) दृश्य-सज्जा के कितने रूप होते हैं?

(i) एक

(ii) दो

(iii) तीन

(iv) चार ( )

(ग) सेट के द्वारा नाटक को गति भी मिलती है इसे रंगमंच की भाषा में क्या कहते हैं?

(i) पुर्नपुष्टिकरण

(ii) तुष्टीकरण

(iii) सृष्टिकरण

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(iv) एकीकरण ( )

(घ) 'आधे-अधूरे' के सेट पर 'टूटा टी-सेट', 'टूटी कुर्सी', उस पर 'झूलता पजामा' कैसे रंग वातावरण की सृष्टि करेगा?

(i) आनंदित

(ii) विसंगत

(iii) सूनापन

(iv) व्यंग्यात्मक ( )

1.4 रंग सामग्री

नाट्य-प्रस्तुति के लिए मंच पर अनेक प्रकार की रंग-सामग्री की आवश्यकता होती है। ये रंग-सामग्री नाटक को गति देती है। इन उपकरणों का मंच पर प्रयोग पात्रों द्वारा किया जाता है। मंच पर दृश्य-सज्जा के लिए भी इन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। सामान्य शब्दों में रंग-सामग्री को रंग-उपकरण अथवा स्टेज प्रॉपर्टी कहा जाता है।

नाट्य प्रस्तुति से पहले निर्देशक और मंच-प्रबंधक मिलकर उन प्रोपर्टीज की एक सूची बनाते हैं। जिन्हें वे नाटक में प्रयोग करवाना चाहते हैं।इनमें से कुछ स्क्रिप्ट में उल्लिखित होती हैं और कुछ निर्देशक अपने कौशल से प्रयोग करवाता है। एक नाटक की सफलता और असफलता में रंग-सामग्री का विशेष महत्त्व होता है।कभी-कभी रंग उपकरण और दृश्य सज्जा एक हो जाते हैं जैसे अगर मरे हुए शेर की खाल को स्टेज पर कहीं लटका दिया जाए तो वह रंग-सज्जा का काम करेगी।लेकिन अगर उसी को जमीन पर बिछा कर आसन बना दिया जाए और कलाकार तपस्वी की मुद्रा के लिए उसका प्रयोग करे तो रंग-सामग्री की श्रेणी में आएगी। सामान्य शब्दों में रंग सामग्री वो है जिसका उपयोग नाट्य-प्रस्तुति के समय अभिनेता/अभिनेत्री द्वारा किया जाता है। एक नाट्य प्रस्तुति में जिस-जिस रंग-सामग्री का प्रयोग करना है उसकी योजना जरुर बना लेनी चाहिए। योजना बनाते समय और रंग सामग्री एकत्रित करते समय इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि वे देशकाल से सम्बंधित हो। इसके अलावा पात्रों का सामाजिक और आर्थिक स्तर एवं जीवन पद्धति का ध्यान रखना भी आवश्यक है। जैसे 'आधे-अधूरे' के घर का सोफा अलग होगा जबकि अगर उसके बॉस के घर का दृश्य दर्शाना पड़ जाए तब अलग होगा। पहली तरफ मध्यमवर्गीय परिवार है तो दूसरी तरफ उच्चवर्गीय। हाँलाकि इस नाटक में केवल एक ही घर है वो घर जो

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सावित्री और महेन्द्रनाथ का है। बहरहाल इसी तरह सिंहासन और साधारण कुर्सी में भी अंतर होगा। कहने का अर्थ यह है रंग सामग्री निर्जीव रूप में रहकर भी नाटक को सजीवता प्रदान करती है। नाटक को आगे बढ़ाने में उसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इस तरह रंग सामग्री के अन्य प्रकार भी हैं जैसे-

1. प्रकाश-व्यवस्था

प्रकाश व्यवस्था को दृश्य के अनुसार प्रस्तुत करने की योजना प्रकाश-अभिकल्पक के द्वारा की जाती है। मंच पर अनेक उपकरणों के द्वारा प्रकाश किया जाता है। पुराने समय के रंगमंच में प्रकाश-व्यवस्था का महत्त्व बेशक सामान्य हो लेकिन आज ऐसा कहना और सोचना संभव नहीं है।नाटक की गति के साथ-साथ लाइट की गति चलती है। ये रंग-सामग्री है तो अभिनेता/अभिनेत्री से सीधे रूप में जुडती है। उसका हंसना, रोना, लड़ाई, गुस्सा, प्रेम जैसे अनेक भाव भी तरह-तरह की रोशनी के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं।ये लाइट्स कलाकार के इर्द-गिर्द रंगों और आकारों का वातावरण बनाकर सत्य का आभास कराती है।

नाट्य प्रस्तुति के समय निर्देशक और प्रकाश-अभिकल्पक को प्रकाश से सम्बंधित अच्छी जानकारी होनी चाहिए। उसे उपकरणों का ज्ञान होगा तभी डिजाईन भी कर पाएगा। आलोकन उपकरणों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है -

(क) फ्लड लाइट या पूरक प्रकाश- यह सबसे साधारण किस्म की लाइट है।जो किसी रिफ्लेक्टर या धातु के डिब्बे में लगाई जाती है।यह तीन साइज में उपलब्ध हैं। इसका उपयोग मंच पर ऊपर की तरफ या पृष्ठभूमि दिखाने के लिए किया जाता है।

(ख) स्ट्रिप लाइट या शीर्ष प्रकाश- यह 6,9,12 के बॉक्स में ढंग से व्यवस्थित छोटी फ्लड लाइटों की पंक्ति होती हैं। इसके प्रत्येक बॉक्स में एक रिफ्लेक्टर और बयोनेट कैप होल्डर लगा होता है।अभिनय क्षेत्रों का मिश्रण करने के लिए एवं फुट लाइट के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

(ग) स्पॉट लाइट या बिंदु प्रकाश - यह लाइट किसी बिंदु को निश्चित आकार और विस्तार देने के लिए प्रयोग में आती है। इसकी किरणें कम से शुरू होकर अधिकतम तक पहुँचती हैं। सेट के डिजाईन और आकार के अनुसार इस रंग सामग्री का प्रयोग होता है। मंच,मंच की वस्तु और अभिनेता/अभिनेत्री के किसी भाग को इसकी किरणों के विशेष प्रभाव द्वारा उजागर किया जाता है।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(घ) **विशेष प्रकाश प्रभाव वाली लाइट्स** -विशेष प्रभाव वाली लाइट्स नाटक में जादुई वातावरण निर्मित कर देती हैं।इनके माध्यम से बादल, आग, बारिश, जंगल, प्राकृतिक दृश्य आदि प्रदर्शित किए जाते हैं। ये लाइट्स विशेष प्रकार का प्रोजेक्टर होती हैं।

नाट्य प्रस्तुति में प्रकाश-अभिकल्पक के साथ सहयोगी रूप में मुख्य बिजली मिस्त्री और सह बिजली मिस्त्री रहते हैं। संक्षेप में प्रकाश व्यवस्था के द्वारा रंग प्रस्तुति को प्राणवान बनाया जाता है। अभिनय-कला और उसकी गति को पूरी तरह व्यंजित करने में समुचित प्रकाश व्यवस्था की जरूरत होती है। इसी के द्वारा दृश्यात्मक रूप में नाटक को समझने में सहायता मिलती है।

2.रूप-सज्जा

रूप-सज्जा या मेकअप रंग-प्रस्तुति का महत्त्वपूर्ण अंग है। अभिनेता/अभिनेत्री के चेहरे के भाव उभारने के लिए रूप-सज्जा की आवश्यकता होती है इसी वजह से यह रंग-सामग्री है। वैसे भी नाटक लोक रूप में हो,शास्त्रीय नियमों के अंतर्गत हो या आधुनिक सभी की प्रस्तुति में रूप सज्जा की जरूरत रहेगी। फ्रेंच कलाकार एम.सिग्नोरे इस सन्दर्भ में लिखते हैं- "सर्वाधिक महत्त्व की बात किसी भूमिका को उचित मूल्य देने के लिए है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह सत्य हो या काल्पनिक उसके मुख पर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़े और उसकी मानसिक स्थिति व्यक्त हो।"

रूप सज्जा के साथ प्रकाश व्यवस्था का तालमेल जरूरी है। जैसे हरे रंग के प्रकाश में बहुत सा प्रभाव नजर नहीं आएगा या जहाँ सफ़ेद होगा वहाँ सारी सज्जा को प्रभावित करेगा।इसीलिए यह जानकारी आवश्यक है कि किस प्रकाश में कौन-सी रूप सज्जा होगी। क्योंकि रूप सज्जा के बिना चेहरा स्पष्ट भाव के साथ नजर नहीं आएगा और अंतिम पंक्ति में बैठे दर्शक तक वह केवल बोलते हुए आकृति रूप में ही पहुँचेगा। इसे दो भागों में बाँटा जाता है- सामान्य रूप सज्जा और चरित्रगत रूप सज्जा। सामान्य रूप सज्जा का प्रयोग कलाकार की शरीरिक बनावट और नाटकीय चरित्र के अनुसार किया जाता है।जबकि चरित्रगत रूपसज्जा में कलाकार के चेहरे को चरित्र के अनुसार बदलना होता है जैसे -रावण के अभिनय में उसका मेकअप और मुखौटा। रूप सज्जा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए रमेश राजहंस अपने लेख 'रूप-सज्जा:प्रयोजन और सिद्धांत' में लिखते हैं- "आधुनिक मंच की प्रकाश-व्यवस्था में रूप-सज्जा अपरिहार्य है। बिना इसके मंच पर अभिनेता बीमार और आकर्षणहीन दिखायी देंगे।जिन्दगी में जो जितना है, मंच पर थोड़ी सी अतिश्योक्ति होनी चाहिए-इस

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सिद्धांत के अनुसार अभिनेताओं के चेहरे के रूप को सामान्य से थोड़ा अधिक उभारना होगा। अब यह उभार कितना हो, इसका निर्णय प्रेक्षागृह के अनुसार किया जाना चाहिए।यदि रंगशाला छोटी है और मंच तक दर्शकों की दूरी आत्मीय है तो जाहिर है कि प्रकाश-व्यवस्था मध्यम होगी और तदनुसार रूप सज्जा को भी सामान्य और सहज होना चाहिए। किंतु यदि हॉल बड़ा है और मंच-दर्शकों के बीच की दूरी काफी अधिक है, तो प्रकाश व्यवस्था तदनुसार तीव्र होगी और तदनुरूप रूप-सज्जा भी अतिश्योक्तिपूर्ण होगी।" (रमेश राजहंस:*नाट्य प्रस्तुति एक परिचय*,पृष्ठ-११७)

मेकअप के द्वारा अभिनेता/अभिनेत्री के चरित्र को उदघाटित करने में सहायता मिलती है। यह उसके हाव-भाव को प्रकाश के द्वारा दर्शकों के समक्ष लाने में सहायक बनता है।

3.वस्त्र-सज्जा

आदि आचार्य भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में आहार्य अभिनय के अंतर्गत वेशभूषा को महत्त्व दिया है। उन्होंने रसानुभूति का मुख्य साधन वस्त्र विन्यास और रूप सज्जा को माना है। ये दोनों तत्त्व रंगमंच के लिए बहुत आवश्यक है। नाटक में वस्त्र सज्जा हमेशा पात्र,चरित्र, देशकाल और वातावरण के अनुरूप होनी चाहिए जिससे वातावरण का निर्माण होता है। नाटक के कथानक और वातावरण के अनुसार पात्रों की वेशभूषा नाटकीय प्रस्तुति को जीवन्तता प्रदान करती है। वेशभूषा के द्वारा दर्शक उस युग में पहुँच जाता है जिस समय का नाटक प्रस्तुत हो रहा हो।

"वेशभूषा-परिकल्पना और पाठ्यचर्या में व्यावहारिक विकास के लिए हमें स्वयं वेशभूषा-अभिकल्पकों के मध्य,रंगमंच-शिक्षा में इसके प्रयोग के एक शिक्षा शास्त्र को पहचानने के लिए,एक औपचारिक विचार-विमर्श करने की ज़रूरत है।" (अम्बा सान्याल:*'वेशभूषा:रंगमंच में एक कला के रूप में'* : रंग प्रशिक्षण विशेषांक- I अंक 51,पृष्ठ-247) वस्त्र सज्जाकार का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण और कठिन है।वह पात्रों को दिखाने और सजाने के लिए ही वस्त्र सज्जा नहीं करता। उसे वस्त्र-परिकल्पना करते समय प्रस्तुत होने वाले नाटक का इतिहास,भूगोल और मानव विज्ञान का भी ज्ञान होना चाहिए।जिससे वह उस समय के अनुसार पोशाक का चयन कर सके। पहनावा मंच पर एक ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जो नकली न लगे,सत्य प्रतीत हो। वस्त्र-सज्जा का उद्देश्य दर्शक को पात्र का ज्ञान कराना होता है। वेशभूषा के द्वारा ही दर्शक किसी भी चरित्र के आर्थिक स्तर अवस्था और देशकाल का पता लगा सकता है। जैसे किसी एतिहासिक पात्र की वेशभूषा से दर्शक अंदाज़ा लगा सकते हैं कि वह

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मुगलकालीन बादशाह है या गुप्तकालीन सम्राट। पहनावा या परिधान पात्र की आयु के अनुसार ही होना चाहिए, पात्र के सामाजिक और आर्थिक स्तर के अनुसार भी वस्त्र-विन्यास किया जाता है। वेशभूषा से कलाकार की राष्ट्रीयता की भी पहचान होती है जैसे चीन की जापान से अलग है। इसकी जानकारी के लिए पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की मदद लेनी चाहिए। नाटक में पात्र के चरित्र के अनुसार भी वेशभूषा का चयन किया जाता है। कुल-मिलाकर वस्त्रों का चुनाव मुख्यतः प्रस्तुति-शैली पर निर्भर करता है।

4. ध्वनि एवं संगीत

नाटक के प्रभाव को तीव्र करने के लिए ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। पात्रों की वाणी और संवाद से ध्वनि उत्पन्न नहीं होती बल्कि मंच पर संगीत के साथ कुछ विशेष परिस्थियों के लिए ध्वनि का संयोजन किया जाता है। ध्वनियाँ मंच पर नाटक की कथा के दृश्य के साथ-साथ आगे बढ़ती हैं। आकाशवाणी या मायावी दृश्य में विलक्षण ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है।

संगीत का प्रयोग नाट्य प्रस्तुति में जान डाल देता है। लोक शैली के नाटकों की प्रस्तुति संगीत के बिना अधूरी है। संगीत के सृजन के लिए विभिन्न वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। जैसे जब शोकमय वातावरण का सृजन करना हो तो नेपथ्य से वायलिन का दुखद संगीत, हर्ष और उल्लास के लिए ढोल-नगाड़े, विवाह के अवसर के लिए शहनाई आदि का संगीत रचा जाता है।

1.4.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना

(क) निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए ।

(i) सामान्य शब्दों में रंग-सामग्री को रंग-उपकरण अथवा स्टेज-प्रॉपर्टी कहा जाता है। (सही/गलत)

(ii) एक नाट्य प्रस्तुति में जिस-जिस रंग-सामग्री का प्रयोग करना है उसकी योजना जरुर बना लेनी चाहिए। (सही/गलत)

(iii) फ्लड लाइट रिफ्लेक्टर या धातु के डिब्बे में लगाई जाती है। (सही/गलत)

(iv) आधुनिक मंच की प्रकाश-व्यवस्था में रूप-सज्जा अपरिहार्य है। (सही/गलत)

(ख) निम्नलिखित शब्दों से रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

(i) .....छोटी फ्लड लाइटों की पंक्ति होती हैं। (फ्लड,स्ट्रिप,स्पॉट)

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(ii) कलाकार के चेहरे के भाव उभारने के लिए..... की आवश्यकता होती है।
(वस्त्र सज्जा,रूप सज्जा,दृश्य सज्जा)

(iii) भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में.....अभिनय अंतर्गत वेशभूषा को महत्त्व दिया है। (आंगिक,वाचिक,आहार्य)

(iv) शोकमय वातावरण का सृजन करने के लिए नेपथ्य से..... का दुखद संगीत का प्रयोग किया जाता है। (शहनाई,ढोलक,वायलिन)

1.5 प्रचार-प्रसार

किसी भी नाटक की रंगमंचीय प्रस्तुति को हमें केवल अभिनेता केन्द्रित न मानकर बल्कि समूह केन्द्रित मानना होगा क्योंकि किसी भी नाट्य प्रस्तुति में सफलता का आधार कुशल अभिनय के साथ साथ सम्मिलित सामूहिक कार्य भी हैं।अभिनय की स्थिति तो विशिष्ट होती ही हैं इसी के बरक्स सामूहिक कार्य की भूमिका भी नाट्य को सहजता के साथ रंगमंच पर उतारने की क्षमता प्रदान करती है।और नाट्य की प्रस्तुति अभिनय के साथ और अधिक विकसित होकर निखरती है तथा समूह का प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी भूमिका का निर्वहण करता है।प्रचार व्यवस्था को विस्तृत रूप से जानने से पहले प्रत्येक व्यक्ति या समूह के सदस्यों के बारे मे जानना आवश्यक है जो इस प्रकार है–

1. निर्माता या नियमित संगठन :-

निर्माता या प्रोड्यूसर किसी भी नाट्य प्रस्तुति को आर्थिक सहायता देकर प्रमुख आधार प्रदान करता है जिससे कि संगठन का निर्माण करना और प्रस्तुतिकरण आसान हो जाता है। छोटी और शौकिया नाट्यशालाओं में निर्माता और निर्देशक एक ही होते हैं परंतु व्यावसायिक कंपनियाँ प्रत्येक कार्य के लिए एक योग्य व्यक्ति का चयन करती है जहाँ निर्माता कभी निर्देशक नही होता है।

संगठन के प्रमुख कर्मचारी सदस्य–

निर्माता के अंतर्गत प्रमुख रूप से तीन तरह के कर्मचारी काम करते हैं–

(i) **निर्देशक-**निर्देशक का प्रमुख कार्य पात्रों का चयन कर उन्हें अभिनय के लिए तैयार करना है अर्थात किसी भी नाट्य को प्रस्तुति प्रक्रिया तक ले जाने का उत्तरदायित्व निर्देशक का होता है। शौकिया मण्डलियों में किसी अनुभवी निर्देशक को आमंत्रित किया जाता है जबकि स्कूल या कॉलेजों में किसी अनुभवी छात्र के द्वारा यह कार्य

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

किया जाता है।निर्देशक अपने कार्य की सुगमता व सुचारू क्रियान्वयन के लिए मंच प्रबंधक की नियुक्ति करता है जो कि अभ्यास के दौरान बताई गई बातों और अभिनेताओं को निर्देशक द्वारा बताये गए अनुदेश का पालन करता है।

(ii) **विन्यासकर्ता-**विन्यासकर्ता की नियुक्ति मुख्य रूप से नाटय-प्रस्तुति में प्रयुक्त दृश्य तत्वों को मंच पर जीवंत रूप देने के लिए की जाती है जिसके अंतर्गत प्रकाश-व्यवस्था, मंच-परिकल्पना, ध्वनि-परिकल्पना एवं वस्त्र-परिकल्पना महत्त्वपूर्ण हैं। विन्यासकर्ता निर्माता के साथ सामंजस्य स्थापित कर चलता है और अपनी सहायता के लिए वह विभिन्न सदस्यों की नियुक्ति करता है जैसे:-सहायक विन्यासकर्ता, बढ़ई, इलेक्ट्रिशियन, वार्डरोब, प्रॉपर्टी मैन आदि।

(iii) **व्यापार-प्रबंधक–**व्यापार प्रबंधक सबसे आखिरी और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति होता है, जिसके सहायक कार्यकर्ताओं में बॉक्स-ऑफिस मैनेजर होता है जो कि टिकट विक्रय की जिम्मेदारी लेता है। एडवरटाइजिंग मैनेजर जो प्रचार का कार्य संभालता है और हॉउस मैनेजर जोकि दर्शकों पर नियंत्रण रखता है।

2. प्रचारकार्य

किसी नाटक की प्रस्तुति के लिए दर्शकों का होना अनिवार्य है।दर्शकों के बिना नाटक की प्रस्तुति की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि दर्शक विहीन रंगमंच उद्देश्य विहीन माना जाता है। इसलिए नाट्य प्रस्तुति में अधिक से अधिक लोगों का सम्मिलित होना अनिवार्य हो जाता है। व्यावसायिक मंडलियाँ बिजनेस डिपार्टमेंट को यह सौंपती हैं। प्रचार की प्रक्रिया के लिए चार प्रकार की पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है यथा-

(i) **भुगतान द्वारा प्रचार-** रंगमंच के प्रचार के लिए पोस्टर का प्रयोग किया जाता है जो शहर के भवनों, सड़को के आसपास चिपके दिखाई देते है इनकी एक श्रृंखला होती है और पोस्टर का अपना साइज निश्चित होता है।

अव्यावसायिक मंडलियाँ सिंगल कार्डबोर्ड पर बने पोस्टर को जगह-जगह पर लटकाते हैं ताकि ज्यादा से ज्यादा लोग देख सकें।ये पोस्टर प्रिंटेड भी हो सकते हैं ओर हस्तलिखित भी।लघु पोस्टर दुकानों पर चिपके दिखाई देते हैं इन पर दिनाँक, समय, जगह व नाम लिखे होते हैं।कभी कभी छोटे पोस्टकार्ड साइज के कार्ड भी देखे जा सकते हैं जो कि लोगो को बाँट दिए जाते हैं वर्तमान में फ्लेक्स होर्डिंग भी प्रचार का सशक्त माध्यम बन गया है इनका आकार

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

भुगतान के अनुसार तय होता है यह प्रायः सड़कों पर लगे दिखते हैं साथ ही अखबार को भुगतान कर नाटक की सूचना सम्प्रेषित की जाती है।

(ii) **अखबारों व पत्र पत्रिकाओं द्वारा प्रचार-**इस माध्यम के द्वारा अखबारों में सूचना दी जाती है जैसे कि नाट्य प्रस्तुति की घोषणा।प्रचार के इस माध्यम का प्रयोग ज्यादातर फ़िल्म जगत के लिए किया जाता है।मीडियाकर्मियों के द्वारा भी नाट्य प्रस्तुति की घोषणा की जाती है ताकि अधिक से अधिक लोगों तक सूचना पहुँच सके।

(iii) **प्रचार हेतु करतब करना-** इस तरह के करतब स्कूल, कॉलेजों व अव्यावसायिक मंडलियों के द्वारा किये जाते हैं जैसे किसी नाटक का एक हिस्सा नुक्कड़ नाटक के रूप में प्रस्तुत कर या रेखाचित्र या अन्य सामग्री प्रस्तुत कर नाटक का समय, दिनाँक, जगह, विषय आदि की जानकारी देना।

(iv) **सोशल नेटवर्किंग साइट का प्रयोग-**वर्तमान युग मे प्रचार का सबसे सशक्त माध्यम सोशल नेटवर्किंग है जिसके द्वारा किसी भी प्रकार के प्रचार प्रसार का ऑडियो, वीडियो या चित्र या नाटक का प्रचार किया जा सकता है। कभी भी कही भी ऑनलाइन टिकट खरीदी जा सकती है। इसके द्वारा वृहत स्तर पर सूचना सम्प्रेषित की जा सकती हैं।

1.5.1 बोध प्रश्न

(क) **नाट्य प्रस्तुति को प्रमुख रूप आर्थिक सहायता प्रदान करने वाला क्या कहलाता है?**

(i) दर्शक

(ii) निर्माता

(iii) निर्देशक

(iv) कलाकार ( )

(ख) **व्यापार प्रबंधक का कार्य क्या है?**

(i) मंच की व्यवस्था करना।

(ii) पूर्वाभ्यास करवाना

(iii) प्रचार-प्रसार देखना

(iv) वस्त्र-सज्जा करना ( )

© DDCE, COL, SOL,

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

(ग) भुगतान द्वारा प्रचार एक तरीका यह भी है-

(i) पोस्टर निर्माण

(ii) अख़बारों में विज्ञापन

(iii) सोशल नेटवर्किंग

(iv) उपरोक्त सभी ( )

(घ) 'प्रचार हेतु करतब' से आप क्या समझते हैं?

(i) नाटक का एक हिस्सा नुक्कड़ नाटक के रूप में प्रस्तुत करना

(ii) रेखाचित्र या अन्य सामग्री प्रस्तुत कर नाटक का समय ,दिनाँक, जगह, विषय आदि की जानकारी देना।

(iii) उपरोक्त सभी

(iv) उपरोक्त कोई नहीं ( )

1.6 ब्रोशर निर्माण

नाट्य प्रस्तुति से पहले जब रिहर्सल आरंभ हो जाती है तब उसके प्रचार-प्रसार और ब्रोशर निर्माण पर ध्यान केंद्रित किया गया जाता है। ब्रोशर से प्रस्तुत होने वाले नाटक और उससे जुड़े लोगों की संक्षिप्त जानकारी मिलती है। यह जानकारी प्रेक्षक/दर्शक के लिए उपयोगी होती है क्योंकि नाट्य प्रस्तुति से पहले उसे नाटक की पृष्ठभूमि का पूर्व ज्ञान हो जाता है। इसके द्वारा नाटक देखने आए जन को नाटककार निर्देशक अभिनेताओं/अभिनेत्रियों एवं अन्य रंगकर्मियों के रंगानुभव से परिचय होता है। ये ब्रोशर एक रंग-अध्येता के लिए बहुत उपयोगी हो सकते हैं क्योंकि एक दस्तावेज के रूप में किसी नाट्य प्रस्तुति की सटीक जानकारी इनके माध्यम से मिलती है। ये ब्रोशर्स भारतेंदु युग में नहीं मिलते,जयशंकर प्रसाद युग में भी इनकी सूचना नहीं मिलती। उस समय के हिंदी रंगमंच को जानने के लिए विज्ञापनों, समीक्षाओं, लेखों के द्वारा ही जानकारी मिलती है। ब्रोशर्स का महत्त्व एक दस्तावेज की तरह हैं क्योंकि इनके द्वारा किसी प्रदर्शन की प्रामाणिक जानकारी या सूचना प्राप्त होती है। इनसे नाटक के प्रथम प्रदर्शन एवं अन्य प्रदर्शन का पता चलता है। इनसे पूर्वकालीन और समकालीन रंगकर्म की भी जानकारी मिलती है। साथ में उन अपरिचित स्थितियों से भी परिचय होता है जिनसे जूझते हुए रंगकर्मी नाटक कर रहे हैं। ब्रोशर की निर्माण प्रक्रिया में

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सबसे पहले यह तय किया जाता है कि नाट्य-प्रस्तुति से सम्बंधित क्या-क्या जानकारी उसमें रहेगी। सामान्यत इसकी रुपरेखा में निम्न बिंदु होते हैं-

- नाटक का नाम
- प्रदर्शन तिथि, प्रेक्षागृह का नाम, समय और अवधि
- नाटक की भाषा और शैली (अगर आवश्यक हो)
- नाटककार का नाम और परिचय
- निर्देशक का नाम और परिचय
- निर्देशकीय (नाट्य प्रस्तुति के दौरान की तैयारी पर वक्तव्य)
- नृत्य-निर्देशक का नाम और परिचय
- प्रकाश-परिकल्पक का नाम और परिचय
- संगीत व ध्वनि निर्देशक/परिकल्पक का नाम एवं परिचय
- मंच-परिकल्पक का नाम एवं परिचय
- वेशभूषा-परिकल्पक का नाम एवं परिचय
- पात्रों के नाम (मंच पर)
- मंच पार्श्व के नाम- इसमें जो भी छोटे-बड़े सहायक नाट्य प्रस्तुति से जुड़े रहे उन सभी के नाम आएंगे जैसे मंच-व्यवस्थापक, सहायक-निर्देशक, मंच-अभिकल्पक (सहायक, मंच निर्माण,पेंटिग के लिए सहायक), प्रकाश-अभिकल्पक (संचालन सहयोगी एवं सहायक प्रकाश), वेशभूषा-अभिकल्पक (सहायक,वेशभूषा प्रभारी, मास्टर टेलर, मंच-सामग्री, मुख-सज्जा प्रभारी,सहायक,पोस्टर एवं ब्रोशर-अभिकल्पक, संगीत एवं ध्वनि परिकल्पक (नाटक के अनुसार विविध वाद्ययंत्रों- को बजाने वाले), फोटोग्राफर का नाम, छाया-प्रदर्शनी लगा रहे सहायकों का नाम, ब्रोशर्स वितरित करने वालो का नाम आदि। (यह सूची लंबी होती है और अलग-अलग ब्रोशर में नाटक के अनुसार घटती और बढ़ती रहती है।)
- नाटक प्रस्तुत करने वाली संस्था एवं रंगमंडल/रंगमंडली का नाम एवं परिचय
- प्रस्तुति से सम्बंधित फोटो (ये रिहर्सल के समय मंच-प्रबंधक के सहयोग से एकत्रित की जाती हैं) ब्रोशर में तस्वीरों की उपस्थिति उसे प्रभावकारी बना देती है। कुल मिलाकर किसी क्षेत्र के रंगमंच संबंधी गतिविधियों को जानने एवं आगामी नाट्य

© DDCE, College of University of Delhi

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रस्तुति की जानकारी के लिए इन ब्रोशर्स से बढ़कर प्रमाणिक दस्तावेज कोई हो नहीं सकता है।

1.6.1 प्रश्नों की स्वयं जाँच करना

1. निम्नलिखित कथनों पर सही/गलत के निशान लगाइए ।

(क) ब्रोशर से प्रस्तुत होने वाले नाटक और उससे जुड़े लोगों की संक्षिप्त जानकारी मिलती है। (सही/गलत)

(ख) ब्रोशर्स का महत्त्व एक दस्तावेज की तरह है। (सही/गलत)

(ग) प्रदर्शन तिथि, प्रेक्षागृह का नाम, समय और अवधि का ब्रोशर में लिखना उल्लेख अनिवार्य नहीं है। (सही/गलत)

(घ) ब्रोशर्स में मंच पार्श्व के वे सभी नाम आएंगे जो नाट्य-प्रस्तुति से लगातार जुड़े रहते हैं। (सही/गलत)

1.7 सारांश

भारतीय नाट्य रंग परम्परा में सूत्रधार एक परिकल्पक,निर्देशक के साथ प्रबंधक की जिम्मेदारी भी निभाता है।एक नाटक की तैयारी योजनाबद्ध तरीके से होनी आवश्यक है। प्रबंधन का प्रभाव नाटक की सफलता और असफलता दोनों पर पड़ता है। इसीलिए नाट्य-प्रस्तुति की तैयारी में प्रबंधन जरूरी है जिससे नाटक सहज और सुलभ बन पाए। मंच व्यवस्था से सम्बंधित सभी कार्य मंच व्यवस्थापक की देखरेख में होते हैं। वह नाटक से सम्बन्धित बने 'क्यू-शीट' को अपने पास जमा करता चलता है, जिससे कि जब भी भविष्य में नाटक-प्रस्तुतियाँ हों, तो अभिकल्पकों के बिना भी आसानी से प्रस्तुति कराई जा सके। मंच वह स्थान है जहाँ नाटक का प्रदर्शन होना है और उस प्रस्तुति को किस तरह दिखाया जाए यह मंच-परिकल्पक के कार्य में आता है। नाट्य-प्रस्तुति में सेट की भूमिका उल्लेखनीय है क्योंकि प्रेक्षागृह में पर्दा उठते ही अथवा लाइट्स ऑन होते ही दर्शक का पहला ध्यान सेट पर ही जाता है। जो पात्रों के मंच पर आने से पहले ही दर्शकों को बहुत कुछ बता देता है। दृश्य-बंध द्वारा नाटक के वातावरण से परिचित करवाया जाता है जो नाटक के आरंभ से लेकर अंत तक रहता है। सेट का मुख्य कार्य नाटक के अनुसार वातावरण का निर्माण करना है। रंग सामग्री नाटक को गति देती है। नाट्य प्रस्तुति से पहले निर्देशक और मंच प्रबंधक मिलकर उस रंग सामग्री की एक सूची बनाते हैं जिन्हें वे नाटक में प्रयोग करवाना चाहते हैं।

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

इनमें से कुछ का नाट्य आलेख में उल्लेख होता है और कुछ निर्देशक अपने कौशल से प्रयोग करवाता है। प्रकाश व्यवस्था,वस्त्र सज्जा, ध्वनि एवं संगीत और रूप सज्जा का प्रयोग रंग सामग्री के अंतर्गत किया जाता है। प्रचार-प्रसार के अनेक तरीके हैं- समाचार पत्र विज्ञापन,पोस्टर, होर्डिंग, सोशल मीडिया, अधिकारिक वेबसाइट आदि। इनके द्वारा नाटक के प्रदर्शन की पूर्व सूचना दी जाती है। ब्रोशर के द्वारा नाटक की प्रारंभिक जानकारी मिलती है वह दस्तावेज की भूमिका निभाता है।

1.8 निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में नाटक को पाठ्य से दृश्य की तरफ ले जाने में अनेक लोगों की भूमिका होती है। इसके अनेक चरण भी होते हैं। जिसमें मंच और उसकी व्यवस्था बहुत महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इसके साथ सेट और उसे बनाने वाले रंगकर्मी सहयोगी, प्रकाश,वेशभूषा,संगीत-ध्वनि,नृत्य, मेकअप आदि अभिकल्पक, प्रचार-प्रसार के विविध तरीके और ब्रोशर के द्वारा दी गई महत्त्वपूर्ण जानकारी सभी मिलकर कार्य करते हैं। इसीलिए नाटक एक सामूहिक कला कहलाता है।

1.9 अभ्यास प्रश्न

1. नाट्य-प्रस्तुति में मंच-प्रबंधक की भूमिका पर प्रकाश डालिए ।
2. सेट की भूमिका को रेखांकित कीजिए।
3. रंग-सामग्री का परिचय देते हुए इसके विविध अंगों पर प्रकाश डालिए।
4. नाट्य-प्रस्तुति में प्रचार-प्रसार की आवश्यकता का मूल्यांकन कीजिए।
5. ब्रोशर-निर्माण की प्रक्रिया के विभिन्न चरण कौन से हैं।

1.10 सन्दर्भ-ग्रन्थ

- *रंगकर्म*: वीरेन्द्र नारायण
- *नाट्य प्रस्तुति एक परिचय:* रमेश राजहंस
- *कला कुञ्ज* -माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर
- *रंग प्रसंग* , रंग प्रशिक्षण विशेषांक-1 अंक-51
- *रंग प्रसंग*, रंग प्रशिक्षण विशेषांक-2 अंक-52

© दूरस्थ एवं सतत् शिक्षा विभाग, मुक्त शिक्षा परिसर, मुक्त शिक्षा विद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

978-93-95774-58-1

Department of Distance and Continuing Education
University of Delhi